सारिका
मार्च १९७३
समांतर कहानी विशेषांक-६
आम आदमी के आसपास: आज की कहानियाँ • राही मासूम रज़ा,
गंगाप्रसाद विमल, सुधा अरोड़ा, रामसरूप अणखी, कृष्ण भिक्षुक, किशोर जाधव, आबिद सुरती

कहानियां

विशिष्ट कहानी

लघुकथाएं

विशेष टिप्पणी

स्थायी स्तंभ

● आमुख : महेंद्र और सूरज एन. शर्मा

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका।

मार्च, १९७५

वर्ष : १५; पूर्णांक : १६६

समांतर कहानी विशेषांक–६

इस अंक के सज्जाकार

इस अंक की सज्जा के लिए हमने एक छविकार—चंद्रशेखर कामकर, तथा एक चित्रकार—सतीशचंद्र—की रंगीन पारदर्शियों और चित्रों का इस्तेमाल किया है. अपने-अपने क्षेत्र में दोनों ही कलाकार पर्याप्त तेजी से उभर कर आ रहे हैं.

बेलगाम, महाराष्ट्र में जन्मे कामकर ने बंबई के जे. जे. स्कूल से ललित कला में डिप्लोमा लिया है तथा आजकल एयर इंडिया में सहायक मुख्य-कलाकार के रूप में काम कर रहे हैं. इन्होंने काफी देश-भ्रमण किया है.

१९४१ में जन्मे सतीशचंद्र ने लखनऊ के गवर्नमेंट कॉलेज से ललित कला में स्नातकोत्तर उपाधि ली है. अब तक अपने चित्रों की १० प्रदर्शनियां कर चुके हैं और इनके चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है.

चंद्रशेखर कामकर

सतीशचंद्र

● संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य-उपसंपादक : आनंदप्रकाश सिंह

● उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप

● कार्यालय - सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

मेरा पन्ना

आज का यथार्थ : समांतर संसार-(६)

सवाल नैतिकता का भी है.

करुणा, समन्वय और संस्कार के साथ ही नैतिकता का प्रश्न भी उठता है. इसे टाला नहीं जा सकता. विशेष रूप से इसलिए कि नैतिकता को हमेशा हम व्यक्तिबद्ध हो कर देखते रहे हैं. लगातार जोर आदमी की नैतिकता पर रहा है, क्योंकि हम नेक होने को ही नैतिकता का पर्याय मानते रहे हैं या सदाचार को उसका स्थानापन्न बनाते रहे हैं. यह अकारण नहीं हुआ है. साधु, सदाचारी और नेक होने की जरूरतें मूलतः धर्ममूलक धारणाएं ही रही हैं, वे सामाजिक आचारसंहिता के रूप में चाहे कुछ या काफी असर भी डालती रही हों, पर कुल मिला कर हमारे समाज के पास नैतिकता का कोई साफ सक्रिय सामाजिक संबोध (कॉन्सेप्ट) नहीं रहा है.

यह तब तक तो चलता था, जब तक देश पराधीन था या उससे पहले भी, जब आदमी इतनी ज्यादा संश्लिष्ट संस्थाबद्ध जिंदगी नहीं जी रहा था, पर आज की संश्लिष्ट समाज-संरचना और आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संस्थाओं के उदय के साथ यह धर्ममूलक, व्यक्तिगत या व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की नैतिकता की धारणा कद में बहुत छोटी पड़ रही है, क्योंकि आदमी और सभी संस्थाओं के संबंधों के कद बहुत बढ़ गये हैं. अब धर्ममूलक नैतिकता की धारणा उन विकसित और उलझ गये संबंधों को नहीं नाप पा रही है जो इधर पैदा हुए हैं.

व्यक्ति और व्यक्ति, व्यक्ति और शक्ति (सत्ता), वर्ण और वर्ण के संबंधों की नैतिकता की धारणा को तो धर्म ने गलत या सही रूपायित किया है, पर वहीं तक, जहां तक आम आदमी को प्रजा माना गया है और उससे उसकी स्वतंत्रताएं समाज और सत्ता के हित में समर्पित करवायी गयी हैं और यह माना गया है कि अपनी स्वतंत्रताओं (या अधिकारों) का उत्सर्ग करके ही एक समाज-प्रणाली को विकसित किया जा सकता है. शायद यह सब तब तक तो ठीक था जब राजा राजा था और प्रजा प्रजा थी.

लेकिन जब प्रजा प्रजा नहीं रही—वह स्वतंत्र हो कर स्वयं अपनी नियामक बनी तो प्रजातंत्र की प्रणाली के लिए उसे फिर अपनी स्वतंत्रताओं को एक बदले हुए संदर्भ में त्यागना पड़ा— यानी उसने अपनी 'स्वतंत्रताएं' प्रजातंत्रीय संस्थाओं को प्रदान कीं.

इन दो संदर्भों में आज की नैतिकता का सवाल उठता है. यह सवाल मात्र पिछले कुछ वर्षों की परिधि तक सीमित नहीं रह सकता, इसके लिए हमें उस दौर में भी जाना पड़ेगा जब प्रजा प्रजा थी, क्योंकि सदियों से आदमी द्वारा अर्पित की गयी इन 'स्वतंत्रताओं' का विपुल और भयानक रूप से बड़ा भंडार आज हर समाज के पास मौजूद है. इस भंडार में जमा की गयी 'स्वतंत्रताओं की पूंजी' का फैलाव इतना ज्यादा है कि इससे आम आदमी के मन में उठते प्रश्नों को लपेट दिया जाता है. और उसे यह बताया जाता है कि तुम्हारे नाम पर तुम्हारे पूर्वजों ने स्वयं इन 'स्वतंत्रताओं' को समर्पित किया था या कि इनका उत्सर्ग किया था.

अब आज उन सदियों का कोई ऐसा चश्मदीद गवाह नहीं है (साहित्य या इतिहास) जो यह कह सके कि ये 'स्वतंत्रताएं' समर्पित नहीं की गयी थीं बल्कि सुपुर्द की गयी थीं. या कि समर्पित या

सुपुर्द करवा ली गयी थीं.

उस दौर में अपनी स्वतंत्रताओं को समर्पित या सुपुर्द करके जो कुछ आम आदमी ने हासिल किया, वह कितना अनैतिक था, यह इसी बात से जाहिर है कि उस समाज-व्यवस्था को टूटना पड़ा और उसे दूसरी तरह की समाज-व्यवस्था के लिए स्थान छोड़ना पड़ा. अगर वह व्यवस्था आदमी के हितों के विपरीत न चली गयी होती, तो प्रजातंत्र की स्थापना की कोई जरूरत नहीं थी.

प्रजातंत्र में आते ही आदमी अपनी स्वतंत्रताओं (या कि अधिकारों) को प्रजातंत्रीय संस्थाओं के सुपुर्द करता है, कि राजकाज चलाने वाले उसके द्वारा सुपुर्द किये गये अधिकारों के तहत राजकाज चलायें, आर्थिक संरचना करने वाले उसके हित में सही आर्थिक तंत्र का निर्माण करें, आदि. . . ताकि आदमी निश्चित हो कर अपनी आत्मिक और पारिवारिक जिंदगी जी सके. आम आदमी की इतनी ही आकांक्षा होती है. पर अब उसके जीवन का सुख पड़ोसी, रिश्तेदारों या दोस्तों से जुड़ा हुआ नहीं है — उसका सुख उन संस्थाओं पर निर्भर करता है, जिन्हें उसने अपने अधिकार सुपुर्द किये हैं. इसलिए आज के संदर्भ में यह समझ लेना बेहद जरूरी हो गया है कि धर्ममूलक (व्यक्ति और व्यक्ति की) नैतिकता का संकट दारुण होते हुए भी उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना दारुण और महत्वपूर्ण उस नैतिकता का संकट है जो आदमी तथा उसके द्वारा सुपुर्द किये गये अधिकारों की शक्ति से चलने वाली संस्थाओं के बीच उत्पन्न हो गया है. अतः यह कहा जा सकता है कि धर्ममूलक नैतिकता की व्यक्ति-केंद्रित धारणा को जब तक समाजमूलक नैतिकता के जन-केंद्रित संबोध में बदला नहीं जाता, तब तक आज के सही नैतिक प्रश्नों तक पहुंचा ही नहीं जा सकता.

आज का नैतिक संकट मात्र इतना ही नहीं है कि कुछ व्यक्ति बेईमान हो गये हैं, आज का सही नैतिक संकट यह है कि प्रजातंत्र के तहत जिन संस्थाओं और व्यवस्थाओं को जन्म दिया गया — वे बेईमान हो गयी हैं. और बेईमान हो गयी इन राजनीतिक-आर्थिक संस्थाओं पर से आदमी का यकीन उठ गया है. बेईमान व्यक्तियों ने इन संस्थाओं को पहले दूषित किया और अब ये संस्थाएं बेईमान लोगों को पैदा करने वाली मशीनों में तब्दील हो गयी हैं.

इसलिए नयी नैतिकता की जरूरत हमें हर क्षेत्र में है! चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या आर्थिक संरचना का या सामाजिक न्याय का. सामाजिक अन्याय का जितना गौरवशाली इतिहास इस भारत नाम के देश के पास है, उतना तो किसी व्यवस्था और देश के पास है ही नहीं!

क्या कारण है कि आज हर संस्था के लिए, हर व्यक्ति के लिए या किसी भी उठाये जाते कदम के लिए आदमी के मन में शक घर कर गया है? क्या बात है कि किसी बात पर यकीन नहीं आता? यह क्या हुआ है अपने दौर के इस आदमी को, कि वह 'विश्वास के ह्रास' के इतने बड़े संकट को झेलता जा रहा है, पर व्यक्तिगत नैतिकता के पैमानों को समयगत नैतिकता के प्रश्नों में बदलने से फिर भी कतरा रहा है!

नैतिकता के ह्रास का यह जो भयानक संकट आज मौजूद है, उसने आदमी को इस कदर अकेला और शंकाग्रस्त कर दिया है कि वह सिवा अपने, किसी और के ऊपर विश्वास टिका नहीं पाता. और स्वयं अपनी नैतिकता के बारे में भी वह इतना दृढ़ नहीं रह गया है कि किसी भी निर्णयात्मक स्थिति में वह खुल कर 'नहीं' कह सके, सिर्फ कह ही न सके, बल्कि उस 'नहीं' पर लगातार टिक सके. ऐसा नहीं है कि 'नहीं' कह सकने वाले लोग नहीं हैं. पर जब नैतिकता के व्यक्तिगत मानदंड ही कारगर न रह गये हों, तब उस व्यक्ति का 'नहीं' कह सकना कितना कारगर रह जाता है? यानी इस व्यक्तिगत 'नहीं' को जब तक व्यापक और मूल्यगत 'नहीं' का रूप नहीं मिलता, तब तक यह आदर्शवादी संकट यथार्थ की जमीन पकड़ ही नहीं पायेगा. गलत की 'नैतिकता' सही की नैतिकता को बेकार करती जायेगी और आदमी अपने इस एकांत संकट को लिये हुए बुझता चला जायेगा. 'नहीं' कह सकने वाले अकेले पड़ते जायेंगे और वे संस्थाएं अधिक क्रूर और बेलगाम होती जायेंगी (हो गयी हैं) जिन्हें उसने अपने अधिकार सुपुर्द किये हैं. नैतिकता के इन नये मूल्यों की तलाश और संस्थाओं (सब तरह की) की शक्ति के पुनर्निर्धारण के लिए साहित्य अत्यंत कारगर भूमिका निभा सकता है, क्योंकि समाज के नैतिक मूल्य सीधे-सीधे मानसिकता से जुड़े होते हैं और यह मानसिकता ही उन्हें मंजूर या नामंजूर करती है!

ऐसे संकटकाल में यह जरूरी हो जाता है कि हम आदमी की आत्मा में धंसे हुए नैतिकता के व्यक्ति-केंद्रित प्रश्नों को बदल कर समयगत न्याय की धारणा के संदर्भ में उठायें और संस्थागत-व्यवस्थागत नैतिकता के सामाजिक संबोध को सामने लायें! सौ-दो सौ, या दो हजार-दस हजार लोगों पर अनैतिकता का दोषारोपण करके नैतिक आचरण का परिशोध प्राप्त नहीं किया जा सकता — बल्कि संस्था और व्यवस्था के प्रतिमानों को बदल कर ही यह परिशोध प्राप्त किया जा सकता है. यानी संस्थाओं और व्यवस्थाओं के लोगों को बदलने से नैतिकता की प्राप्ति नहीं हो सकती, बल्कि इन संस्थाओं और व्यवस्थाओं के वर्ग-चरित्र को बदलने से ही नयी नैतिकता हासिल हो सकती है.

★ ★

आज के आदमी से जुड़ा समय-सापेक्ष समांतर लेखन नैतिकता के व्यक्ति-केंद्रित प्रश्नों को समयगत न्याय की धारणा के संदर्भ में उठाने से कतई नहीं कतराता. बल्कि इसी में उसकी आंतरिक शक्ति और सार्थकता निहित है. सुधा अरोड़ा की 'दमनचक्र', रामसरूप अणखी की 'एमरजेंसी', वसंतकुमार की 'सांप', प्रेम कापसलीवाल की 'विदेश' तथा सुदीप की 'अतहीन-दौड़' कहानियों के पात्र संस्थागत-व्यवस्थागत 'नैतिकता' और अन्याय को बड़ी शिद्दत से महसूस करते और भोगते हैं. सामूहिक और समग्र रूप में इनका परिवेश एक ही है और उसी संस्था-व्यवस्था के शिकंजों में आबद्ध परिवेश के विरुद्ध उनका सामूहिक स्वर उभरता है. ये कहानियां संस्थाओं और व्यवस्थाओं के वर्ग-चरित्र की पहचान तो प्रस्तुत करती ही हैं, उनके सख्त खोल को तोड़ कर उनकी असली शक्ल दिखाने का प्रयास भी करती हैं. गंगाप्रसाद विमल की कहानी 'उसकी पहचान', किशोर जाधव की 'अपाहिज' तथा आबिद सुरती की 'सड़क के उस पार' कहानियां इसी कथ्य को एक अन्य स्तर पर उठाती हैं, जहां आदमी अपने आस-पास के कसावपूर्ण 'तंत्र' को समझते हुए उसकी पकड़ से छूटने के लिए संघर्ष करता नजर आता है. राही मासूम रजा की कहानी 'एम. एल. ए. साहब' तथा प्रदीप पंत की 'आम आदमी का शव' व्यंग्य के स्तर पर व्यवस्था के मुखौटे को छीलती हैं, जबकि कृष्ण भावुक की 'व्याख्याकार', राजेंद्रकिशोर की 'अग्निरेखा', राधेश्याम की 'अपवाद' तथा बल्लभ डोभाल की 'कोई एक आवाज' सब मिल कर संस्थागत नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं—इन संस्थाओं का नाम कुछ भी हो सकता है, इनकी प्रकृति एक ही है.

कमलेश्वर

पाठकीय

'विदा-अलविदा' (राम अरोड़ा)—काफी दिनों बाद इतनी साफ-सुथरी रचना पढ़ने को मिली. 'संघर्ष', 'संपूर्ण क्रांति' आदि नारों के सींगों से आज के जीवन को उलटने की जो कोशिश की जाती है, उससे तो हाथ लगा बिखराव 'चिर-प्रभावित करने' या 'एक दृष्टिकोण देने' जैसा कोई काम नहीं कर पाता. बल्कि आम पाठक उसे मात्र 'अजीब चीज' मान कर उस पर सरसरी निगाह ही फेंक पाता है, उसे भोगने का एहसास नहीं कर पाता. अगर वे लेखक अपने दिमाग को 'संघर्ष-मोह' से संपृक्त न करें तो फलीभूत रचना अपने आप उसी संघर्ष को ज्यादा सशक्त और अनौपचारिक ढंग से कह जाती है, क्योंकि आज जीवन और संघर्ष अन्योन्याश्रित हैं! उदाहरण 'विदा-अलविदा' है. भुवन का चरित्र अंत तक इतना अच्छा निभ पाया है और कहानी इतनी रोचक है कि अंक की सबसे लंबी कहानी सबसे छोटी कहानी लगती है.

'मेरा पन्ना' भी हर बार एक नया व्यक्तित्व ले कर प्रस्तुत हो रहा है. कभी दोस्त की तरह हाल-चाल पूछता नजर आता है तो कभी जुए में हारे पार्टनर को फिर से ट्राई करने के लिए पीठ ठोंकता. कभी पूरे जीवन की विद्रूपता सोख कर बर्फ की तरह ढंका तो कभी संपूर्ण दूषण को जला देने वाली आग ले कर. यह कालम आज की विक्षिप्तता के धुएं में कंपास है. यह हमारे लिए मनोरंजन तो है नहीं जो हम कमलेश्वर जी को धन्यवाद दे सकें. यह तो हमारे लिए रोटी की तरह ही आवश्यकता है!

☐ **रामाधार शर्मा, पटना**

समांतर कहानी विशेषांक-३ की सभी कहानियां व्यक्तिगत, सामाजिक विसंगतियां लिये हुए हैं, जो आदमी को सहज ही प्रभावित कर जाती हैं.

ध्रुव जायसवाल की **'केवल एक क्षति'**, आशीष सिन्हा की **'आदमी'** व केशव दुबे की **'श्रमदान'** मार्मिक हैं.

इस अंक के चित्रकार शब्बीर दीवान को मेरी ओर से विशेष बधाई. उनके चित्र कहानियों को सार्थक करते हैं.

☐ **सुधाकर, दिल्ली**

समांतर विशेषांक-३ पढ़ा, जिसमें पूरी ग्यारह कथाएं हैं. पर सबसे ज्यादा असर करने वाली चार कथाएं हैं **'विदा-अलविदा'**, **'असंबोधित देवदास'**, **'श्रमदान'** एवं **'तीसरी दुनिया'**. वैसे **'सारिका'** के समांतर विशेषांक पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे भटकी हुई कहानी अपने सही रास्ते पर आ रही है.

☐ **सुरेश तिवारी, मीरजापुर**

दिसंबर अंक लंबी प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुआ. इसमें **'मेरा पन्ना'** एवं इब्राहीम शरीफ का लेख **'कहानी : इनसानी सोच के समांतर एवं विपरीत'** यथार्थ के अत्यंत नजदीक लगे. मैंने समांतर कहानी के तीनों विशेषांक पढ़े हैं और सोचता हूं, क्या इनमें प्रकाशित कहानियों को कोई श्रेणी दी जा सकती है—क्या यह कहना आसान है कि उनमें से कौन-सी कहानी अच्छी है और कौन-सी बुरी! शायद नहीं. इस तरह की श्रेणियां कहानियों को प्रदान की जा सकती हैं, वास्तविकताओं को नहीं. इन तीनों विशेषांकों में प्रकाशित रचनाओं को कहानी की बजाय वास्तविकता कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा.

☐ **विनोदकुमार अग्रवाल, कानपुर**

समांतर कहानी विशेषांक-३ प्राप्त हुआ. अपनी प्रवृत्ति के अनुसार एक ही बैठक में पढ़ डाला. आज कहानी की दिशा क्या है— इस सवाल का जवाब पाने में मुझे सबसे ज्यादा मदद **'सारिका'** ने दी है. आज की फार्मूलाबद्ध आलोचना समांतर कहानी की प्रकृति और दिशा का ज्ञान कराने में लूली मालूम पड़ती है. आज कोई सिर्फ समांतर कहानी को पढ़ कर उसे नहीं समझ सकता. इसे समझने के लिए उस परंपरा से भिज्ञ होना जरूरी है, जो प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र और अज्ञेय से होती हुई यहां आ कर मिलती है.

आज आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, हर क्षेत्र में बड़ी तेजी के साथ बदलाव आ रहा है. इस बदलाव की स्थिति में एक बात बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जा रही है कि आज सामान्यतः हर आदमी अपने कंधे से दायित्व का जुआ खिसका देना चाहता है. व्यवस्था के पोषक प्रलोभन दे कर सामान्य जन को दिग्भ्रमित कर रहे हैं. लेकिन लेखक इनकी शतरंजी चाल को पहचान गया है, क्योंकि उसकी कलम से भी आग्रह किया जा रहा है कि वह बंदूक बने. लेकिन लेखक अपने दायित्व को जानता है. वह इस छलावे में आ कर कलम को बंदूक नहीं बना सकता. आज तक के इतिहास में साहित्यकार की कलम कभी बंदूक नहीं बनी है. कमलेश्वर जी ने कलम और बंदूक के इस अहम सवाल को इस अंक के **'मेरा पन्ना'** में बड़ी सजगता के साथ उठाया है. एक ईमानदार लेखक के रूप में उन्होंने लेखक के दायित्व को समझाया है. लेखक की कलम व्यवस्था के खिलाफ प्रयोग किया जाने वाला अस्त्र नहीं बन सकती. राजनीतिक प्रपंच में फंस कर वह अपनी रचना शक्ति को पंगु नहीं बनाना चाहेगा. लेखक का दायित्व 'खामोशी को पीते हुए' ईमानदारी के साथ सृजन करना है, बेईमानी की झूठी लड़ाई लड़ना नहीं.

इस अंक की सभी कहानियां 'बिच्छुओं की कतार' हैं. श्रेष्ठ कहानी की पहचान मुश्किल-सी बात है. लेकिन फिर भी बहुत सोच कर लिख रहा हूं कि जवाहर सिंह की **'गुस्से में आदमी'** ने जेहन की परतें खोल दीं.

☐ **जानकीप्रसाद शर्मा, सिरोंज, जिला विदिशा, (म. प्र.)**

दिसंबर अंक के लिए बधाई. राम अरोड़ा की **'विदा-अलविदा'** तथा ध्रुव जायसवाल की **'केवल एक क्षति'** श्रेष्ठतम कहानियां हैं. इनके अलावा प्रणवकुमार बंद्योपाध्याय, चंद्रकांत बक्षी, केशव दुबे, तथा भगवतीचरण वर्मा की कहानियां भी काफी अच्छी हैं. प्रकाश बाथम ने **'तीसरी दुनिया'** में काफी सजीव चित्रण किया है. अन्य स्थायी स्तंभ भी अच्छे हैं.

☐ **अरविंद सुंदर, दरभंगा**

समांतर कहानी विशेषांक-३ पढ़ा. सभी कहानियां आम आदमी के जीवन का नपा-तुला खाका प्रस्तुत करती हैं. समांतर कहानी विशेषांक निकाल कर **'सारिका'** ने आम आदमी के बारे में सोचने के लिए युवा लेखन को प्रोत्साहित कर सराहनीय कार्य किया है. प्रेमचंद के बाद विशेषकर पिछले पूरे दशक में हिंदी का लेखक आम आदमी से अलग रहा है. दुख यह देख कर होता है कि आज भी हिंदी में, दरबारी-परंपरा को जीवित रखनेवाले व्यक्ति-पूजा के हिमायती लेखकों की कमी नहीं. जाहिर है आम आदमी को नकारना आने वाली पीढ़ी को गुमराह करना है और यह बड़ी भयावह बात है. हिंदुस्तान का सही चित्र साठ किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से दौड़ती हुई कार की खिड़कियों से नहीं देखा जा सकता.

भगवती बाबू की नयी कहानी बेहद पसंद आयी. लघुकथाओं को मैं सबसे पहले पढ़ता हूं. **'सारिका'** की लघुकथाएं मुझे रुचती हैं. इस बार अनीता औलक का संस्मरण बड़ा मर्मस्पर्शी था.

☐ **अवध वैरागी, लखनऊ**

समांतर कहानी विशेषांक-३ का पठन किया. सभी कहानियां यथार्थ के

धरातल को छूती हुई कटु सत्य की अनुभूति करा गयीं. 'श्रमदान,' 'आदमी', 'केवल एक क्षति' तथा 'गुस्से में आदमी' बहुत ही अच्छी एवं सराहनीय कहानियां हैं. कथाकार इब्राहीम शरीफ के समांतर कहानी के लेख ने अत्यधिक प्रभावित किया. भाई इब्राहीम का यह लेख उन कथाकारों को सचेत करता एवं चुनौती देता है, जो मात्र शब्दजाल एवं बौद्धिक घटनाक्रम में बंधी हुई 'कहानी' को ही कहानी मानते हैं. यथार्थ से कतराने वाला, कहानी में व्यक्तिगत स्वार्थों को भरने वाला वास्तविक कथाकार नहीं है. जीवन एक कहानी है और उसकी सूक्ष्मता एवं स्थूलता का स्वाभाविक एवं यथार्थ बोध कराने वाला ही आज के युग का सफल कथाशिल्पी है.

☐ डा. राकेश 'बिराग', कानपुर

समांतर कहानी विशेषांक-४

जनवरी, १९७५ का अंक बेहद पसंद आया. विशेषरूप से मधुकर सिंह की **'हरिजन-सेवक'**, वल्लभ सिद्धार्थ की **'जुलूस'** और निर्मला ठाकुर की **'इंतजार'** कहानियां. कालिदास सेन की लघुकथाएं बहुत अच्छी लगीं. **'आकर्षित'** वर्तमान संदर्भ में एक नयी परिभाषा है. अनीता औलक की बेबाक बयानी जहां आकर्षक है, वहीं **'कबिरा खड़ा बाजार में'** कुछ खास प्रभाव डालने में असफल रहा है.

☐ **मदनलाल वर्मा, देवादा, दुर्ग**

'सारिका' को तीन वर्षों से 'लगातार' पढ़ता आ रहा हूं. पढ़ता पहले भी था, लेकिन कैशोर्य-रोमांटिक खयालों के 'दाल-भात' में इसकी कहानियां 'मूसरचंद' के समान लगती थीं. लेकिन जबसे जीवन पर मजबूरियों की बढ़ती उमर के भार और परेशानियों की लंबी परछाइयां पड़ने लगी हैं — इसकी कहानियां अपने जीवन से जुड़ी कहानियां लगने लगी हैं.

'समांतर कहानी' का प्रत्येक अंक हथेली पर जलते अंगारों की अनुभूति दे रहा है. विशेषतः जनवरी अंक ने तो एकबारगी ही झुलसा दिया है आज की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों के बीच हिंदुस्तान का आम आदमी कहां है— इसकी सही पहचान इस अंक की कहानियां दे रही हैं.

'जमीन का आखिरी टुकड़ा', **'चूहेदानी'**, **'हरिजन-सेवक'**, **'यह सब अंतहीन'** **'इजारेदारी'**, **'जुलूस'** आदि कहानियां आम आदमी से संबद्ध समांतर साहित्य के चेहरे को उजागर करती हैं.

'जमीन का आखिरी टुकड़ा' के बड़े दादा का परिवार अब अपना अस्तित्व तेजी के साथ खोने लगा है. आज का सामाजिक परिवेश आर्थिक तंगी के कारण इस कदर उबाऊ हो गया है कि आदमी अपने अस्तित्व को बेचने से रोक नहीं पा रहा है. सभी अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए बिलों का निर्माण कर चुके हैं, कर रहे हैं. सभी को अपने बिलों में जाने की जल्दी है. और, इस भागने-जाने की जल्दी में 'उसका' अस्तित्व भागते कदमों के नीचे कुचला जा रहा है. हम जानते हैं कि दो-दो आने में बिकने वाले ऊंटों का दाम हजार रुपये 'क्यों' हो गया है. लेकिन 'क्या' हम उस 'क्यों' को हटाने की स्थिति में हैं? सच तो यह है कि हमारी सारी स्थितियां 'क्या', क्यों और 'इसलिए' के चक्कर में ही पड़ी हैं. इस स्थिति से उबरने के लिए हमें इन्हीं पंक्तियों को व्यवहार में लाना होगा : 'आप अपने यहां के इब्बू हरामजादे का कलेजा फाड़ दीजिए . . . मैं अपनी फैक्टरी के मालिक की बोटियां नोच लूंगा. . . . और ये . . . ये अपनी सरकार की गरदन काट देंगे. . .तभी हम अपने पिताजी की जमीन वापस कमा सकते हैं. . . .'

'चूहेदानी' सत्ता की राजनीति के चेहरे पर झूठ के चढ़ाये नकाब को उलटती है. **'यह सब अंतहीन'** एकबारगी ही हमारे अस्तित्व को झिंझोड़ कर रख देने वाली कहानी है. यह एक कटु कहानी होने के कारण बिल्कुल सत्य है, और हमारे आस-पास की घटनाएं इसकी साक्षी हैं. आज की दोगली अर्थव्यवस्था ने मध्यवर्गीय और निम्नमध्यवर्गीय जमात को और कुछ दिया हो या नहीं, अपने शरीर का उपयोग अपनी भूख मिटाने के लिए कैसे किया जा सकता है— इसका ज्ञान खूब दिया है.

जितेंद्र भाटिया एवं मधुकर सिंह ने अपने-अपने निबंधों के द्वारा 'आम आदमी से संबद्ध समांतर साहित्य' पर अच्छा प्रकाश डाला है. इस प्रकार की रचनाएं प्रत्येक अंक में होनी चाहिए.

☐ **प्रकाश, गुदरी, छपरा (बिहार)**

'मेरा पन्ना' में कमलेश्वरजी ने हम पाठकों को शुभकामनाएं न दे कर बहुत ही उपकार किया है. मुझे तो (बल्कि हम सब को) सोचने पर मजबूर कर दिया है. वर्तमान में जितना हमें सामूहिक हो कर चलना है, उतने ही हम व्यक्तिगत और मुखौटावादी हो रहे हैं. शायद हमने अपने अंदर की दृढ़ता को नहीं समझा है, इसीलिए हम अपने परिवेश के प्रति जागरूक हो कर भी अपना असली स्वरूप नहीं जान पा रहे हैं.

'चंद सतरें और' शीर्षक के माध्यम से अनीता जी जो कुछ हम लोगों तक पहुंचा रहीं हैं, महज प्रशंसनीय ही नहीं, प्रेरणात्मक भी है. 'समांतर विशेषांकों' के माध्यम से आम आदमी को **'सारिका'** ने जितना ऊंचा उठाया है, वह **'सारिका'** ही कर सकती है. ☐ **सुधा पाराशर, लखनऊ**

पहले मैं **'सारिका'** का नियमित पाठक नहीं था. पेपरवाले ने समांतर कहानी विशेषांक - १ जबरदस्ती दे दिया. पढ़ कर जो प्रतिक्रिया हुई वह लिखते-लिखते न लिख पाया. पेपरवाले को धन्यवाद दिया और **'सारिका'** का स्थायी ग्राहक बन गया. एक महीना देर से प्राप्त जनवरी अंक अभी-अभी समाप्त किया है. लगता है ये कहानियां नहीं, भारत के अभागे इनसान की यथार्थ के पन्नों पर खींची गयी सच्ची तस्वीरें हैं.

'मेरा पन्ना' जैसे सशक्त स्तंभ के लिए तथा दुष्यंतकुमार की गजल प्रकाशित करने के लिए मेरी बधाई!

☐ **गोपेश नौनिहाल, पकड़ियार, गोपालगंज (बिहार)**

'सारिका' के जनवरी अंक के विषय में मैं एक बात 'सारिका' के पाठकों को अवश्य बताना चाहूंगा.

अपनी साइट पर, जो शहरों से सैकड़ों मील दूर घनघोर जंगल में स्थित है, 'सारिका' का जनवरी अंक अपने साथ ले गया था. मेरा एक मजदूर 'सारिका' उठा कर पन्ने पलटने लगा. मैंने गौर किया कि वह बड़ी तन्मयता के साथ हर पृष्ठ को देख रहा है. अंत में प्रसन्न होता हुआ अपने साथी को 'सारिका' दिखाते हुए बोला— बुधवा, ई किताब में तो आपन लोगन के बारे में लिखा जनात है. . . गायन (गांव) की तस्वीरें हैं. फिर अपने कथन की पुष्टि मुझसे चाहते हुए बोला— ई हम लोगन की किताब है न!

मैं इस अंक के छायाकार श्री विद्यावत को 'सारिका' के पाठकों की ओर से बधाई देना चाहूंगा और उन लेखकों को भी, जिनकी कहानियां तस्वीरों में घुल-मिल गयी हैं.

☐ **अरुण मिश्र, रीवा (म. प्र.).**

दमनचक्र • सुधा अरोड़ा

मुझे अपने बचपन की बहुत कम बातें याद हैं. बाबा बताया करते थे कि हमारा बचपन घर से ज्यादा इस पार्क में बीता है. सुबह-दुपहर-शाम, हर वक्त घर से गायब—हम दोनों हमेशा पार्क में पाये जाते थे. मुझे बस इतना भर याद है कि मुझमें तब गुस्सा बहुत था और मैं जब-तब दामू को पीटती रहती थी. वह मार खा कर भी मां-बाबा-दादी, किसी से मेरी शिकायत नहीं करता था और चुपचाप सहमा-सा मेरी ओर देखता रहता था. उसके बदन का पोर-पोर दर्द कर रहा होता और वह फिर मेरे पीछे लग लेता. शुरू से ही वह एक मरघिल्ला-सा, डेढ़ हड्डी का लड़का था. चश्मा लगाने के बाद वह और भी मासूम दिखाई देता था. अब भी उसका यही डील-डौल, यही ढांचा था. पर सब कुछ एकाएक ही बदल गया था. अपनी इसी रंगत में दामू अचानक एकदम सख्त और अक्खड़ लड़का बन गया था. मुझे 'दीदी' कहना तो उसने तभी बंद कर दिया था जब उसकी आवाज बदलनी शुरू हुई थी और वह फटे बांस-सी खरखराती आवाज में बोलता था, जिससे मुझे बहुत खीझ होती थी. अब वह मुझसे बिना संबोधन के बात करता था.

जाने कब, कैसे, हम दोनों में एक गहरी दुश्मनी पैदा हो गयी थी. उसकी नुकीली, उठी हुई ठुड्डी, पिचके हुए गालों की उभरी हुई हड्डियां और मोटे कांच वाला चश्मा—सब मेरी बर्दाश्त के बाहर थे. जब वह गुस्से में बोलता हुआ मुंह से थूक के छींटे उछालता था, मेरा मन होता था, उसका कॉलर पकड़ कर उसे दरवाजे से बाहर धकेल दूं. वह भी मुझे पसंद नहीं करता, यह जाहिर था. बगैर किसी कारण के, जिस तरह वह मुझे निगल जाने वाली नजरों से देखता था, मैं दूसरी ओर मुंह घुमा लेती थी.

. . .पर इन तीन दिनों में उसके घर न लौटने से, न जाने क्यों, पिछली सारी बातें वक्त-बेवक्त सामने आ कर खड़ी हो जाती हैं. हालांकि हर साल दुर्गापूजा के दिनों में हफ्ता-हफ्ता घर से गायब रहना मामूली बात थी. बाबा ने तो इन तीन दिनों में कभी पूछा तक नहीं कि दामू कहां है. पर रोज इस पार्क से गुजरते हुए मैं ठिठक जाती हूं. कोई फायदा नहीं, पर मन होता है कि एक बार बीती हुई बातों का नक्शा फैला कर खोजूं कि कहां सब कुछ इस कदर गलत हो गया. . . .

पार्क के फाटक से बाहर निकलते ही सामने वाले फुटपाथ पर हमारे मकान का दरवाजा है. इस पार्क से हो कर आने में रास्ता छोटा पड़ता है. बस, यह शार्टकट नहीं बदला और यह मकान नहीं बदला. बाबा की शादी हुई थी और वह अपनी नयी-नवेली दुल्हन को इसी दरवाजे से भीतर ले गये थे. सुनते हैं, तब इस मोहल्ले के लोग हर शनिवार की सुबह अपने दरवाजे पर खड़े रहते थे कि आनंद चक्रवर्ती की बहू काली मंदिर पूजा के लिए जायेगी. दादी थीं कि अपनी गोरी-चिट्टी, सुंदर बहू को घर से बाहर निकलने नहीं देती थीं. . . और दो साल पहले जब मां की अर्थी इसी दरवाजे से निकली थी, खटिया पर हड्डियों का ढांचा था, चादर पर दो-चार सलवटों से बाहर निकली हुई गरदन पर धंसी हुई आंखें और उभरे हुए दांत. अर्थी देख कर किसी ने कहा था—आदमी तो जिंदगी भर क्लर्क का क्लर्क ही रहा. तीन-तीन बेटियों की कमाई पर घर चलाया है बुढ़िया ने. तीन बेटियों ने तो मां-बाबा को दान-दहेज से बचा लिया और अपनी मर्जी से शादी करके इस दरवाजे से जो बाहर निकलीं, फिर पीछे मुड़ कर उन्होंने नहीं देखा. अच्छा हुआ, मां तभी चली गयीं, चौथी बेटी की कमाई की शर्म उन्हें नहीं उठानी पड़ी और न ही अपने इकलौते, सबसे लाड़ले बेटे दामू की हाजिरजवाबी का सामना उन्हें करना पड़ा, जो उनकी धुंधलाती हुई आंखों की आखिरी उम्मीद थी.

बाबा, मां के मरने के बाद और समझदार हो गये थे. अपनी बीमारी पर अब उन्हें खीझ नहीं होती थी बल्कि हर चीज के प्रति उनमें एक उदार दृष्टि आ गयी थी. एक ही बात को ले कर वह मुझे भी उतने ही ठोस तर्कों से समझाते थे और दामू को भी और दोनों को अपनी-अपनी गलती का एहसास करवा देते थे. पर पिछले दो महीनों से वह कुछ ढीले-से हो गये हैं—एक ही बिस्तर पर लेटे-लेटे उदास और पस्त. . .

★ ★

आज ताला खोलते वक्त मेरे हाथ कांप रहे हैं. नहीं, बाबा की फिक्र नहीं. शुरू-शुरू में अपना यह कार्यक्रम बहुत घातक, बहुत क्रूर लगता था कि बीमार बाप को ताला बंद कर लड़की अपनी नौकरी पर चली जाती है. तब मैं लौटती थी तो दूर से ही यह मनाते हुए कि दरवाजा खुला हो, दामू लौट आया हो. दामू तब इतना गैरजिम्मेदार भी नहीं था. अब तो इस ताले की दूसरी चाभी भी उसके क्लब की दुर्गापूजा के महोत्सव में पूजा के साज-सामानों में कहीं खो गयी होगी. अब घर से जाते वक्त यह मालूम होता है कि इन छह-सात घंटों में बाबा को किसी चीज की जरूरत नहीं होगी. दरवाजा खोलते हुए, पहले की तरह, यह दहशत नहीं होती कि कहीं बाबा

के ओठ खुले हुए न हों, आंखें छत पर टिकी न हों. उस कोने की ओर बहुत डरते-डरते मैं देखती थी. अब दरवाजा खोलते ही मैं यह भांप लेती हूं कि खटिया से घुटी हुई सांसों की आवाज आ रही है.

बाबा सो रहे हैं. रात भर उन्हें नींद नहीं आती. अब तो यह नियम-सा बन गया है कि वह मेरे आने के बाद ही सोते हैं. इस वक्त उनका सोना मेरे लिए बहुत सुविधाजनक रहता है. पता नहीं, उन्होंने मेरे अनुसार यह आदत डाल ली है या सचमुच वह रात को सो नहीं पाते. इस उम्र और इस बीमारी में आदमी बहुत गुस्सैल, बहुत चिड़चिड़ा हो जाता है. पर बाबा और ज्यादा सहनशील, अंतर्मुखी हो गये हैं. बस, उनकी एक ही आदत है जिससे मैं बौखला जाती हूं. उठते ही कहेंगे—सामने से अखबार ले आ, खबरें पढ़ कर सुना. या ट्रांजिस्टर चला दे, खबरें आ रही होंगी. लगता है, उनके दिमाग में एक घड़ी फिट हो गयी है, खबरें आने का वक्त उन्हें पता चल जाता है. जितनी देर आकाशवाणी से समाचार आते रहते हैं, मेरे माथे की नसें तनी रहती हैं. लगता है, भीतर एक ज्वालामुखी सुलग रहा है, जो फट जायेगा. सब कुछ बर्दाश्त के बाहर हो जाता है—खबरें, खबरें खबरें. परमाणु विस्फोट और क्रिकेट का टेस्ट मैच और प्रधानमंत्री का विदेश दौरा—इन सबसे बाबा को, जो अपनी खिड़की से बाहर भी नहीं झांक सकते, कैसी दिमागी शांति मिलती होगी! हां, एक बार कितना गिरा हुआ, कितना नीच खयाल मेरे दिमाग में आया था कि बाबा को गलत दवा दे दूं या चाय में स्लीपिंग पिल्स की पूरी शीशी उंडेल दूं. उनके जीने का कोई अर्थ मेरी समझ में नहीं आता था. पर फिर यही सोचना बदल गया था. जब उन्हें अपनी जिंदगी बोझ नहीं लगती तो क्या हक है मुझे उनकी जिंदगी खत्म करने का—सिर्फ इसलिए कि उन्हें दो वक्त का रूखा-सूखा खाना मैं दे देती हूं और रोज सुबह उनका कमोड जमादार से साफ करवाने के लिए बाहर रख देती हूं. कभी उन्हें अखबार पढ़ कर सुना देती हूं, कभी पड़ोस में ताला बंद है, का बहाना बना कर कह देती हूं कि अखबार ही नहीं मिला. . . और अब तो उनका होना बहुत जरूरी लगता है. वह कुछ कहते-सुनते नहीं, समझाते भी नहीं, पर उनके इस बेजान शरीर का होना भर अपने-आपमें कितना अहम हो गया है—मेरे और दामू के बीच एक पुल. बाबा नहीं रहेंगे तो इस घर में पता नहीं हम दोनों में से कौन होगा—मैं या दामू!

सोचा तो अपने लिए भी यही था. अपनी इस तेईस साल की जिंदगी का ही कौन-सा अर्थ मेरी समझ में आया था! रोज बीमार बाप की सेवा-टहल और अपने आवारा, निकम्मे भाई से दो-चार कड़ी बातें सुनना. काम के नाम पर यह कि कभी इस, कभी उस कंपनी की चीजों के नमूने झोले में डाल कर दरवाजे-दरवाजे घूमना, और एक ही रटा-रटाया पाठ सबके सामने सुना देना. कभी किसी दरवाजे से यह सुनना कि माफ करो, इस वक्त हमें फुर्सत नहीं है, कभी किसी आदमी का गलत इरादे से देखते हुए यह कहना कि और कोई काम करना हो तो. . .पर नहीं, एक अनाम इंतजार में यह सोचना भी टल गया था कि किसी दिन तो कोई सही आदमी सामने होगा. . . और मेरी तीन बड़ी बहनें, जो इसी चौखट से निकली हैं, अब सुखी तो हैं न.

घर की सारी चीजें वैसे ही अनछुई पड़ी हैं. दामू करीने से रखी हुई चीजों को बिखेर देता है, पर उस बिखराव में यह एहसास तो रहता है कि इस घर में लोग रहते हैं. मेज पर से हाथ हटाया है तो वहां उंगलियों के निशान पड़ गये हैं. इतनी धूल—यह घर किस कदर भुतहा लग रहा है! मां इस एक कमरे को भी किस तरह सजा-संवार कर रखती थीं. उन्हें तो सफाई करने की सनक थी. हर वक्त उनके हाथ में झाड़न होता और एक-एक शीशी-बोतल उठा-उठा कर वह पोंछती रहतीं. अब इस घर में सामान ही कितना है. बाबूजी की खटिया के किनारे वाली तिपाई पर ट्रांजिस्टर था, अब नहीं है. लगता है, घर का एक आदमी चला गया है. विश्वास करने को मन नहीं होता, पर दामू अब कुछ भी कर सकता है. उसकी यह मजबूरी कभी मेरी समझ में नहीं आयेगी कि उसने ट्रांजिस्टर बेच दिया. दो साल से जो अपने फटे हुए जूतों को घसीट रहा है, उसकी कौन-सी शान बाकी है जिसे ट्रांजिस्टर बेच कर उसे बचाना पड़ा है? यह घटना हम दोनों के बीच हुए झगड़े की चरम स्थिति थी, लेकिन मैं उसे भूल गयी थी. हो सकता है, दामू भी भूल गया हो और तीन दिन से घर न आना सिर्फ उसकी व्यस्तता हो . . .

★ ★

अब याद करूं तो लगता है कि वह बात इतनी बड़ी नहीं जितना हमने उसे तूल दे दिया था. उस दिन दुपहर उस मनहूस माहौल में बहुत शिथिल हो कर लेटी ही थी कि किसी ने इतनी जोर से सांकल बजायी थी कि वह चोट हथौड़े-सी सर पर लगी थी. दरवाजा खोला था तो सामने टाई-सूट वाला एक रोबदार आदमी था.—दमन चक्रवर्ती यहां रहता है? वह गुस्से से कांप रहा था.

—हां.

—उसके पिताजी घर में हैं?

—आपको जो भी कहना हो मुझे कहिए. बाबा बीमार हैं, उठ नहीं सकते.

—आप उसकी बड़ी बहन हैं? उसने दांत पीसे,—देखिए, अपने भाई को समझा दीजिए. गली-मुहल्ले दुर्गा-पूजा के लिए चंदा मांगते फिरते हैं. महंगाई का जमाना है, हमारा जितना मन होगा, चंदा देंगे. नहीं मन होगा तो कोई हमसे जबर्दस्ती चंदा ले लेगा? चंदा नहीं दिया तो साला आंखें दिखा रहा था. नीचे उतर कर चिल्ला कर कहता है, मने राखबेन, आमार नाम दमनचक्र. आप लोग अपने घर के लड़कों को समझाते नहीं? आज उससे कह देना, उसने कुछ गड़बड़ की तो मेरी बहुत बड़ी फैक्टरी है, साले को गुंडों से पिटवा दूंगा, होश ठिकाने आ जायेंगे साहबजादे के! हुंह, मने राखबेन, आमार नाम दमनचक्र. . .

मैं क्या कहती? पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये थे. सामने वाले घर से अम्माजी अपनी ऐनक संभालती हुई आयीं—दामू के लिए कह रिया था? दामू तो साच्छात त्रिभन महाराज हो रिया है, लोग उलाहने ले-ले कर आवें. कितना अच्छा लड़का था अपना दामू. . .

हां, अब दामू अच्छे की परिभाषा से बाहर आ गया था. एक वह जमाना था—हम दोनों चक्रवर्ती भाई-बहन स्कूल के वार्षिकोत्सवों में ढेरों पुरस्कार लाते थे. अपनी-अपनी क्लास की बारी आते ही दीप्ति चक्रवर्ती और दमन के नाम सबसे ऊपर रहते थे. पढ़ाई में, स्पोर्ट्स में, यहां तक कि शत प्रतिशत उपस्थिति में भी—कितनी किताबें, मैडल घर में जमा हो गये थे. अब वह सारे बदरंग हो गये मैडल और दीमक लगी किताबें पुरानी अलमारी में बेतरतीबी से रखी हुई थीं. . .उस दिन स्कूल की हायर सेकेंड्री की फाइनल परीक्षा थी. बायलॉजी का पेपर था और परीक्षाकेंद्र में फसाद हो गया था. बाहर निकाले गये छात्रों में एक नाम दमन चक्रवर्ती का भी था. बस, उस दिन से उसकी दुनिया बदल गयी थी. जाने कैसे दोस्तों से वह गंदी-गंदी गालियां सीख गया था. दूसरे साल हायर सेकेंड्री में किसी तरह पास हो गया था और कॉलिज म नाम भी उसने लिखवा लिया था, लेकिन पढ़ने में उसका मन नहीं लगता था. अपने-आपको कलाकार समझने लगा था वह. उसने पेंटिंग शुरू की, पर वह एक महंगा शौक था. अपने एक रईस दोस्त के घर जा कर उसकी इलेक्ट्रिक गिटार बजाना वह सीख रहा था. तभी हमारी तीसरी दीदी एक दिन अचानक घर से गायब हो गयीं और दामू ने बाबा का कहना मान कर एक बड़ी कंपनी में सेल्समैन की नौकरी कर ली. और कलाकार बनने का भूत उसने अपने दिमाग से उतार दिया था. दिन भर काम और शाम के लिए उसने एक क्लब ज्वायन कर लिया था. धीरे-धीरे वह छह-सात लड़कों का शुरू किया हुआ क्लब काफी बड़ा हो गया था और वहां आये दिन नाटक और संगीत के प्रोग्राम हुआ करते थे. अब उस क्लब में कुछ बड़े-बड़े रईसों के लड़के भी आ गये थे और दामू जैसे लड़कों को चंदा बटोरने और ऊपरी दौड़ भाग का काम ही सौंपा जाता था. दामू तब बहुत बौखलाया-सा घूमता था... एक बार मैंने तीन-चार दिन लगातार उसे सुबह-दुपहर सड़क पर घूमते पाया तो रात को मैंने उससे पूछा कि आजकल वह काम पर नहीं जाता? उसने उतनी ही आसानी से जवाब दिया—मैंने सात दिन पहले नौकरी छोड़ दी है.

मुझे पहले ही लग रहा था कि वह ज्यादा दिन इस नौकरी पर नहीं टिकेगा. पर बाबा अपना आपा खो बैठे थे—मुझे तुमसे यही उम्मीद थी. घर के लिए अढ़ाई सौ रुपल्ली लाते थे, उसमें से सौ-सवा सौ क्लब में और अपने जेबखर्च में फूंक आते थे और अब नौकरी भी छोड़ दी. हुआ क्या था?

—उन लोगों को लगता था, मैं एक घंटे का काम चार घंटे में करता हूं. गाड़ियों में घूमने वाले लोगों को क्या मालूम, कलकत्ते की बसों में धक्के खाना क्या चीज होती है!

—बस, इतनी सी बात और जनाब ने नौकरी छोड़ दी! बाबा गरम हो गये थे.—अरे, हमारी तो सरकारी नौकरी थी, फिर भी क्या-क्या नहीं सुनना पड़ता था. तुम आजकल के लड़के खाली बातें बनाना जानते हो. अभी हफ्ता भर पहले तू ही कह रहा था न अपनी बहन से, मैं बंगाल का नेता बन जाऊं तो सबसे पहले हाथरिक्शा वालों को साइकिल-रिक्शा दिलवा दूं जैसे द्रमुक सरकार ने किया है. नेता बनने से पहले कितना कुछ सहना पड़ता है, कितनी गालियां खानी पड़ती हैं, वह भी मालूम है? बस, दो बातें सुनीं, नौकरी छोड़ आये.

—ये दो बातें हैं? साला मेरी पूरी कौम को गाली दे रहा था: तुम लोग बस आर्टिस्ट बन सकते हो या भीख मांग सकते हो. तुम्हारे बाप-दादों ने भी कभी मेहनत का काम किया है? एक घंटा देर लगा कर मेरा दस हजार का नुकसान कर दिया. मैंने भी कह दिया, संभालो अपनी नौकरी. दमन चक्रवर्ती ऐसी नौकरी नहीं करेगा.

—हां, बाबा की आवाज कांप रही थी,—दमन चक्रवर्ती के तो सिर पर सींग हैं. यह नहीं सोचा कि अढ़ाई सौ रुपये देता है वह, तुम अढ़ाई बात नहीं सुन सकते! तुम्हारी इज्जत कम हो गयी यह सब सुन कर? ईमानदारी से काम करते रहते, अपने आप वह...

इस बार दामू का चेहरा तन गया था. —बाबा, आपका जमाना गया. लात खा लो, चुप रहो, क्योंकि महीने की पहली तारीख को कागज के दो टुकड़ों की खैरात मिलती है. दामू मुंह से थूक के छींटे उछाल रहा था —आपने बहुत ईमानदारी से काम किया न, क्या दिया हमें? यही एक घर, यह बगैर रंग-रोगन का एक कमरा, जहां सुबह उठ कर आधा घंटा पेशाब रोक कर खड़े रहना पड़ता है,क्योंकि नीचे क्यू लगी रहती है. . . . और आपके साथ के लोग, जिन्होंने बेईमानी की, आज बालीगंज-टालीगंज में दोमंजिला मकान बनवा कर ठाठ से रह रहे हैं और उनके लड़के-लड़कियां जाने किस-किस की सिफारिश पर ऐसी-ऐसी नौकरियों पर लगे हैं जिनके काबिल उनके पास डिग्री भी नहीं. . .

★ ★

वह पहली और आखिरी नौकरी थी. उसके बाद दामू को नौकरी नहीं मिली. और अब तो उसने हार कर कोशिश भी छोड़ दी है. बस, जब देखो, किराये की साइकिल लिये इधर से उधर भाग रहा है — क्लब के लिए चंदा उगाहना, पंडाल सजाने वालों को खुद सारे डिजाइन समझाना, लाउडस्पीकर लगा कर नये-से-नये और रवींद्र-संगीत के रेकार्ड बटोरते फिरना — हर तरफ से यह कोशिश कि उस मोहल्ले की पूजा सबसे अलग, सबसे कलात्मक हो. दुर्गापूजा खत्म होने के बाद महीने भर वह इतना उदास और लावारिस घूमता था जैसे किसी अपने की मौत हो गयी हो. इस बार वह कुछ ज्यादा ही जुटा हुआ था — न खाने की सुध, न पहनने की. जब से नौकरी छूटी थी, वह बाबा से आंखें चुराने लगा था. अब तो बाबा खुद ही उसे कुछ नहीं कहते थे पर वह न घर पर खाना ठीक से खाता था, न चैन से सो पाता था. एक दिन सुबह मेरे काम पर जाने से पहले वह मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया था — मुझे पच्चीस रुपये चाहिए. वह नीचे देख रहा था, पर यह साफ था कि वह रात भर नहीं सोया है.

—क्या लेना है?

—पूजा के लिए चंदा चाहिए.

—चंदा? वाह! अब घर वालों से भी चंदा मांगने लगे.

—इस बार लोगों ने पहले की तरह चंदा नहीं दिया है. हमें चार हजार का फौरन इंतजाम करना है. सब अपने-अपने घरों से कम-से-कम पच्चीस-पच्चीस रुपये दे रहे हैं.

—अपने-अपने घरों से नहीं, अपनी-अपनी कमाई से. सिर्फ मेरी कमाई से यह घर कितनी अच्छी तरह चल रहा है, शायद तुझे दिखाई नहीं देता. तुझे कमा कर हम सबको खिलाना चाहिए. तू उलटे मुझसे पच्चीस रुपये मांग रहा है.

—हां, मैं तो अपनी मर्जी से हाथ पर हाथ धरे बैठा हूं न! तुम दिलवा दो न काम. खैर, मुझे लेक्चर नहीं सुनना. मुझे पच्चीस रुपये चाहिए. उसने मेरा पर्स पकड़ा था.

—मेरे पास हैं रुपये, पर मैं दूंगी नहीं तेरे उस क्लब को, जिसमें सब तेरे जैसे निकम्मे, काहिल, अड्डेबाज लोग भरे पड़े हैं या फिर उन रईसों के बेटे, जिनके पास बहुत-सा काला पैसा है. तूने अपनी जिंदगी, अपना उठना-बैठना सब उस क्लब के नाम लिख दिया है, अब क्या हमें भी. . .

—देखो, बढ़-चढ़ कर मत बोलो. मुझे दो वक्त का खाना दे देती हो, यह बहुत बड़ा एहसान है न तुम्हारा! मैं अपनी मर्जी से एक पत्रिका तक खरीद कर नहीं पढ़ सकता, अपनी पसंद से घर के लिए एक चीज नहीं ला सकता और तुम हर महीने तीन रुपये अपनी आईब्रोज शेप करवाने के लिए खर्च करती हो, वह बहुत जरूरी खर्च है. मेरा मुंह मत खुलवाओ, लेकिन तुम भौंहे बनवा कर इतनी बदसूरत और बनावटी लगती हो जैसे. . .जैसे मंगलग्रह से उतर कर आयी हो. . .

—दामू, तू निकल जा यहां से बाहर. बात करने की तमीज भी तुझमें नहीं रह गयी है.

—मैं नहीं जाऊंगा. तुम जाओ और ले जाओ अपनी कमाई भी साथ ही. मैं बाबा को भूखा नहीं रखूंगा, तुम्हें हमारे लिए मिटने की जरूरत नहीं है. बड़ी दीदी जैसे गयी हैं न, तुम भी रोज घर-घर जाती हो, अब तक ढूंढ क्यों नहीं लिया?. . .लेकिन याद रखना, पच्चीस रुपये मैं आज ही ले कर जाऊंगा, यह मेरा प्रेस्टीज ईशू है.

मैं बगैर कुछ कहे घर से बाहर निकल आयी थी. हां, इसकी 'प्रेस्टीज' कितनी है, यह मुझसे बेहतर कौन जानता है? मुझे एकाएक दामू पर तरस आया था. यह लड़का कितनी गलत जगहों पर अपनी सारी प्रतिभा खर्च कर रहा है. . . लेकिन घर लौटते ही दामू पर आया सारा तरस झड़ गया था. वह सामने होता तो मैं उसे दो-चार तमाचे जड़ देती. घर से ट्रांजिस्टर गायब था—डेढ़ सौ का ट्रांजिस्टर वह तीस-चालीस रुपये में बेच आया होगा. घर में एक यही चीज थी जो उसके काम आ सकती थी. लेकिन दामू भी यह तो जानता था कि बाबा को ट्रांजिस्टर का कितना बड़ा आसरा है. अकेले में उनका मन लगा रहता है. दामू इतना क्रूर हो सकता है, यह तो मैं सोच भी नहीं सकती थी—वह मेरी कोई भी चीज बेच आता, लेकिन बाबा... और अब एक बाहरी आदमी आ कर हमें हिदायत दे रहा था कि अपने भाई को संभाल कर रखो. शाम को दामू लौटा था, चेहरा तना हुआ—आते ही बाबा के पास खड़ा हो गया था, उनके माथे पर हाथ छुआ था उसने.

—खाना रखा है, मैंने कहा था.

—मैं खाना खा कर आया हूं.

—वह तो तेरी शक्ल ही बता रही है कि कितना खाना खाता है. वह इन दो महीनों में आधा रह गया है. चेहरा इस कदर मुरझाया हुआ कि अर्थी के वक्त मां की धंसी हुई आंखें और गालों की उभरी हुई हड्डियां याद आती हैं.

—बाबा ठीक हैं? उसने पूछा था.

—तुझे क्या करना है? वह दिन में चार बार ट्रांजिस्टर सुनते थे और वह तू बेच आया.

—तुम किसी बात का सीधा जवाब नहीं दे सकतीं? रुपये मुझे देने ही थे. ट्रांजिस्टर तुम्हारा नहीं था, तुम्हारी कमाई का नहीं था. मैंने तुम्हारी चीज नहीं ली और मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना है.

—लेकिन मुझे कहना है. आज सामने वाले त्रिलोक भवन से एक आदमी आया था, दमन चक्रवर्ती को पूछ रहा था. तुझे तो अपना नाम पसंद नहीं था न, अब जिस-तिस से झगड़ा करके तू अपने नाम का ढिंढोरा पीटता रहता है, मने रायबेन, आमार नाम दमनचक्र!

—तुम भी वही सब मुझसे कहना चाहती हो जो वह आदमी कह कर गया है! मुझे अपनी सफाई नहीं देनी है.

—मुझे तेरी सफाई चाहिए भी नहीं. सिर्फ इतना बता दूं कि वह अपने गुंडों से किसी दिन तुझे पिटवा देगा. वे बड़े लोग हैं, उनके हजार हाथ हैं, उनसे तू लड़ नहीं सकता.

—मेरा खून करवा देगा तो तुम काली मंदिर जा कर प्रसाद चढ़ा आना, लौट कर बाबा को भी थोड़ा प्रसाद दे देना.

सुधा अरोड़ा (जन्म : ४ अक्तूबर, १९४६) ने अपनी कहानियों में हमेशा आज की जिंदगी के धुंधलकों के पार देखने की कोशिश की है. परंपराओं के प्रति एक तीव्र आक्रोश इनके पात्रों में नजर आता है. सुधा की कहानियां अनजाने दर्द और मुक्ति की तलाश की कहानियां हैं.

—इस बार चंदा पूरा नहीं मिला तो तू ऐसे अनजाने लोगों से झगड़ रहा है. उन्होंने ठेका लिया है क्या दुर्गापूजा करवाने का? अभी दुर्गापूजा है, फिर लक्ष्मीपूजा, फिर कालीपूजा, फिर जगधात्री पूजा, फिर सरस्वती पूजा—कोई कितना चंदा देगा, हर एक की अपनी सीमाएं हैं.

—हां हां, देखी हैं सीमाएं. हर शनिवार वह पांच-सात सौ रुपये रेस में हार आता है, हर महीने उसके यहां शराब की पार्टियां होती हैं और वह हमें दस रुपये नहीं दे सकता! न दे, पर चंदा न देने के साथ-साथ इतना लंबा उपदेश क्यों देता है हमें कि कुछ काम-धंधा करो, चंदा क्यों मांगते फिरते हो, तुम लोगों को बैठे-बैठे खाने की आदत पड़ गयी है, चंदे से रुपया जमा करोगे, आधा पूजा में लगाओगे, आधे से साल भर बैठ कर खाओगे. मैं उसे छोड़ूंगा नहीं, वह साला मुझे क्या पिटवायेगा. . .

—चंदा मांगने जाओगे तो वह सब सुनना ही पड़ेगा. इसी बित्ते भर के मोहल्ले में दस जगह पंडाल लगे हैं, दस लोग चंदा लेने सिर पर आ खड़े होते हैं. मुझे तो आज तक समझ में नहीं आया, जिन गलियों में इतनी गरीबी पल रही है, वहां हजारों का खर्च सिर्फ बिजली और सजावट पर करने से क्या मिलता है तुम लोगों को. इस सबको एनजॉय तो फिर वही करते हैं न जो छुट्टी मनाने, घूमने निकलते हैं. भूखा आदमी इन सजावटों से अपना पेट तो भर नहीं सकता. तुम लोगों के लिए तो दुर्गापूजा मनाना, टीमटाम करना एक हॉबी है, ढकोसला है. बस, इससे ज्यादा कुछ नहीं. इतना पैसा बटोर कर क्यों नहीं उनमें बांट देते, जिन्हें सचमुच इसकी जरूरत है?

—हां, दो दिन अच्छा खा लेंगे, पहन लेंगे, फिर वही भूख. साल भर हम इस भूख से, गरीबी से लड़ने की ताकत यहीं से लेते हैं. हमें मानसिक शांति मिलती है, पर यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा.

—अच्छा, तुझे सचमुच मानसिक शांति मिलती है? मुझे नहीं मालूम था कि तू इतना बड़ा आस्तिक हो गया है. तू तो ईश्वर, पूजा, मंदिर—कुछ नहीं मानता था.

दामू ने जवाब नहीं दिया. वह बाहर जाने लगा तो मैंने पूछा—ट्रांजिस्टर तूने सचमुच बेच दिया क्या? कितने रुपये मिले?

—मैं आ रहा हूं. कल भी खाना नहीं खाऊंगा.

—फिर घर आने की भी क्या जरूरत है?

तब मुझे नहीं लगा था कि उसने मेरा यह आखिरी वाक्य सुना भी है. वह तीन दिनों से घर नहीं लौटा. आज चौथा दिन है. मैंने तो अभी बाबा को यह भी नहीं बताया कि ट्रांजिस्टर विभू नहीं ले गया, दामू बेच आया है. बाबा कुछ नहीं कहेंगे, बस, सूनी-सूनी पनियायी आंखें एक तरफ फेर कर देंगे.

—दी ऽऽ पू. यह शायद बाबा ने दूसरी बार मुझे आवाज दी है. उनकी आवाज और पुकार सुनाई नहीं देती.

—आ गयी, बेटा? कब आयी? उनकी आवाज बेतरह कांप रही है—तनखा मिली?

—आज तो अट्ठाईस है, बाबा. परसों मिलेगी.

—अगले महीने जाना है? पता नहीं उनकी आवाज को क्या हो गया है. एक-एक शब्द बोलने में जैसे उनकी पूरी ताकत खत्म हो जाती है.

—जाना है.

—चलो, अच्छा है. बाबा उठने की कोशिश करते हैं. उनकी आवाज सुन कर डर लगता है. मौत के नजदीक पहुंचते हुए आदमी की आवाज क्या इतनी सूनी, इतनी भयावह हो जाती है?

—कुछ चाहिए, बाबा?

—अखबार है?

तभी दरवाजे की सांकल जोर से बजी है. फिर कोई नया आदमी, फिर कोई नया उलाहना. या शायद दामू आ गया है. मैंने झटके के साथ दरवाजा खोल दिया है. नहीं, दामू नहीं लौटा. उसका कोई साथी है. वैसी ही उजड़ी हुई शक्ल. अट्ठारह-उन्नीस साल के नौजवान और सबके एक जैसे पिटे हुए चेहरे. मैं कहने को हुई हूं कि दामू घर में नहीं है. तभी वह एक सांस में बोला है—दामू अस्पताल में है—सुबह से.

—क्या ऽऽ! मैं चौंकी हूं. एक-न-एक तमाशा खड़ा करने की उसे आदत है. दामू, तू हमें चैन से नहीं रहने देगा.

—दामू पी. जी. के एमरजेंसी वार्ड में है. कल रात उसके पेट में बहुत दर्द था. वह कहता रहा, डाक्टर को बुलाने की कोई जरूरत नहीं, ठीक हो जायेगा. सुबह अचानक बहुत बढ़ गया तो अस्पताल ले गये. फूड पायजनिंग है शायद. आप अकेले चली जायेंगी? मुझे जरा काम है. वैसे दामू के पास दो लड़के हैं हमारे.

मेरे होंठ कांप रहे हैं. नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा. मैंने बाबा को कहा है, अभी बाजार से अखबार ले कर आती हूं. दरवाजा बंद कर ताला लगाया और बाहर आ कर रिक्शा लिया. वही हाथरिक्शा. इस मैनपुलिंग रिक्शे में दामू आज तक एक बार भी नहीं बैठा. . . कहीं दामू ने खुद कुछ खा तो नहीं लिया? नहीं, यह काम वह कभी नहीं कर सकता. मैंने रिक्शे वाले को तेज चलने को कहा है, पर वह झटके के साथ रुक गया है. सामने लंबा जुलूस है और रास्ता बहुत संकरा है. इतना शोर, इतने बैंड-बाजे—आज दशहरा है, दुर्गा की प्रतिमा का विसर्जन. रिक्शे वाले ने एक से कहा है—रास्ता दे दो, अस्पताल जाना है, पर सड़क के दोनों ओर देखने वालों की भीड़ जमा हो गयी है. नहीं दामू, तुम जा नहीं सकते, मुझे वहां तक पहुंच लेने दो, मैं सब देख लूंगी, तुम इतनी आसानी से मर नहीं सकते. . .उफ, यह कैसा जुलूस है! पहले लाल पगड़ी वाला बैंड, फिर 'आरोही संस्थान' के नीली वर्दी वाले लड़के बांसुरी बजाते हुए, उनके पीछे एक और रंगीन बैंड, फिर ढोल-नगाड़े वालों का जत्था, फिर बॉक्सिंग क्लब के लड़के एक कतार में तुरही जैसा कुछ बजाते हुए. . .अब भी वह सजी हुई ट्रक कितनी दूर है. अब मोटर साइकिल की दोनों तरफ चार कतारें, जिन पर सवार लोग कभी एक हाथ, कभी दोनों हाथ छोड़ कर करतब दिखाते जा रहे हैं, फिर कुछ सरदार लड़के हाथों में बंधे रेशमी रूमाल फहराते हुए, भांगड़ा करते हुए. . .और अब ट्यूबलाइट्स से सजी हुई गाड़ी. . .गाड़ी के सामने आते ही मैंने भय से आंखें मूंद ली हैं—इसमें तो सिर्फ राक्षस है—त्रिशूल सीने में उतरा हुआ, खून से सराबोर. क्या इसे ले जाने के लिए इतनी सजावट की गयी है? फिर रेशमी पोशाक में एक और लंबा बैंड-बाजे वालों का जुलूस—उफ, क्या तमाशा है! किस कदर रास्ता रोक रखा है. . .

और इतना शोर. . .कान फट रहे हैं. . .और अब आखिरकार बल्बों की कतार से सजी हुई गाड़ी, जिसमें दुर्गा की प्रतिमा है. दुर्गा के चेहरे पर एक चमक है, पीछे रंग-बिरंगा घूमता हुआ चक्र है—लाल, पीला, नीला, हरा, रंग बारी-बारी से चक्राकार घूम रहा है, आंखें चौंधिया गयी हैं. . .

रिक्शा गलियों से निकल कर एक अंधेरे-से रास्ते पर अचानक रुक जाता है—अस्पताल आ गया है. उतरिए. मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है. इतनी रोशनी, इतने शोर के बाद इस अस्पताल के बाहर कितना अंधेरा लग रहा है! पर यहां भी उतनी ही भीड़ है. बाहर ही एक झुर्रियों वाले हाथ ने थरथराती हुई आवाज में रास्ता रोका है—दीदीमोनी, खाली शीशी-बोतल औषध जन्ये निये जाओ. दस दस पैसा, मां. मैं उसे परे कर भीड़ को चीरती हुई निकल आयी हूं.

एमरजेंसी वार्ड के सामने लाल बत्ती जल रही है. कोई आवाज नहीं. अंदर जाना मना है. नहीं-नहीं. इन चीजों से तुम इतनी जल्दी छुटकारा नहीं पा सकते. मेरे भीतर की हलचल शांत हो गयी है—तुम इतनी आसानी से मर नहीं सकते. एटा होते पारे ना. . .मुझमें एक स्थिरता-सी आ गयी है. बाबा अखबार का इंतजार कर रहे हैं और मैं कितने जुलूसों, कितनी बाधाओं को पार कर यहां तक आ गयी हूं. . .

मेरी बगल में सिर्फ एक लड़का है जो शायद दामू का साथी है. उसके चेहरे का चिंतित भाव एक सुकून-सा देता है और मैं निढाल बेंच की पीठ पर अपना सिर टिका देती हूं. भीतर से उल्टियां करने की आवाज आ रही है. ऐसी आवाज सिर्फ दामू की ही हो सकती है. डाक्टरों की अस्पष्ट, हलकी बातचीत सुनाई दे रही है. अभी डाक्टर बाहर निकल कर अपनी मशीनी आवाज में यह सूचना देगा—ही इज आउट आफ डेंजर.

बाहर, कॉरिडोर की खिड़की की तरफ हलका-हलका शोर है. वह जुलूस घूम कर शायद इधर ही आ रहा है. इतनी तरह की मिश्रित आवाजों का शोर दूर से कितना हास्यास्पद लगता है. . .

□□□

४०३, सी क्रेस्ट–१, सात बंगला, जयप्रकाश रोड,
अंधेरी (पश्चिम), बंबई–४०००५८.

एक लघुकथा

नेता और आदमी

● मुकुंदमाधव मेहरोत्रा

नगर में एक आलीशान बिल्डिंग का निर्माण-कार्य चल रहा था. एक बार एक नेता जी अपने चमचों सहित उधर से गुजरे. वहां खड़े एक व्यक्ति से उन्होंने पूछा—यह किस बिल्डिंग का निर्माण-कार्य चल रहा है? उस व्यक्ति ने नेता और उनके चमचों को अपने सामने खड़े देखा तो सकपका गया. हाथ जोड़ कर बोला—जी! यह म्युनिसपैल्टिी की नयी बिल्डिंग बन रही है. फिर कुछ रुक कर बोला—

. . .इस बिल्डिंग का शिलान्यास तो हो चुका है और शायद बिल्डिंग पूरी हो जाने के बाद उदघाटन करने के लिए भी किसी और को बुलाया जा चुका है . . . □

अंतहीन-दो • सुदीप

• एस. सी. सिन्हा

राम-राम करके किसी तरह गाड़ी चल पड़ी थी.

जून की गर्मी, लू, धूप, मक्खियां, पसीना और भीड़. हवा का कहीं नामो-निशान नहीं. रात को थोड़ी-सी बारिश पड़ गयी थी, जिसने उमस को और भी ज्यादा बढ़ा दिया था. तीसरे पहर की धूप में प्लेटफॉर्म का कोना-कोना चमक और झुलस रहा था और कंपार्टमेंट में ठुंसी हुई भीड़ को देख कर मेरा दम निकला जा रहा था. समझ नहीं आ रहा था यह चौबीस-पचीस घंटों का सफर कैसे तय होगा. वैसे भी यह बोगी गाड़ी में बाद में लगायी गयी थी. कोई गंगा-स्नान चल रहा था और लोग दिनों से स्टेशन पर पड़े हुए थे. इसीलिए रेलवे वालों ने हर गाड़ी के साथ एक-एक, दो-दो अतिरिक्त बोगियां लगाना शुरू कर दिया था.

इन अतिरिक्त बोगियों की हालत भी यह थी कि लगता था, न तो महीनों से इनकी सफाई की गयी है, न इनका कभी इस्तेमाल किया गया है. न उनमें बिजली का प्रबंध था, न पानी का. मदन का स्टेशन पर कुछ लोगों से परिचय था. उसी ने किसी तरह मेरा रिज-र्वेशन करवा दिया था और फिर कहीं से ढूंढ-ढांढ कर एक इलेक्ट्री-शियन को ले आया था, जिसने फ्यूज जोड़-जाड़ दिया था.

मनहर मक्खियों की वजह से परेशान था. एक मोटी-सी मक्खी बार-बार आ कर उसके चश्मे के कांच पर बैठ जाती थी और वह बार-बार झुंझला कर चश्मा उतार लेता था. चश्मा उतारते ही मक्खी उड़ कर इधर-उधर मंडराने लगती थी और उसके दुबारा चश्मा लगाते ही फिर आ कर कांच पर जम जाती थी.

—यह साली तो मान ही नहीं रही! आखिर उसने बेहद खीज कर अपनी हथेली चश्मे के कांच पर दे मारी. मक्खी उड़ गयी, और वह बड़बड़ा कर रह गया— साली किसी लेनदार की तरह बार-बार अड्डा जमा लेती है!

—तो देनदार की तरह तुम भी उससे मुंह चुरा जाओ न! सती ने कहा. इस पर सभी हंस पड़े. मनहर ने एक बार मोटे कांच के पीछे से बड़ी संजीदा नजर से सब की ओर देखा और चुपके से चश्मा उतार कर जेब में रख लिया.

—अब देखोगे कैसे? मदन ने उसे छेड़ दिया. साथ ही वह एक सुराही वाले से बातें करने लगा.

—देखने को है ही क्या? मक्खियां! मनहर चिढ़ गया. पर तभी गार्ड ने सीटी दे दी. मदन ने फुर्ती से पानी से भरी एक सुराही मेरे हाथों में थमा दी, जो गिरते-गिरते बची और गाड़ी के साथ चलते-चलते वह चिल्लाया—साले, बंबई आऊंगा तो सुराही का एक रुपया वसूल कर लूंगा. छोड़ूंगा नहीं!...

...और सब के सब हाथ हिलाते प्लेटफार्म पर ही छूटने लगे.

मुझे रिजर्वेशन में दरवाजे के पास वाली अकेली सीट मिली थी. मेरा अटैची अभी तक उस पर पड़ा था. इस डर से मैंने उसे ऊपर की बर्थ पर नहीं टिकाया था कि कहीं कोई सीट ही न हथिया ले. मुझे अटैची नजर नहीं आयी. हां, एक सूरत जरूर उस सीट पर बैठी नजर आयी. मुझे कुछ हैरानी-सी हुई.

मेरी सवालिया नजरें उस चेहरे पर टिकी हुई थीं. चेहरा क्या था, दो मोटी-मोटी आंखें थीं, जिनके कोये एकदम सफेद थे और पुतलियां एकदम काली. वह पंद्रह-सोलह साल की उम्र का एक लड़का था. तांबई काला रंग. चौड़े कंधे. सीने की मांसपेशियों में तनाव... बाहें दमदार. हाथ और हाथों की अंगुलियों में कुछ करने की छटपटाहट. सिर के बाल अजीब गुच्छा-मुच्छा और उसकी एक लट उसकी नाक पर लहरा आयी थी... उसके पूरे शरीर पर एक सफेद फटी धोती के अलावा कुछ नहीं था.

करीब एक-डेढ़ मिनट तक मेरा यह मुआयना चलता रहा. इस बीच उसने दो-एक बार आंखें उठा कर मेरी ओर देखा भी, लेकिन जैसे उससे उसे कोई सरोकार न हो, उसने फिर आंखें घुमा लीं. मुझे लगा यह जिद्दी किस्म का लड़का है. इसलिए इससे आंखों से या संकेत से नहीं, जबान से बात करनी पड़ेगी.

—क्यों भैया! मैंने कहा... तुम्हारी सीट कहां है?

उसने अपनी चमकती हुई आंखों को एक बार मेरी ओर उठाया और फिर दूसरी ओर घुमाते हुए उत्तर दे दिया—बैठे तो हैं!

—मगर यह तो हमारी सीट है, भैया! मैंने कहा. हमारा रिजर्वेशन है!

—सो हम कुछ नहीं जानते... सीट उसकी जो उस पर बैठा हो. हम इस पर बैठे हैं...

अब मुझे थोड़ा सख्त होना पड़ा. मेरे स्वर में भी थोड़ी-सी तेजी आ गयी.—तुम्हारे पास टिकट भी है? मैंने उसे पूछा.

—हमारा टिकट इंदिरा मैया के पास है...

—तो यहां क्या कर रहे हो? इंदिरा मैया के पास जाओ न!

—वहीं तो जा रहे हैं...

आसपास के लोग इस बीच इस बातचीत में रस लेने लगे थे. उन्हें शायद बोरियत से निजात पाने का यह एक जरिया मिल गया था. लड़के के इस उत्तर पर कुछ लोग ठहाका लगा कर हंस पड़े.

अब मुझे ताव आने लगा. गुस्से और खीज से भर कर मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और उससे कुछ कहने ही वाला था कि उसने मेरा हाथ झटक दिया. साथ ही बोला— अरे, हम तो यों ही बैठे हैं. अभी उठ जायेंगे... इसके साथ ही वह ऊपर के होंठ को टेढ़ा करके हलके से मुसकरा दिया और सीट से उठ खड़ा हुआ. मैंने झट से सीट पर कब्जा कर लिया. सुराही को सीट के नीचे टिका दिया और अटैची को ऊपर की सामान रखने की जालीदार बर्थ पर. लड़का सीट के सामने ही लगे वाश बेसिन से टिक कर खड़ा हो गया. उसकी आंखें नीचे ताक रही थीं और ऊपर का होंठ रह-रह कर फड़क रहा था, जैसे वह कुछ कहना चाह रहा हो.

जो लोग निश्चित हो कर अपनी-अपनी सीटों पर जम गये थे, वे आपस में बतियाने लगे थे, लेकिन अनेक ऐसे भी थे जो कॉरीडोर में ही अपने साज-सामान पर जमे हुए थे. औरतें बच्चों को चबेना या रोटी का टुकड़ा देने लगी थीं, मर्द बीड़ी-सिगरेट पीने लगे थे या सुरती मलने-फांकने लगे थे. फिर शौचालय की ओर जाने-आने वालों का सिलसिला शुरू हो गया. लड़का चूंकि रास्ते में खड़ा था, इसलिए हर आने-जाने वाले का कोई-न-कोई अंग उससे टकरा जाता था और लोगों ने बड़बड़ाना शुरू कर दिया था. एक लाला-किस्म का आदमी कुछ ज्यादा ही मोटा था. वाश बेसिन पर आ कर वह अपने लोटे से हाथ-मुंह धोने लगा. जगह की कमी के कारण लाला को भी परेशानी हो रही थी, इसलिए उसने डांट कर कह दिया—अरे, तुम एक तरफ बैठ क्यों नहीं जाते! सब को दिक्कत हो रही है!

लड़के ने एक बार फिर चमकती हुई आंखों से उसे देखा और बोला—हमारी मर्जी! गाड़ी तुम्हारी ही नहीं है! हमारी भी है!

—अरे वाह! लाला बिगड़ गया. एक तो बिना टिकट सफर करते हो, ऊपर से अकड़ते भी हो!

—आप अपना काम करो! हमसे मतलब!

—ठीक है. अगला स्टेशन आने दो... पुलिस बुलवा कर तुम्हें ठीक करवाना पड़ेगा.

—पुलिस की ऐसी-तैसी! पुलिस क्या कर लेगी हमारा!... मालूम है, हम रेभोलूसनरी हैं... आर-इ-भी-ओ-एल-यू-एस-एन....

मैंने उसकी ओर देखा— उसकी आंखों में पहले से भी ज्यादा चमक थी, जबकि गाड़ी के बाहर रोशनी ढल चुकी थी. आसमान में गहरे काले बादल थे, जिससे यह अंदाज भी नहीं मिलता था कि सूरज आसमान में ही कहीं है या ढल चुका. मैं कुछ क्षण खिड़की से बाहर ही देखता रहा और भीतर के दृश्य को करीब-करीब भूल ही गया. लेकिन तभी किसी की आवाज ने मेरा ध्यान फिर गाड़ी के भीतर खींच लिया. किसी किसाननुमा आदमी का स्वर था, जो लड़के को छेड़ रहा था— भैया, तुम्हें अगर इंदिरा मैया के पास जाना है तो इस गाड़ी से काहे जा रहे हो?.... यह तो बंबई जायेगी!

—अरे हम चाहें तो उन्हें हमसे मिलने हमारे गांव तक में आना पड़ेगा... हम क्रांतिकारी हैं... रेभोलूसनरी... और इसके साथ ही उसने जो वाक्य बोला, उसने मुझे चौंका दिया : यही तो हमारा दुर्भाग्य है, उसने कहा, इस देश का गरीब भी गरीब का मजाक उड़ाता है!

★ ★

बाहर जोरों की बारिश होने लगी थी. मैंने खिड़की बंद कर ली. फिर भी पानी उसके कांच के नीचे से सीट पर गिरने लगा.

एक स्टेशन आ गया था. मन में बड़ी इच्छा थी कि एक कप चाय मिल जाये तो थोड़ी राहत मिले. लेकिन हमारा डब्बा प्लेट-फॉर्म से बहुत दूर रह गया था. और चाय वाले प्लेटफॉर्म पर ही आवाजें लगा रहे थे. मन मार कर बैठा रहा. आखिर गाड़ी चल दी.

सिगरेट पास थी, इसलिए कुछ गनीमत थी. मैंने एक सिगरेट सुलगा ली. धुआं लड़के की ओर उड़ा तो उसने मेरी ओर देखा. फिर धीरे से बोला—एक बीड़ी हमको भी पिलवाइए न!

मैंने एक बार व्यंग्य भरी नजर से उसकी ओर देखा और फिर सिगरेट और माचिस उसकी ओर बढ़ा दी. उसने सिगरेट सुलगा ली और मुट्ठी बांध कर जोर-जोर से सुट्टे लगाने लगा.

डब्बे में अंधेरा घिरने लगा था. दो-तीन बल्ब बड़ी मरियल-सी रोशनी से उसमें जिंदगी का एहसास भरने की कोशिश कर रहे थे. गंवई लोगों ने अपने-अपने खानों की पोटलियां खोल ली थीं और बड़े-बड़े कौर मुंह में भर कर उन्हें सूखा ही निगलने लगे थे. लोगों के चलते मुंह देख कर मुझे भी एहसास हुआ कि मैं भूखा हूं. रात भर हम लोग चर्चा-गोष्ठी में व्यस्त रहे थे. बहुत तेज-तर्रार बातें हुई थीं. हम देश के मौजूदा हालात पर विचार करते रहे थे. इन हालात में अपने कर्त्तव्यों की बातें करते रहे थे... बहुत देर तक खाना-पीना-बहसें चलती रही थीं. फिर सुबह उठ कर गाड़ी की चिंता सवार हो गयी थी. दिन में थोड़ा-सा नाश्ता ही किया था. स्टेशन पर मित्र लोग खाने को कहते रहे थे, पर गर्मी और हड़बड़ा-हट के बारे मन ही नहीं हुआ था कि कुछ खाया जाये!...

बहरहाल. लोग फिर बातों और खामोशी के सिलसिलों के बीच गुम हो गये थे. अब एक बार फिर मैं उस लड़के की ओर मुखा-तिब हो गया. सोचा, इससे बातें ही की जायें तो अगले स्टेशन तक का रास्ता कट जायेगा. इसलिए मैंने उससे कहा—कौन गांव के हो, भैया?

—चक चमरिया के... सी-एच-के सी-एच-एम-आर-ई ए... और उसने सिगरेट का आखिरी कश ले कर टोटे को वाश बेसिन में ही फेंक दिया.

—वह कहां है?

—बिहार में... इन बिहार...

अब मैंने उससे कहा कि वह मेरे साथ ही मेरी सीट पर बैठ जाये. वह चुपके से बैठ गया.

—कुछ पढ़े भी हो? अंग्रेजी तो खासी बोलते हो! नाम क्या है?

—कलुआ... कालू सिंह है हमारा नाम. और उसने गरदन मेरी ओर घुमा ली... के-ए-एल-यू-एस-आइ-एन-जी... आठ किलास तक पढ़े हैं. गांव के इस्कूल में.

—आगे क्यों नहीं पढ़े?

—कैसे पढ़ते! हम जात के चमार हैं. हमारा बाप चमारी नहीं करता था. किसानी करता था. पिछले बरस ठाकुरों ने हमारे घरों को आग लगा दी. बाप जल मरा. हम फीस नहीं भर सके तो इस्कूल से निकाल दिये गये...

—ठाकुरों ने घर क्यों जला दिये?

—वो तो रोज का ही काम है उनका... मजूर जरा-सी मांग करे तो उसे लाठी-गोली-आग ही तो मिलती है!...

—तो अब क्या करते हो?

—कुछ नहीं... क्रांति करते हैं... रेभोलूसन....

मुझे अजीब-सा लगा.

—ऐसे भटक-भटक कर कहीं क्रांति होती है क्या?

—हम अकेले नहीं हैं... लाखों हैं... करोड़ों हैं... सब सब जगह क्रांति करेंगे... जब तक यह राछस-राज खत्म नहीं होता, तब तक कुछ नहीं होगा...

और सहसा जैसे किसी ने उसकी चाबी ही भर दी हो... अब वह बिल्कुल किसी भाषणकर्त्ता की तरह ऊंचे स्वर में बोलने लगा. लोगों की आंखें उसकी ओर खिंच गयीं— बैठे हुए उसकी ओर देखने लगे, लेटे हुए उठ कर बैठ गये. खड़े हुए उसकी ओर घूम गये... और कलुआ वाश बेसिन के पास ही खड़े हो कर बड़े नपे-तुले, सधे-संवरे, फिर भी गंवई ढंग से देश में फैले भ्रष्टाचार की बातें कह रहा था, पूंजीपतियों की खूंखार प्रवृत्तियों की बातें कह रहा था, वर्ग और वर्ग-संघर्ष की बातें कह रहा था और शोषित वर्ग को एक-जुट हो जाने का आह्वान दे रहा था... —इस देश को सिर्फ एक ही झटके की जरूरत है. यह खूनी दीवार अब ढहने ही वाली है... क्रांति हो कर रहेगी... मजूर जाग उठा है... किसान जाग उठा है.... हम सब को दिल्ली जाना है... व्यवस्था की चूलें हिला देनी हैं.... क्रांति हो कर रहेगी... रेभोलूसन... टोटल रेभोलूसन .... सहसा

उसका चेहरा तमतमा आया था. . . गले की नसें फूल उठी थीं. . . . पेशानियों की नसें तेजी से बहती जल-धाराओं की तरह एक-दूसरे को काटने लगी थीं. . . .सीने की मांस-पेशियां फड़कने लगी थीं. . . टोटल रेभोलूसन. . . .संपूर्ण क्रांति . . .टी-ओ-ट-एल-आर-इ-भी-ओ-एल-यु-एस-एन. . .

पूरे डब्बे में बेचैन-सी खामोशी व्याप गयी थी. सभी इस कदर मंत्रमुग्ध-से हो गये थे कि पता नहीं चला कि कब अगला स्टेशन आ गया और गाड़ी रुक भी गयी. रात के खाने की थालियां लिये एक बेटर डब्बे में चढ़ आया था और सभी का मंत्र-प्रभाव तभी टूटा जब उसने कलुआ को कोहनी से ठेलते हुए कहा— चल बे क्रांति की औलाद! रास्ते में क्या खड़ा है!

खाने की थालियां आते ही डब्बे में एक हलचल-सी मच गयी. कलुआ और उसकी बातें उस हलचल में गुम हो गयीं. उसने मेरे हाथ से सिगरेट की डिबिया ले कर एक सिगरेट सुलगायी और जोर-जोर से सुट्टे लगा कर धुआं बिखरने लगा. लेकिन चेहरा उसका अब भी तमतमा रहा था— आंखों की गहरी काली पुतलियां अब भी सफेदी से घिरी चमक रही थीं.

—भूख ने ही तो इस देश को इतना ओछा बना डाला है और हमारे सत्ताधारियों ने हमें भूखा बना डाला है. . . . वह बड़बड़ाया.

भूख मुझे भी लगी हुई थी. खाना लाने वाले लड़के से मैंने खाने की एक थाली मांगी तो उसने कह दिया— खाना केवल ऑर्डर देने वालों को मिलेगा. ऑर्डर शायद वह तभी ले गया था, जब कालूसिंह ने भाषण देना शुरू किया था और मैं उसे सुनने में मशगूल था.

बारिश अब भी बहुत तेज थी. इसलिए नीचे उतरना संभव नहीं था— प्लेटफॉर्म भी तो काफी दूर था!

खाने वाला लड़का खाने की थालियां बांट रहा था. कलुआ ने एक बार उसे रोक लिया और बोला— भूख हमें भी लगी है! एक थाली हमें भी दे दो!

बेटर ने उसे झटक दिया— अबे ओ भिखारी की औलाद! चुपचाप बैठा रह! खबरदार जो किसी थाली को हाथ भी लगाया तो— हाथ तोड़ दूंगा!

बेटर देखने में काफी हट्टा-कट्टा था— बारिश में भीग जाने की वजह से कपड़े उसके शरीर से चिपक-से गये थे और शर्ट की ऊपर चढ़ी आस्तीनों के नीचे उसकी बाहों की मछलियां काफी मजबूत लग रही थीं. कलुआ खामोश हो कर बैठ गया.

खाने की ओर से अपना ध्यान हटाने के खयाल से मैंने फिर सिगरेट सुलगा ली. गाड़ी अभी भी खड़ी थी— स्टेशन कोई जंक्शन था, इसलिए. बारिश की बौछारें अभी भी बड़ी तेजी से पड़ रही थीं.

थोड़ी देर बाद बेटर खाली थालियां समेटने लगा और दरवाजे के पास ढेर लगाने लगा. मैं देख रहा था, कलुआ की नजरें उन खाली थालियों पर लगी थीं— उनमें से कुछेक में कुछ-न-कुछ जूठन शेष थी. दो-एक रोटियां थीं— कुछ दाल थी, कुछ रायता था.

इस बार बेटर दूसरी ओर की थालियां लेने गया तो कलुआ उठ कर दरवाजे के पास चला गया. बेटर लौट कर आया तो उसे वहां खड़े देख वह गुर्राया— खबरदार, जो किसी चीज को हाथ लगाया तो! . . .और वह थालियों को ढेर करके फिर चला गया.

और अब कलुआ एकदम झुका और उसने नीचे की थाली में बची दो रोटियां और रायता उठा लिया. रायते की कटोरी उसने मुंह से लगा ली— लेकिन उसके कटोरी उठाने से ऊपर की थालियां नीचे फिसल गयी थीं. खनखनाहट की एक आवाज हुई— थालियां पास पड़े कांच के गिलासों से टकरायीं— गिलासों के गिरने से झनझनाहट हुई. . .और बस, एक कहर ही बरपा हो गया— बेटर चिल्लाता हुआ और मां-बहन की गालियां बकता

सुदीप (जन्म : अप्रैल, १९४२) की कहानियां ऐसे संदर्भों से आती हैं कि वे मात्र सामाजिक न हो कर इस समाज में जीने वाले मनुष्य की आत्मिक संकुलता की कहानियां हो जाती हैं. पात्र पिघल कर अदृश्य हो जाते हैं और सामने रह जाता है समय. . . और समय के बीच जीते हुए मनुष्य के प्रश्न. . .और प्रश्नों का उत्तर मांगती हुई आवाजें. . .

हुआ, बिजली की-सी फुर्ती से वहां आ पहुंचा और उसने कलुआ को उसके बालों से पकड़ कर पीछे धकेल दिया— वह गिलासों के ऊपर गिरा. उसका सिर दीवार से जा टकराया और फिर उस पर घूसों और जूतों और लातों की बौछार पड़ने लगी— बेटर उसे मारता जाता और गालियां बकता जाता—साले! हरामजादे! चोरी करता है! सूअर! गिलास तोड़ता है. . .हराम-ादे! . . . .

जूतों और लातों और घूसों की धड़ाक्-धड़ाक् की आवाजें. . . . कलुआ के शरीर के बार-बार कभी फर्श तो कभी दीवार तो कभी दरवाजे से टकराने की आवाजें. . .और बीच-बीच में उसके शब्द— यही तो दुर्भाग्य है . . .यही तो कमी है. . . मार ले साले. . . मार ले. . . लेकिन . . . एक दिन तुझे भी हमारे साथ चलना होगा. . . क्रांति हो कर रहेगी. . . संपूर्ण क्रांति. . . टोटल रेभोलूसन. . .

लातों और घूसों के बीच ही बेटर ने कलुआ को उसकी बाहों से पकड़ कर उठा लिया और यह कहते हुए कि 'साले अभी निकालता हूं तेरी क्रांति!' उसने उसे दरवाजे से नीचे रेल के पत्थरों पर धकेल दिया. . . धड़ाक की एक आवाज हुई. . .लगा जैसे कुछ हड्डियां चटखी हों. . .और फिर एक बदहवास-सा सन्नाटा छा गया. . . जैसे पूरे डब्बे को लकवा मार गया हो. . .

बेटर और उसके एक साथी ने थालियों वगैरा को चलती गाड़ी में से ही उतारा. . .और कुछ ही पल बाद गाड़ी प्लेटफॉर्म के प्रकाश को पार करती हुई रात के अंधकार में आगे बढ़ रही थी.

पूरे डब्बे में सन्नाटा था. कोई कुछ नहीं बोल रहा था. . . .शायद हर यात्री इसी सोच में डूबा था कि कलुआ का क्या बना होगा. लेकिन यह घटनाक्रम इतनी तेजी से घटित हुआ था कि न तो कोई उसके बारे में कुछ सोच पाया था, न कह पाया था. इसीलिए वह सन्नाटा मौत के बाद के-से सन्नाटे जैसा भयावह लग रहा था. फिर धीरे-धीरे पूरा डब्बा नींद की आगोश में आ गया था.

मैं बहुत देर तक बाहर फैले अंधकार और उस अंधकार में चमकती बारिश की धाराओं को देखता रहा. फिर जाने कब मेरी भी आंख लग गयी.

फिर जब लगातार बैठे रहने से मेरी हड्डियां दुखने लगीं तो मेरी आंख खुल गयी. मुझे ताज्जुब हुआ कि बाहर रोशनी हो रही थी. कोई स्टेशन आ चुका था. सबेरा हो चुका था. बारिश गायब थी. चाय वाले आवाज दे रहे थे. मैं नीचे उतर आया.

मैंने चाय वाले से चाय मांगी. तभी मेरे पीछे से एक आवाज आयी — एक चाय हमारे लिए भी, भाई साहब. . . .

मैंने घूम कर देखा — कलुआ मेरे पीछे खड़ा था और अब उसकी आंखें भी मुसकरा रही थीं. . . ◻◻◻

एन ४/१३, सुंदर नगर,
एस. वी. रोड, मालाड (वेस्ट), बंबई – ४०००६४.

एमरजेंसी

• रामसरूप अणखी

शाम के पांच बजने को हैं. नेहरू स्वास्थ्य केंद्र के बड़े गेट के सामने आ कर टैक्सी रुकी है. टैक्सी से उतर कर सागर ने संतरी से एमरजेंसी वार्ड का रास्ता पूछा है.

—सामने ही लाल अक्षरों में एमरजेंसी लिखा है, भाई साहब! वहां से दायीं ओर के रास्ते पर मुड़ जाइए, एमरजेंसी वार्ड के दरवाजे पर पहुंच जायेंगे. . . संतरी ने समझा दिया है.

टैक्सी में वापस लौट कर उसे पल भर की राहत मिली है. मधु को अपनी बगल से लगा कर उसने उसे सांत्वना दी है—बस, पहुंच गये अब तो. यहां तो जल्दी ही तुम्हें ठीक कर देंगे. अब फिक्र मत करो. जितना दुख भोगना था, भोग लिया.

मधु के सिर में लगातार दर्द हो रहा है—मारक किस्म का भयंकर दर्द. कमर और पिंडलियों में भी दौरे की तरह दर्द उठता है. इस दर्द के बेहद बढ़ जाने से उसका शरीर पसीने से भीग जाता है. ठंडा पसीना उसे नहला देता है और पूरा शरीर ठंडा यख हो जाता है. कुछ देर ही आराम रहता है. और एक बार फिर वही हालत हो जाती है. पिछले एक हफ्ते से मधु के साथ यही हो रहा है—लगातार.

वह दूर गांव का रहने वाला है. सरकारी मुलाजिम है. तनखाह बहुत थोड़ी है. आमदनी का और कोई जरिया भी नहीं है. दो बच्चे हैं. गुजर बड़ी मुश्किल से होती है.

दो-तीन दिन मधु की ऐसी ही हालत रही तो सागर उसे पास के शहर के सरकारी अस्पताल ले गया था. उन्होंने चार दिनों तक उसे रखा था और अपनी समझ के अनुसार उसका इलाज किया था. लेकिन मधु की हालत और भी बिगड़ती गयी थी. आखिर में उन्होंने सलाह दी थी—इन्हें अभी तुरंत नेहरू स्वास्थ्य केंद्र ले जाइए. बीमारी खतरनाक लगती है. टैक्सी में डाल कर ही ले जाइए. बस!

सागर के गांव के पास वाले शहर से सौ मील दूर स्थित बड़े शहर में बना हुआ है यह नेहरू स्वास्थ्य केंद्र. कई करोड़ रुपये इसे बनाने में खर्च हुए हैं. प्रांत का सबसे बड़ा अस्पताल. देश के चंद, गिने-चुने, रिसर्च इंस्टीट्यूटों में से एक. अन्य प्रांतों के बिगड़े हुए केस भी यहीं आते हैं.

टैक्सी एमरजेंसी वार्ड के दरवाजे पर आ खड़ी हुई है. टांगों और कूल्हों के नीचे सहारा दे कर सागर ने मधु को टैक्सी में से उतारा है, और पहले से ही तैयार खड़ी ट्रॉली पर उसे लिटा दिया है. ट्रॉली वाला कर्मचारी उसे भीतर ले जा रहा था.

—क्या बीमारी है जी? ट्रॉली मैन ने सागर से पूछा है.

—बस जी, दर्द होता है, यही समझ लीजिए. सागर ने इस तरह जवाब दिया है, जैसे यह कोई खास बीमारी न हो.

. . . लेकिन अब तो यही बीमारी खास बनी हुई है.

—पहले दिखाया नहीं किसीको? ट्रॉली मैन ने कुछ इस तरह सवाल किया है, जैसे कह रहा हो कि इतनी-सी शिकायत पर ही ले आये एमरजेंसी वार्ड में!

—बहुत दिखाया है, दोस्त. आखिर में आये हैं. . .सागर ने कहा है.

ट्रॉली मैन दबे होठों से मुसकराया है. वेटिंग हॉल में ट्रॉली को उसने रोक दिया है. एक बेड की ओर इशारा करके सागर से कहा है—इस पर लिटा दो. डॉक्टर सा'ब आते हैं.

वेटिंग हॉल के बेड नंबर दो पर पड़ी हुई मधु सहज हो आयी लगती है. कोई शिकायत नहीं. टांगों और कमर में कोई दर्द नहीं. न ठंडा पसीना और न ही शरीर में ठंडक. शायद सिर दर्द भी न रहा हो. हो भी रहा होगा तो सख्त नहीं.

ड्यूटी वाला डॉक्टर आया है.

—बीबी जी, तबियत कैसी है?

—दर्द उठते हैं, भाई साहब. . .बहुत धीमे स्वर में मधु ने उत्तर दिया है. भाई साहब कह कर अपनत्व दिखाने की कोशिश भी करती है.

—जबान दिखाइए! डॉक्टर का स्वर अचानक कठोर हो गया है.

जीभ को बाहर निकाल मधु उत्सुक निगाहों से डॉक्टर के चेहरे की ओर देखने लगी है.

—बैठो. बैठ जाओ! डॉक्टर ने सिर्फ जबान ही हिलायी है. शरीर का सारा जोर लगाने पर भी वह बैठी नहीं हो सकी. सागर ने उसे सहारा दे कर बिठाना चाहा है. डॉक्टर ने उसे रोक दिया है.

—डॉक्टर साहब!. . सागर ने हाथ जोड़ दिये हैं.

—एमरजेंसी वाला केस तो यह है नहीं! . . .मधु से जरा-सा दूर हट कर डाक्टर ने सागर से कहा है.

—यह तो बहुत परेशान है, डाक्टर साहब! दूसरे अस्पताल वालों ने हमें खुद ही भेजा है.

—डिस्चार्ज-स्लिप दिखाओ.

सागर ने दूसरे अस्पताल वाली स्लिप दिखायी है.

—ठीक है. . .कहते हुए डॉक्टर ने स्लिप को वापस सागर के हाथों में दे दिया है और कहा है—ओ. पी. डी. में दिखाओ, परसों. कल रविवार है.

—आज कहां रहें, डॉक्टर साहब? हमारा तो इस बड़े शहर में कोई भी नहीं है. यही हालत रही तो परसों तक यह बचेगी कैसे?

—बस, कह दिया न परसों ओ. पी. डी. . .

—डॉक्टर साहब, मैं बहुत दुखी हूं. गरीब मुलाजिम हूं. दो बच्चे हैं. . .अगर इसे कुछ हो गया. . .

—देखो मिस्टर, इस दुनिया में सभी दुखी हैं, कोई कम, कोई ज्यादा. तुम थोड़े-से ज्यादा होगे. परसों आना.

सागर फिर गिड़गिड़ाया है. डॉक्टर के घुटनों की ओर निगाह गयी है.

डॉक्टर जा चुका है. सागर की निगाहें स्वास्थ्य केंद्र के चिप्स लगे, चमचमाते फर्श पर गड़ी रह गयी हैं.

मधु की हृदय-विदारक हूक सुनायी दी है.

—क्यों मधु?

—सिर थाम लो मेरा. . .

सागर उसका सिर थाम लेता है. धीरे-धीरे उसे दबाने लगता है. तभी मधु कराह कर अपना कूल्हा पकड़ लेती है. सागर उसकी कमर दबाने लगता है. एक हाथ से उसके सिर को भी थामे रहता है. हूक-सी ले कर मधु अपनी पिंडलियों को पकड़ लेती है. सागर के हाथ उसकी पिंडलियों की ओर बढ़ जाते हैं. . .

—हाय! पिंडलियों में से प्राण गये. . .

वह एक-एक हाथ से एक-एक पिंडली को बहुत जोर-जोर से दबा रहा है. उसकी अपनी बांहें दुखने लगी हैं. . .

—हाय कमर!. . .हाय सिर. . .हाय पिंडलियां. . .

और फिर मधु की आंखें स्थिर हो जाती हैं. अब उसे कोई होश नहीं है. उसके शरीर के किसी भी हिस्से को दबाना-थामना फिजूल है. सारा शरीर पानी-पानी हो गया है. और फिर ठंडा बर्फ. . . लेकिन मधु को होश नहीं आता. . .

वह डॉक्टर की ओर दौड़ता है.

—डॉक्टर साहब. . .

—अरे भाई! समझे नहीं क्या? कितनी बार कह दिया ओ. पी. डी. पर आना. . . जाओ, और भी बहुत-से मरीज हैं. . .

—जी. . .वह तो. . .वह तो बेहोश. . .

—श्रीमान जी, आइए. . .

वह भाग कर मधु के बेड की ओर आया है. . .

—मधु!

मधु होश में है.

—क्या कहते हैं? मधु ने बहुत धीमे स्वर में पूछा है.

—दाखिल नहीं कर रहे हैं.

—फिर?. . .

शाम के छह बज चुके हैं. सर्दी का मौसम है. अंधेरा पसरने लगा है.

मधु को बेड पर ही छोड़ कर सागर एक क्षण के लिए वेटिंग हॉल के दरवाजे से बाहर झांकता है. ट्रॉली नया मरीज ले कर आयी है. उसने गर्म कोट-पैंट पहन रखे हैं. टाई की गांठ ढीली है और कमीज का ऊपरी बटन खुला हुआ है. नौजवान है. सिर पर लंबे बाल, धुर जबड़े तक रखी हुई कलमें और छोटी-छोटी मूंछें. उसके एक पैर में चोट लगी है. उसकी ट्रॉली को वेटिंग हॉल में नहीं लाया गया. सीधे वार्ड के बेड पर ले जा कर उसे लिटा दिया गया है. ट्रॉली से वह अपने आप ही उतरा था और बिना किसी तकलीफ के वह बेड पर लेट गया था. साथ आये दो लड़कों ने ड्यूटी पर उपस्थित डॉक्टर के कान में कुछ कहा है. दो नर्सें उसके बेड के पास जा पहुंची हैं. उनकी आंखों में नौजवान के लिए हैरानी का भाव है. वह मुसकरा रहा है. एक नर्स ने अपने होठों को सिकोड़ कर सिर को झटका दिया है. सोच रही होगी. . .एमरजेंसी में आने का मतलब?

चार अन्य डॉक्टर बेड के पास आये हैं और उस मरीज की जांच-पड़ताल करने लगे हैं.

ड्यूटी पर हाजिर डॉक्टर ने सागर को खड़े देख लिया है. सिस्टर को आंख से इशारा किया है. सिस्टर सागर के पास आयी है. उसने उससे पूछा है—आपका कोई पेशेंट है यहां?

—नहीं. वह तो. . .

—प्लीज, बाहर जाइए.

—वह तो वेटिंग. . .

—मैंने कहा न, प्लीज. . .

सागर वार्ड से बाहर आ गया है. उसे कोई नहीं पूछता. वह हताश हो उठा है. तेज कदमों से चल कर वह वेटिंग हॉल में आया है. मधु सामान्य लग रही है. उसने पूछा है—क्या हुआ?

—कुछ नहीं. कुछ भी नहीं.

—अब?

—चलें अब. कहीं कोई सराय तो होगी ही. रात वहीं काटेंगे.

—कल?

—कल तो रविवार है. परसों देखेंगे.

—रविवार?. . .ये दो रातें कैसे निकलेंगी? उसकी हालत फिर बिगड़ने लगी है.

ट्रॉली पर डलवा कर वह मधु को बाहर ले जा रहा है.

जाते-जाते वार्ड के मेन गेट के पास ड्यूटी पर बैठे क्लार्क से सागर ने पूछा है—क्यों जी, कल कुछ नहीं हो सकता?

—कुछ होना होता, भाई साहब, तो आज हो जाता!

—तो अब कोई रास्ता है?

—एक ही रास्ता है, बस. . .सिफारिश.

—सिफारिश?

—हां, भाई. जमाना ही सिफारिश का है. वह अभी आपके सामने एक मरीज दाखिल हुआ है. पैर में साधारण-सी चोट आयी है. उसे तो कोई भी डॉक्टर ले सकता था. एमरजेंसी वाला केस तो है नहीं यह. . .है क्या?

—न. . .

—फिर? मालूम है बेटा किसका है?

—किसका है?

क्लर्क प्रांत के एक बड़े पुलिस-अधिकारी का नाम लेता है और कहता है—डंडा काम करता है, भाई साहब! सिफारिश का डंडा!

ट्रॉली मधु को लिये कॉरीडोर को आधा पार कर गयी है. सागर बहुत तेजी से ट्रॉली से जा मिलता है. एमरजेंसी के बड़े गेट के पार ट्रॉलीमैन ने मधु को उस जगह पर उतार दिया है, जहां टैक्सी उन्हें छोड़ कर गयी थी.

★ ★

एक मोटर-रिक्शा में बिठा कर सागर उसे एक सराय के दरवाजे पर ले आया है. उसे रिक्शा में ही छोड़ कर वह स्वयं सराय के भीतर गया है. पूछताछ की है. कोई कमरा खाली नहीं है.

वह वहां मौजूद एक आदमी से किसी दूसरी सराय का पता पूछता है.

—मोटर-गैराजों के पीछे की ओर भी एक सराय है, उस आदमी ने बताया है.

वह मोटर-रिक्शा को उस छोटी सराय के दरवाजे पर ले आया है. वहां भी कोई कमरा खाली नहीं है.

कहां ले जाये अब वह मधु को?

शहर में तो ठहरने का कोई भी स्थान नहीं है. न ही कोई जान-पहचान है.

सर्दी बहुत उतर आयी है. बर्फ-भीगी तेज हवा छुरी की तरह शरीर को छीलती हुई निकल जाती है.

—यहां किसी मोटर-गैराज में ही बिस्तर लगा लो, दोस्त. रात निकल जायेगी. सुबह कोई प्रबंध कर लेना! रिक्शा-ड्राइवर ने सलाह दी है.

सागर ने देखा है कि मोटर-गैराजों के टूटे-तड़के फर्शों पर अन्य लोगों ने भी बिस्तर लगा रखे हैं. एक कोना देख कर उसने भी अपना बिस्तर खोल दिया है. गदेले पर घिसी हुई चादर बिछायी है. खेस का तकिया बना कर रखा है. फिर सहारा दे कर मधु को मोटर-रिक्शा में से उतारा है. मधु खड़ी नहीं रह सकी है. वहीं पर लुढ़क गयी है. अपने कंधे पर उठा कर उसने उसे बिस्तर पर लिटा दिया है. फिर रिक्शा वाले से पूछा है—क्या दे दूं?

—जो मर्जी दे दीजिए.

—फिर भी?

—दे दीजिए. दस पैसे कम भी दे देंगे तो क्या हो जायेगा!

—नहीं, बता दो, भाई!

फिर जितने पैसे उसने मांगे हैं, सागर को कुछ ज्यादा ही लगे हैं; लेकिन उसने बिना किसी आपत्ति के उतने ही दे दिये हैं.

उसने लिहाफ की तह खोल कर मधु के सारे शरीर को अच्छी तरह लपेट दिया है.

मधु सहज अवस्था में है.

वह उसे हौसला दे कर जल्दी से बस-स्टॉप के पास बने अस्थायी होटलों पर गया है. जो भी होटल सामने आया है, उसी में जल्दी से रोटी खायी है. खायी क्या, पशुओं की तरह अधचबायी ही निगल ली है. उसे पता है, मधु खाना नहीं खायेगी. दूध भी शायद ही पी सके. उसने एक गिलास चाय बनायी है, और डबलरोटी के दो स्लाइस ले कर हवा की-सी तेजी से मधु के पास आ गया है.

मधु को दौरा पड़ा हुआ है.

उसके तकिये के पास चाय के गिलास पर डबलरोटी के स्लाइस रख कर वह पानी लाने गया है. पानी उसे नहीं मिल रहा है. वह वापस आया है. मधु! मधु!! कह कर ऊंचे स्वर में पागलों की तरह उसे पुकारने लगा है. ठोड़ी पकड़ कर उसे झिंझोड़ता है. वह नहीं बोलती. फिर उसने उसकी नाक पकड़ कर दबा दी है. दूसरे हाथ से मुंह खोल दिया है. मधु बड़ी मुश्किल से मुंह से सांस लेती है. उसने

रामस्वरूप अणखी (जन्म : २८अगस्त,१९३२) की कहानियां अपनी सादगी और सपाटबयानी की तह में तीव्र व्यंग्य छिपाये रहती हैं. गांव और छोटे कस्बे का परिवेश और वहां के पात्र ही उनकी कहानियों की आधार-भूमि हैं. अब तक सौ से ऊपर कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं.

आंखें खोली हैं.

—मधु!

—हां!

—ठीक हो?

—जी.

सागर ने अपनी हथेली से मधु के माथे का पसीना पोंछा है.

—चाय का घूंट लोगी?

—ले कर देख लेती हूं.

—डबलरोटी का पीस भी ले लो. दो पीस लाया हूं. अन्न का आधार होगा तो नींद आ जायेगी. रात निकल जायेगी.

कंधे से पकड़ कर उसने मधु को बैठाया है. चाय का गिलास मुंह से लगा दिया है. छोटा-सा एक घूंट ले कर उसने बस कर दिया है और लिटा देने के लिए कहा है.

—कुछ तो लेती.

—क्या करूं, ली नहीं जाती.

—फिर?

—बस ठीक है. कोई जरूरत नहीं. . . .

★ ★

सारी रात मधु की हालत खराब रही है. सिर, कमर और टांगों में सख्त दर्द का दौरा. . .कंपकंपी, फिर ठंडा यख शरीर. कंपकंपी से ठंडक तक का सफर. . .

उसकी गरम पैंट पिछले सात दिनों से पाजामा बनी हुई है. टेरीकॉट की कमीज बहुत मैली हो चुकी है. कोट वह पहन कर नहीं आया था. कई साल पुराना आसमानी रंग का स्वेटर पहन रखा है, जो अब बेहद बदरंग हो चुका है. सारी रात वह मधु के शरीर को दबाता रहा है. बैठे-बैठे ही. एक क्षण के लिए भी आंखें नहीं मूंद सका.

फिर छह बजे के करीब मधु टिक गयी है.न वह हूं-हां कर रही है, न करवट बदलती है. शायद सो गयी है. सागर ने उसे बुलाना उचित नहीं समझा. सारी रात के दर्दों से टूट कर उसका शरीर निढाल हो गया है. इसीलिए नींद आ गयी होगी. अच्छा ही है—पल भर आराम कर ले.

पेशाब करने के लिए, वह गैराज से बाहर आया है. स्वास्थ्य केंद्र की ट्यूबें मद्धिम-मद्धिम जल रही हैं. गैराजों पर लगी डॉक्टरों की नेमप्लेटों की ओर उसकी निगाह गयी है. गैराजों की लाइन दूर तक चली गयी है. वह चार-पांच नाम ही पढ़ पाया है. वैसे उसे दूर तक लगी काली प्लेटें दिखायी जरूर दे रही हैं. कल वाले ड्यूटी पर हाजिर डॉक्टर की प्लेट कौन-सी होगी?

वह दबे पांव गैराज की छत के नीचे आया है. चुपचाप मधु के साथ लिहाफ में दुबक गया है. मधु हिली नहीं. सागर ने पल भर को आंख मूंदने की कोशिश की है. सो गया है.

स्वप्न में भी वह संघर्ष से गुजर रहा है...

सब किस्म के लोगों के लिए डाक्टरी सुविधाएं एक-सी क्यों नहीं हैं?...

मधु जिंदगी से लड़ रही है...

यह एमरजेंसी वाला केस तो नहीं है...

पुलिस-अधिकारी का बेटा... एमरजेंसी बेड...

ये डाक्टर हैं या बूचड़?...

एक डाक्टर उसके सामने आया है. पैंट की हिपपॉकिट में से चाकू निकाल कर उसने उस डाक्टर की पसलियों में उतार दिया है. फिर एक और डाक्टर... फिर एक और... सात डाक्टर जमीन पर औंधे-मुंह पड़े हैं. खून बह रहा है. जमीन लाल हो गयी है. एक-एक डाक्टर को उलट-उलट कर उसने देखा है. इनमें कल वाला डाक्टर तो है ही नहीं! काले बूट तो सबने पहन रखे हैं. उस जैसी पैंट भी अनेक की है. सफेद कोट तो सभी ने पहन रखे हैं. चश्मा भी तीन ने लगा रखा है. अब फर्श पर गिर कर तीनों चश्मे टूट गये हैं और दूर जा गिरे हैं. सांवला रंग दो डाक्टरों का है. हां... हां... लेकिन उसकी नाक पर बड़ा-सा मस्सा था... लेकिन मस्सा तो अब किसी की भी नाक पर नहीं है!...

★ ★

साथ के गैराजों में बिछे बिस्तर उठाये जा रहे हैं. कुछ दबा-दबा-सा शोर जाड़े की सुबह में घुलने लगा है. बरतनों के बजने की आवाज. सागर की आंख खुल गयी है. एकदम वह उठ बैठा है. उसने मधु को जगाने की सोची है... लेकिन जगाया नहीं है.

क्यों न जल्दी से चाय का गिलास ले आऊं और खुद भी पी आऊं!- उसने सोचा है.

वापस आ कर उसने मधु को बहुत धीमी आवाज में पुकारा है. वह नहीं बोली. सागर ने उसका कंधा झिंझोड़ दिया है. वह फिर भी नहीं हिली. न ही बोली है. फिर उसने ऊंचे स्वर में पुकारा है-- मधु!...

वह नहीं बोली.

उसमें कोई सांस नहीं है...

बहुत ऊंचे स्वर में उसने मधु का नाम ले कर पुकारा है और चीख उठा है.

आठ बजने को हैं...

डाक्टरों की इक्का-दुक्का कारें आना शुरू हो गयी हैं. हर डाक्टर की कार उसके गैराज में. अपना गैराज, जिस पर उसके नाम की तख्ती लगी हुई है.

बेसुध-सा सागर घुटनों में सिर दिये चुप बैठा है. बौराया-सा, पथराया-सा.

साढ़े आठ.

एक कार उसके बेहद करीब से गुजरी है. उससे थोड़ी दूर जा कर रुकी है. एक डाक्टर बाहर आया है. सांवला रंग. नाक पर मस्सा.

सागर ने उसे पहचान लिया है.

अब उसकी नजर पास ही पड़े एक अनघड़ पत्थर पर जा टिकी है. बिजली की फुर्ती से पत्थर को उठा कर उसने डाक्टर की ओर दे मारा है. डाक्टर के माथे से खून की धार फूट निकली है.

—यह एमरजेंसी केस नहीं था, डाक्टर?...

सागर की चीख जैसी आवाज वातावरण में गूंज गयी है.

□□□

गांव व डाकघर धौला, (बरास्ता हंडियाया),
जिला संगरूर (पंजाब)

बिल्कुल अजीब बात है कि आपको कोई आदमी मिला हो और आप उसके बारे में सोचने लग गये हों. और जहां तक मेरा ताल्लुक है मैं उस आदमी के बारे में सोचता ही नहीं, उसे खोजने की जल्दबाजी में भी लगा हूं. यह ऐसा मामला है यानी उस आदमी को खोजने का, जो मैं जानता हूं कि वह मुझे कभी नहीं मिलेगा—पर जिस ढंग से मैं बेचैन हूं अगर उस ढंग से कोई दूसरा होता तो मुझे जरूर लगता कि बेचैन आदमी या तो बीमार है या फिर उसके पास करने के लिए कोई काम नहीं.

इसीलिए यह अजीब बात लगती है. मैं दूसरों की जगह खड़े हो कर जब अपने बारे में सोचता हूं तब—तब लगता है तरतीबवार बातें बताना निहायत जरूरी है.. लेकिन इसमें एक तकलीफ है. और वह तकलीफ है अपनी सफाई में कुछ कहने की मजबूरी.

★ ★

शुरू करूं कि वह मुझे कहां मिला था.. मैं एक हड़ताली जलूस को देखने के लिए खड़ा था. उनके नारों की गूंज ने कई दिनों की पस्ती को हिला दिया था. लोगों के तमतमाये चेहरों में एक आशावाद झलक रहा था. सबसे पहले तालियां पीटते नौजवानों की टोली थी और उसके बाद थे हड़ताली लोग.

उन्हें देखने के लिए आसपास के बहुत से लोग ठिठक गये थे. बच्चे दौड़-दौड़ कर उनके करीब जा रहे थे. सड़क अच्छे खासे तमाशबीनों से पट गयी थी. तभी जलूस रुका. हड़तालियों के नारे एकदम थम गये थे. और अगली पांत के एक आदमी ने तमाशबीनों की भीड़ से बोलना शुरू किया. लगा, जैसे वह लोगों से बात कर रहा हो. बिल्कुल इसी लहजे में, जैसे हम अपने दोस्तों से बहुत अंतरंग बातें करते हैं.

वह बोला—आप लोगों की जुबान पर मैं इस वक्त सिर्फ यही सवाल ठिठका देख रहा हूं कि हम लोग कौन हैं. तो साथियो, हम ठीक आपकी तरह के लोग हैं. फरक इतना है कि हम अपनी जरूरतों के लिए लड़ रहे हैं.

मुझे खयाल आया, अगर कोई पेशेवर नेता होता तो वह कहता, यानी बड़ी-बड़ी दार्शनिक बातें फेंकता, बताता, 'देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना हमारा फर्ज है' या इसी तरह 'हमारी सोयी हुई कौम को जागना चाहिए.'

लेकिन वह आदमी बोल रहा था—आपकी और हमारी जरूरतें कोई अलग चीज नहीं हैं...

जलूस फिर चल पड़ा था. बच्चे चहक-चहक कर जलूस के साथ-साथ बढ़ रहे थे. ठिठके हुए लोगों के पांव पहियों की तरह चल पड़े थे. सब अपनी दिशाओं की ओर चले गये. अपने को अकेला पा कर मैं भी अपने काम की ओर जाने ही वाला था कि तभी... तभी मुझे वह आदमी मिला था. असल में वह सड़क के बीचों बीच दौड़ रहा था. हांफते हुए वह मुझ तक आया—आपने अभी जाते हुए जलूस को देखा है?

मैंने हां में सिर हिलाया.

वह मुड़ कर दौड़ने ही वाला था, तभी मुझे याद आया कि मैंने यह तो पूछा ही नहीं कि आखिर यह जलूस किन लोगों का था.

—सुनिए, मेरे कहते ही वह रुका और सुस्ताने की मुद्रा में खड़ा हो गया—ये लोग थे कौन?

—क्यों? फिर तुरंत बोला—हड़ताली. उसने अपने हाथ झटके जैसे पूरा जवाब दे दिया हो.

—नहीं. मेरा मतलब है कहां काम करने वाले हैं ये?

—अच्छा. उसने इतमीनान से कहा—तो आप इन लोगों के बारे में ब्योरेवार जानना चाहते हैं.

मैं मुसकराया या मैंने मुंह खोल दिया होगा, पर जो कुछ भी दर्शाया होगा वह यही कि मैं पूरी बातें जानना चाहता हूं. इससे वह खुश हो गया और उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचा—तो चलिए.

एक तरह से वह मुझे खींच कर ले चला. सड़क के नुक्कड़ पर, करीब ही एक चाय की दुकान थी. वहां काफी सारे लोग बैठे थे. ज्यादातर लोग आराम की मुद्रा में धूप सेंक रहे थे. कुछ लोग थे जो जल्दी-जल्दी चाय सुड़क कर पीते हैं और जल्दी ही चले जाते हैं.

हम दोनों बैठ गये तो उसने चाय के लिए आवाज लगाते ही मेरे हाथ में एक पर्चा पकड़ा दिया—हत्यारे पूंजीवाद से अपनी रक्षा के लिए एक हो जाओ. मैंने पर्चा पढ़ना शुरू किया. मैं ऐसे कई पर्चे पढ़ चुका था. अकसर आम हड़ताल के दिनों इस किस्म के पर्चे हाथों में आ जाते थे. और अकसर एक गुस्सा और प्रशासन के प्रति नफरत का भाव जागता था लेकिन जैसे ही घर की समस्याओं से निपटने में लग जाता—वह सब चीजें दिमाग से निकल जातीं.

—जानते हो यह पूंजीवाद किस आदमी का नाम है?

मैं हंसने-हंसने को हुआ—आदमी नहीं—यह एक वर्ग का, एक विचार धारणा का नाम है.

—तो तुम्हें भी किताबी ज्ञान है, उसने हिकारत से मेरी तरफ देखा—अगर मजदूरों के बीच जाओ और ऐसे बोलो तो क्या वे सम-

उसकी पहचान

• गंगाप्रसाद विमल

कैसे ? उसने मुझे डांटा तो मैं चुप हो गया.

—यह एक आदमी का ही नाम है. उस आदमी का, जिसने चालाकी से सबकी मेहनत का हिस्सा खाने का गुर व्यापारियों को बता दिया है.

वह काफी बातूनी आदमी है. मैंने अंदाजा लगाया और जिस ढंग से वह बोल रहा है उस ढंग से वक्त का काफी हिस्सा यहां चौपट हो जायेगा. इसलिए तुरंत मेरे मन में यह बात आयी कि किसी तरह इससे पिंड छुड़ाना चाहिए.

—तो भाई ये हड़ताली लोग वे हैं, जिन्हें पता चल गया है कि उनकी मेहनत का हिस्सा गैर जिम्मेदार लोगों द्वारा हड़प किया जा रहा है. उसने मेरे चेहरे की तरफ गौर से देखा—शायद तुम्हारी दिलचस्पी खत्म हो गयी है. और वह फिर मेरे चेहरे की तरफ गौर से देखने लगा.

—नहीं तो. . .पर मैं यह चाहता था कि ये लोग हैं कौन और इनका उद्देश्य क्या है?

वह हंसा—तुम्हारा यह पूछना भी काफी किताबी है दोस्त. खैर. . .ये लोग हैं छोटी-छोटी फैक्टरियों के मजदूर. इन्होंने पिछले पंद्रह दिनों से अपनी पगार बढ़ाने के सिलसिले में काम रोका हुआ है. लेकिन हमारी सरकार को इनकी भूख से कोई ताल्लुक नहीं—फैक्ट्री मालिक के दरवाजे पर पुलिस है, कारखानों में पुलिस. बस, कामगारों को डरा कर अपने वश में करने के तरीके आजमा रहे हैं.

—हां—याद आया. मैंने अखबारों में पढ़ा था.

—पढ़ा मैंने भी था. और मैं सोचता था ये लोग काम बंद करके मुल्क की तरक्की के रास्ते में रोड़ा अटका रहे हैं. . .

—बिलकुल ऐसा ही तो मैं सोचता हूं. देखिए न, आखिर कितना नुकसान होता है. मसलन आपको एक दिन में दूध के बीस डिब्बे तैयार करने हों और आप पंद्रह दिन तक कुछ न करें तो क्या छोटे-छोटे बच्चे तड़प कर मर न जायेंगे? मैं बीच में बोल पड़ा.

हम लोग चाय की दुकान में थे. ठीक बातचीत के बीच चाय आ गयी.

—जलूस बड़ी दूर पहुंच चुका होगा?

—हां तो, मैंने उसका जवाब दिया.

—अपना मुल्क बहुत बड़ा मुल्क है. उसने मेज पर पड़ा बही पर्चा उठाया—जाना तो मुझे जल्दी था पर अब कोई जल्दी नहीं. देखो भाई, तुम्हारा सोच-विचार गलत लाइन पर है. पंद्रह दिन तक अगर डिब्बे न भी बनें तो ज्यादा फर्क नहीं पड़ता. डिब्बे का दूध पीने वाले बच्चे हैं ही कितने. अपने मुल्क में करोड़ों बच्चे भूखे ही सो जाते हैं. कभी तुमने उनके बारे में भी सोचा है?

वह खड़ा हो गया—देखो भाई, इस बात को सही तरह से देखो. 'उस आदमी, जिसका नाम 'पूंजीपति' है उसके फायदे की नजर की हमारी ट्रेनिंग है. अखबार, सरकार हमें जानबूझ कर ट्रेनिंग देते हैं. तो पहले इससे मुक्त हो जाओ.

—मेरा मतलब ये है कि. . .

—तुम्हारा मतलब जो भी हो. . .एक आदमी के मतलब से जनता का मतलब नहीं सध सकता. अगर ऐसा होता तो इस धर्मप्राण मुल्क में कितने चमत्कारी लोग हैं. हैं न बाबा—क्यों नहीं वे ही सुधार करते. आखिर कुछ ही लोग क्यों खायें—क्यों पहनें?

मैं उसकी बातों से ऊब गया था.

फिर न जाने क्या हुआ, वह रुका नहीं. सड़क की ओर दौड़ पड़ा. फिर न जाने क्या सोच कर वह मेरे पास आया और कितनी ही देर मेरे कानों के पास कुछ बोलता रहा—देखना. . .पूरी बातें. . . देखना. . .

यही तो मामला था कि उसने मेरे कानों में जो बातें कही थीं वे उस वक्त अफवाह की तरह थीं लेकिन अब एक-एक कर सच हो रही हैं. और मैं परेशान हूं.

★ ★

मुझे लगता है, उसने मुझे एक कहानी सुनायी थी. या यह सिर्फ मेरा वहम हो. पर इतना जरूर है कि उसने जो बातें मेरे कान में फुसफुसायी थीं उनमें से एक बात का ताल्लुक किसी कहानी से था.

शायद उसने कहा था कि देखना राक्षसों की हत्या हो जायेगी. ठीक जब उसने 'राक्षस' शब्द कहा तब मुझे लगा, वह मुझे पूरे हिंदुस्तान के इतिहास से बांध गया है.

दो दिनों के बाद सुबह-सुबह अखबार के बायें कोने से ले कर दायें कोने तक सुर्खी वाली सभी खबरें हत्या और मारपीट से पटी थीं. तो उसने ठीक कहा था. यह सब शुरू हो गया. मैं उन खबरों के ब्योरों को गौर से पढ़ रहा था, तभी मुझे उस आदमी की याद आयी थी.

फिर हुआ यह कि मुझे खबरें पढ़ने का शौक जाग पड़ा. और अपने तमाम खाली वक्त में अखबार पढ़ने लगा. अपने और दूसरे मुल्कों के अखबार भी. नतीजा यह हुआ कि शहर की तमाम लाइब्रेरियों में मेरी शामें बीतने लगीं.

यहां तक तो ठीक था.

★ ★

गड़बड़ शुरू हुई थी उस बेचैनी से कि मुझे उस आदमी की तलाश करनी चाहिए. उससे मिल कर बताना चाहिए कि भाई तुम ठीक कहते थे. अगर मैं उससे न भी मिलूं—जैसा कि निश्चित ही है— तो फर्क क्या पड़ता है! पर मैं एक परेशानी में पड़ गया हूं. उस परेशानी का इलाज दिमागी डाक्टर के पास भी हो सकता है. लेकिन भरी उम्र में—जब आप अपना चेहरा शीशे में भी देखते हों और आप खाते-पीते, बोलते-हंसते और चालाकियां बरतते हों, तब दिमाग का इलाज करने वाले डाक्टर के पास जाने की जरूरत क्या है—तय है, मुझे उलझन से छुटकारा उस आदमी से मिलने से ही मिल सकता है.

जिद जैसी चीज नहीं है कि मैं उस आदमी से मिलूंगा ही. आखिर वह सिर्फ मुझे एक दिन मिला था. लेकिन खराबी यह है कि अब जो-जो मैं देखता हूं—मुझे महसूस होता है यह सब उसने मुझे बताया था.

★ ★

उदाहरण के लिए छुट्टी के दिन मैं अपने घर पर लेटा हूं. पड़ोस के घरों में शोर हो रहा है तो अचानक मेरी आंखों के आगे तसवीर बन जायेगी कि अभी पीले मकान की छत पर वह सुंदर औरत आयेगी और छींट-छींट कर गीले कपड़े फैलायेगी.

यहां तक भी ठीक है. मैं मान लूं कि मुझे होने वाली बातों का अंदाजा हो जाता है.

लेकिन वह औरत आयेगी. थोड़ी देर कपड़े फैलायेगी, फिर अपने घर चली जायेगी. फिर सजने-धजने के लिए अपने कपड़े उतारेगी. . . .

किसी अंदाजे की हद भी होती है. यानी मैं चाहूं तो उसके नंगे जिस्म का अंदाजा भी लगा सकता हूं. यह भी देख सकता हूं कि उसकी बायीं जांघ पर एक काला तिल है. लेकिन खुदा के लिए—मैं इस किस्म के घोंचू वक्त-बिताऊ विलास में नहीं पड़ना चाहता.

अब वह औरत सज-धज कर निकल रही होगी. सिर्फ यह देखने के लिए कि यह क्या सच होगा—जब मैं अपनी छत से गली की तरफ झांकने लगा तो मैंने उस औरत को गली से गुजरते देखा.

समस्या यह नहीं कि मैं सोचूं कि अब क्या होगा. तसवीर खुद-ब-खुद बनती है. वह औरत गली से निकल कर बड़े बाजार की ओर जाती है. बाजार का आधा चक्कर लगाती है. वह कुछ खरीदने के लिए वहां नहीं गयी. उसके घर में तीन बच्चे हैं. उसके पति के पास कोई काम नहीं है. उनके घर में रात के खाने के लिए भी कुछ नहीं है.

बस यही बात है. उनके घर में खाने के लिए कुछ नहीं है. वह खाने का जुगाड़ करती है.

वह जाती है. बाजार के बीचों-बीच एक बेहद कुरूप आदमी को देख कर वह हंसती है. और फिर वे लोग एक गली में चले जाते हैं.

बाजार में चौल-चप्पा किस्म का शोर है—कोई क्या बोल रहा है, किसी तीसरे को यह समझ में नहीं आता. किसी भी तीसरे आदमी को इससे मतलब नहीं है.

उस गली में सन्नाटा है. ऊपर की मंजिल के अकेले कमरे में वे लोग पहुंचते हैं. और वह औरत निर्वस्त्र होने लगती है.

—आज तुम्हें बीस रुपये देने पड़ेंगे? औरत कहती है.

—क्यों? आदमी गुर्राता है.

—मुझे दवाइयां भी लेनी हैं. और औरत रोने लगती है.

वह आदमी एक नामी दुकानदार है. वह सब तरह का गैर-कानूनी धंधा करता है. साफ कपड़े पहनता है. उसका भाई विधान सभा का सदस्य है. और उसके इस तरह की बीसियों औरतों से संबंध है.

मुझसे यह मत पूछिएगा कि उसकी अपनी औरत के कितने लोगों से संबंध हैं.

मुझे वह रोती हुई औरत ही दिखायी देती है, जिसके बच्चे अपने घर के रसोईघर के खाली डिब्बे खोल रहे हैं. उन्हें भूख लग आयी है. वह औरत रोती है तो आदमी उठ जाता है.—मैं तुम्हें एक पैसा भी नहीं दूंगा. तुम मुझसे काफी पैसा ऐंठ चुकी हो! वह आदमी फिर गुर्राता है.

वह दुकानदार है जिसने बीसियों औरतों को वेश्या-कर्म के लिए मजबूर किया हुआ है.

★ ★

बस आगे जानने की मेरी समस्या नहीं है. मैं इस जानने से ही तो छुटकारा पाना चाहता हूं. वह आदमी मेरे कान में ये बातें फूंक गया है. बुरा हो उसका.

खैर. . .आप सोच रहे होंगे मैं आपको बना रहा हूं. जब मैं अपनी प्रज्ञा से इतनी चीजें जानता हूं या जान सकता हूं तो क्यों नहीं मैं उस आदमी की गतिविधियों को जानूं—वह कहां है—क्या कर रहा है. . .इस वक्त किस हालत में है?

ठीक यही एक बाधा है. या कहूं कि यही बंधन है. मैं उस आदमी के बारे में नहीं जान सकता. सोच-सोच कर सिर्फ तड़प सकता हूं. उसे गालियां दे सकता हूं.

★ ★

एक दिन मैंने सोचा, अपनी इस क्षमता का कहीं और उपयोग करूं.

मसलन कि हिंदुस्तान में क्रांति होगी तो वह कैसी होगी—तो आप विश्वास नहीं करेंगे—उस पूरे दिन मैं क्रांति के उस विराट स्वरूप का दर्शन करता रहा. . .

छोटी-छोटी मजदूर टोलियां लाल किले के इर्द-गिर्द जमा थीं. उनके हाथों में लाल झंडियां थीं. एक विराट मंच पर कितने ही लोग थे. निहायत अनौपचारिक वातावरण था. . .

अब आपको बताऊं कि वे क्या कर रहे थे. वे क्रांति की सफलता के सिलसिले में दूर-दराज प्रांतों से आये हुए थे और जन नेताओं को सर्वहारा की इस अविस्मरणीय विजय की बधाई दे रहे थे.

क्रांति का सिलसिलेवार ब्योरा मैं दे सकता हूं—लेकिन खुद मेरे देखते-देखते —उस पूरे दिन घटनाओं की वे तसवीरें इतनी तेजी से घूमी थीं कि मुझे अब उनमें से महत्वपूर्ण घटनाएं याद हैं.

परंतु क्या इतने से तसल्ली नहीं हो सकती कि क्रांति अवश्यंभावी है. क्रांति की घटनाएं रक्तधाराओं के प्रवाह से जुड़ी हैं और मैंने देखा था, उसमें कितने ही प्रतिक्रांतिवादियों, प्रतिक्रियावादियों

डॉ. गंगाप्रसाद विमल (जन्म : ६ जून,१९३९) ने आज के आदमी की जिंदगी को बहुत निकट से देखा-परखा है. उसका दुख-दर्द और अपने आसपास की चीजों को न समझ पाने की छटपटाहट ही इनकी कहानियों का मुख्य विषय है. फिर भी इनके पात्र अपने यथार्थ से भागते नहीं, उसका सामना करते हैं.

को होम करना पड़ा था. उन घटनाओं के बीच उभरते हुए ऐसे जन-नेताओं के चेहरे भी देखे थे, जिन्हें मैंने कभी, कहीं नहीं देखा. जिनकी तसवीरें कभी अखबारों में छपी नहीं हैं.

★ ★

मुश्किल यह है कि पिछले दिनों ही जब मुझे अपने गांव-घर से आयी बूढ़े पिता की चिट्ठी मिली थी, तभी मुझे अंदाजा हुआ था कि यह मेरे पिता की आखिरी चिट्ठी है.

मैं उस चिट्ठी के हर आखर, पिता के दस्तखतों को ले कर बेहद भावुक हो उठा था. इसके बाद वे आखर नहीं दिखायी देंगे. अतीत से नाता जोड़े रखने वाली यह कड़ी टूट जायेगी. और फिर मैंने देखा था उन्हें—वे मेरे भाई के साथ कस्बे तक आये थे. पहाड़ी कस्बे के चारों ओर की पहाड़ियां बर्फ से भरी थीं. उस सफेद चकमक सफेदी में मैंने उन्हें मरते हुए देखा था...

वह एक कुर्सी पर बैठे थे. अंग्रेजी भाषा में लिखी कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ रहे हैं. और फिर वैसे ही बैठे रह गये हैं. हाथ से पुस्तक नीचे जा गिरी है. और वह वैसे ही जैसे किताब पढ़ रहे हों—बैठे रह गये थे. मुद्रा ठीक किताब पढ़ने की थी. आंखों पर वही पुरानी ऐनक थी. और मुंह पर वही पुरानी बूढ़ी हंसी.

लेकिन मैं यह जान कर डरा नहीं था. दुःखी हुआ था और उस तार का इंतजार करने लग गया था.

न जाने क्यों, पिता की याद आते ही मुझे पिता के साथ हुई लड़ाइयां याद आती हैं. मुझे अफसोस होता है. वह हमेशा निहत्थे रहे. मैं उनसे लड़ता रहा. मैं समझता था पुरानी दुनिया के मूल्य, परंपराएं और उनकी धार्मिक आस्थाएं उनका कवच थीं. वह बहुत मामूली औजार थे. लेकिन एक निहत्थे आदमी से लड़ने का अपना सुख है. आदमी निहत्था हो और हार न स्वीकार करे!

जब मुझे तार मिला तो मैं जैसे जाने के लिए तत्पर बैठा था. लेकिन पहाड़ी कस्बे तक पहुंच कर पता चला था कि गांव जाने के सारे रास्ते बंद हैं. ठीक वैसे ही जैसे मैंने देखा था, मैं और मेरे बड़े भाई बर्फानी तूफान में गांव के लिए चल पड़े थे. बर्फ के बड़े-बड़े धब्बे हमें थोड़ी ही देर में ढंक लेते थे और हम उन्हें झटकने लगते. ठीक वैसा ही—जैसा मैं पहले देख चुका था.

★ ★

अब मैं किसी आदमी को देखता हूं तो पहले उसको तलाश करता हूं. लेकिन आंख मिलने के बाद ही, वह मेरी खोज का आदमी तो नहीं निकलता, पर मैं उसके अतीत और उसके वर्तमान के बारे में देखने लगता हूं. जैसे एक फिल्म मेरी आंखों के आगे खुलने लगती हो.

बारिश की एक शाम, जब ठंड की वजह से गरीब लोग झोंपड़ियों के अंधेरे में दुबके होते हैं और अमीर लोग जिस्म को गर्माने के लिए शराब की टोह में होते हैं, तभी मुझे एक मकान के कोने में इंतजार करता एक आदमी दीखा था.

—क्या आप... वह मेरी तरफ बढ़ा. उसके कपड़े शौकीन लोगों के कपड़ों की तरह थे.

मैं उससे आंख नहीं मिलाना चाहता था. मैंने बड़े रूखेपन से पूछा—क्या चाहिए?

—आपने रेडियो सुना?...

अजब पागल है यह, मैंने मन में सोचा—क्यों, क्या खास खबर थी?

—असल में मैं यूनियन की मीटिंग में फंस गया था. मुझे पता ही नहीं है कि हिंदुस्तानी खिलाड़ियों की क्रिकेट में क्या हालत रही!

मेरे आगे क्रिकेट का पूरा खेल था और उसमें नजर आ रहा था कि हिंदुस्तान हार जायेगा.—हिंदुस्तान हार गया, मैंने अपने देखे के मुताबिक कहा.

तो उसने लपक कर मेरा गला पकड़ लिया. उसकी आंखें मेरी आंखों से मिलीं और मैं जान गया कि वह क्या चीज है.

—अभी मैच तीन दिन और है, और तुम कहते हो हिंदुस्तान हार गया!... वह गुस्से में था.

और वह जो यूनियन का आदमी था, उसका अतीत था, कि वह बेहद चालू, चंदा हजम करने वाला चालाक था और उसका भविष्य था 'जेलखाना', पर मैं उसे उसी के भविष्य से कैसे परिचित करा सकता था? आदमी अपने भविष्य के बारे में चिंतित होता है, दूसरे के भविष्य से दुःखी.

पाठकगण, मैं खुद अपना भविष्य नहीं जान सकता. यही तो दिक्कत है. न मैं उस आदमी के बारे में जान सकता हूं जिसने मेरे कान में ये सारी बातें भर दी हैं और न अपने बारे में.

★ ★

मैं सड़क पर चलता हूं तो मुझे सड़क का अतीत भी दीखता है. एक टीला और एक जंगल. और सड़क का भविष्य दीखता है—निर्जन... वीरान... सन्नाटे से भरा और फिर मैं उस आदमी को देखता हूं—उसने यह भविष्य नहीं बताया था... कुछ और बताया था... मैं किसी खूबसूरत लड़की को देखता हूं तो मुझे उसका अतीत दीखता है—बहती नाक वाली, गंदा फ्रॉक पहने लड़की और उसका भविष्य—कई-कई आदमियों के साथ सहवास.

लेकिन इससे क्या! यह हमारी जर्जर मान्यताओं को तोड़ने के लिए जरूरी है, लेकिन उसके बाद उसी खूबसूरत लड़की का भविष्य है जो मुझे परेशान करता है.

और मुझे एक बेहद स्वस्थ नौजवान का भविष्य दिखायी देता है—पसीने से लथपथ दौड़—बेकारी, जलूस, जेल-यात्रा, अतिवादियों की संगत और फिर खत्म...

हां—मैं अब किसी की ओर नहीं देखना चाहता. मैं जब-जब देखता हूं... सभी चीजों का निकट भविष्य बहुत अंधकारपूर्ण है और उसके बाद... या... तो वह आदमी मिले. जिसने कुछ और बताया था या...

मैं उस आदमी की तलाश में हूं जिसने मुझे इस काम में फंसा दिया है. उसीसे मिल कर—उसे ही बता कर मैं छुटकारे की कामना करूंगा.

हो सकता है वह आदमी आपको मिले. आप उसे तब तक पकड़ रखिए, जब तक मैं आप तक नहीं पहुंच जाता. उसकी पहचान है...

२६।५३ रामजस रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली—११०००५.

व्याख्याकार

• कृष्ण भावुक

—भाइयो, हम से अब और अधिक सहन नहीं होता, जितनी जल्दी हो सके हमें यह बुनकर कला-कुंज छोड़ देना चाहिए. यह निर्णय हमें आज नहीं तो कल, एक न एक दिन लेना तो था ही, तो आज ही क्यों न ले लें? व्यक्तिगत रूप से मुझे उस तारा मुकर्जी की मनहूस सूरत से नफरत है, बल्कि कहूं 'एलर्जी' है. वह 'यू ब्वायज' की बच्ची जब भी बिल्ली की तरह दबे पांव आती है, मेरी पीठ पर एक गिलगिली छिपकली रेंगने लग जाती है. बात करने और हमारे डिजाइन चुनने में उसकी तमीज एक जैसी रहती है. दो-ढाई महीने हो गये हैं और अब उसका चक्कर लगने ही वाला है. मैं चाहता हूं इससे पहले कि 'यू ब्वायज, वहां क्या करता, इधर आओ' बोलती हुई वह सफेद बिल्ली हमारे सीनों पर अपने पंजे गाड़ दे, हम लोग यहां से अपना बोरिया-बिस्तरा गोल कर जायें. जहां तक मैं समझता हूं...

अभी मंजरेकर अपना वक्तव्य समाप्त भी नहीं कर पाया था कि मैंने अपना हाथ पूरी लंबाई में चौराहे के सिपाही की मुद्रा में सीधा खड़ा कर दिया—स्टाप. चुप हो जाइए महाशय!

—जॉली, क्यों रोकते हो इस बेचारे को? बोलने दो न अरसे बाद तो आज इस कमबख्त का मुंह खुला है, सुधाकर ने मोटे शीशों के चश्मे से चुंधी आंखें मिचमिचाते हुये हस्तक्षेप किया.

इस पर शिंदे, सुरजीत और डेविड थामस कभी सुधाकर की ओर और कभी मेरी ओर चेहरे घुमा-घुमा कर देखने लगे. राये शून्य में ताक रहा था.

मैंने मंच की बागडोर संभालते हुए कहा — भाइयो, बात यह है कि... और साथ ही जमुहाई लेने की मुद्रा में मेरा मुंह अंडाकार खुल गया. तंबाकू को चुटके में भरकर खुले मुंह में बुरकाने वालों की तरह मैंने भोजन-पानी के प्रवेश-द्वार पर दो-तीन बार चुटकी चट-चटाई और कुर्सी से टेक लगाते हुए शब्द उगलने शुरू कर दिये, महाशय, अब आप सब चुप हो जाइए और सिर्फ मेरी बातें सुनिए, क्योंकि मुझे अपनी कहने का शौक है, दूसरों की सुनने का नहीं.

—की मोशाय? राये ने (जो अब तक मेज की टांग पर पिये गए चाय के कपों के निशान लगा चुका था) अनायास अपना तकिया कलाम मेज के कोने से ठीक बीच में उछाल दिया.

मैंने राये को घुड़की की एक खुराक पिलाते हुए कहा — ओ, बंगाली मोशाय के बच्चे! सीधे चुपचाप बैठे रहो, वरना तुम्हारी जिराफ-सी गर्दन इस मेज की नीचे फंसा दूंगा. हां, तो दोस्तो! श्री गोपाल मंजरेकर की बातों से असहमत होने का प्रश्न ही नहीं उठता. हमें अब यह 'कला कुंज' छोड़ कर कहीं और डेरा लगाना चाहिए. यहां तो तुम जीवन भर इसी तरह कपड़ों के लिए नये-से नये डिजाइन तैयार करते रहोगे और मैं तुम्हारे डिजाइनों की व्याख्याएं कर-कर के उन्हें मैडम मुकर्जी को पसंद करवाता रहूंगा. आज जो एजेंट हमारे पसंद किये हुए डिजाइनों के अनुसार कपड़ों का आर्डर सप्लाई करते हैं और जो व्यापारी उन कपड़ों के निर्यात से हजारों रुपयों की विदेशी मुद्रा प्राप्त करते हैं, वे वहीं रहेंगे, सिर्फ उनकी जगह लेने के लिए दूसरे आ जाएंगे. सौ बातों की एक बात, इतने कम वेतनों में आजकल हमारा गुजारा नहीं हो सकता. हम मर जाएंगे, लेकिन अपना आर्थिक शोषण किसी कीमत पर नहीं होने देंगे. दिस इज आवर लास्ट बिड-टू, आर डाइ. बी आर नाट टू बी...

बुनकर कला-कुंज के डिजाइन हाल में तालियों की पट-पटाहट. 'हियर-हियर ब्रेवो, ब्रेवो, जोली दी ग्रेट' की मिली-जुली ध्वनियां कलाकारों की चेतना में चितकबरे पक्षियों-सी फड़फड़ा उठीं. सुधाकर ने मेज पर ही १२मात्रा, १६ ताल पर सदा की तरह तबला बजाना चालू कर दिया. उसकी ताल के साथ बी. के. राये ने 'भालो माशे, भाशो भहो' कहते हुए सिर हिलाना शुरू कर दिया. डेविड ने थैले से अपना नारियल का बौना हुक्का निकाल लिया और उसकी चिलम में सिगरेटों का तंबाकू भरने लग गया.

मुझे अपनी ओर खूनी नजरों से घूरते देख कर सुधाकर का तबलावादन तो रुक गया, किंतु उसकी अंगुलियां हवा के टाइप-राइटर पर निःस्वर थिरकती रहीं. राये की बंगला घुट कर रह गयी, किंतु सिर कठपुतली-सा दायें-बायें डोलता रहा. मुझे लगा, वह भीतर ही भीतर मेरे भाषण के शब्दों की जुगालियां कर रहा है. डेविड ने 'हुक्की' (क्योंकि उसे 'हुक्का' कहना 'हुक्कों' का अपमान करना था) की चिलम तो भर ली थी, किंतु उसे पीना चालू नहीं किया था, अपितु आंखों में अपार दयनीयता भर कर मेरी ओर ताकते हुए उसे एक कोने में टिका कर गंजी चांद सहलानी शुरू कर दी थी. मुहम्मद रफई मेरी ओर यूं टुकुर-टुकुर निहार रहा था जैसे मेरे मुंह से शब्द सुनने को अत्यंत उत्सुक हो. मुझे लगा, उसका गला बेहद सूख रहा है. पता नहीं, चाय के चार प्यालों के कारण या कि मुझे वैसे ही भ्रम हो रहा था.

—तो इसका मतलब है, आप सब निर्णय कर चुके हैं —गुड वेरी गुड. अब आगे की बात ध्यान से सुनो. वाराणसी में कमरों की किल्लत है. हमें गुजारे लायक सिर्फ एक कमरा चाहिए. भवानी शंकर दुबे का एक कमरा बहुत दिनों से खाली पड़ा है, शायद आप ने भी देखा होगा. देखा नहीं, तो सुना तो होगा ही. आप कृपया अपना हाथ खड़ा कर के बतायें कि यह कमरा देखा-सुना है भी या नहीं?

इस पर मेज की अगल-बगल से कई हाथ निकल कर सीधे छत की ओर तन गये. एक, दो, तीन, चार, दस, ग्यारह, बारह हाथ. छहों कलाकारों ने अपने दो-दो हाथ गर्दन से ऊपर दंडायमान खड़े कर दिये थे.

—हूं, हाथ नीचे कर लें. तो इसका मतलब है, वह कमरा 'चलेगा'. एक बार फिर सोच लें, कमरा १०फुट बाई १० फुट का ही है. कमरा लेने में सबसे बड़ी दिक्कत मालिक लाला भवानीशंकर दुबे को तैयार करने में आएगी. सुना है, लालाजी किरायेदारों से बहुत पूछ-ताछ करने के बाद ही कमरा किराये पर चढ़ाते हैं, तभी तो इतने दिनों से वह खाली पड़ा है. अब यह बतायें, आपमें से कौन लालाजी से कमरा 'सैट' करने का जिम्मा अपने सिर लेता है?

चारों ओर एक भी हाथ खड़ा दिखाई नहीं दिया. हां, अलबत्ता गोपाल मंजरेकर अवश्य घड़ी पर नजरें टिकाये फुसफुसाता सुनाई पड़ा— बहुत देर हो गयी, उमा घर में अकेली होगी. मुझे अब जल्दी चलना चाहिए.

—ओ पलीदत की औलाद! कभी तो धैर्य से काम लिया कर. जरा-सी देर हुई नहीं कि वही अपनी 'उमा' का राग अलापना शुरू कर दिया. मैं फट पड़ा था. मेरा स्वर खीझ और कंपन ओढ़े हुए था.

इस डांट पर मंजरेकर की ४८ इंच छाती सिकुड़ कर लगभग ४०-४२ इंच रह गयी और उसका मुंह जरा-सा निकल आया. डेविड थामस की रंग-पुंछी टाई मरियल-सी पड़ी रही. उसके मुख पर गाढ़ी कोलतार का लेप पुतने लग गया था. वही हम सातों में एक मात्र अविवाहित व्यक्ति था. घर-गृहस्थी की चर्चा से उसे खासी 'एलर्जी' थी और वह चाहता था कि उनकी मजलिस में 'घर-बार' की कतई टपकना नहीं चाहिए. सुधाकर के हाथ धीरे-धीरे कांप रहे

थे– सदा की तरह. उन्हीं कंपानमाय हाथों से वह अपने लड़कियों जैसे बाल्ड कट बालों में कंघी-सी कर रहा था. सुरजीत का एक हाथ बार-बार अपनी पलस्तर गिरी दीवार-सी मटमैली पगड़ी की शिकनें दुरुस्त कर रहा था– अदृश्य शिकनें.

—खैर, मैं आपकी यह मुश्किल भी अपने सिर लेता हूं. मैं खुद लाला दुबे से कमरे की बातचीत करूंगा. शर्त यह है कि आप छहों मेरे पीछे बापू के बंदरों की तरह चुपचाप खड़े रहेंगे और कुछ भी ऊलजुलूल नहीं बकेंगे. तो आज की यह मजलिस अब यहीं बरखास्त होती है. 'बुनकर कला-कुंज अलविदा! 'गोपाल स्वीट हाउस अलविदा !!' अब कल हम सब प्रातः १० बजे लाला दुबे के घर के बाहर मिलेंगे. पूरे घंटे की यह कुलीगीरी समाप्त.जब जी चाहे काम करो, जब जी चाहे आराम. किसी स्साले की कोई धौंस नहीं. हम लोग 'मंडल चुनाव-समिति' के इंटरव्यू में पास हो सकते हैं, तो अपना स्वतंत्र धंधा भी चला सकते हैं. हम सब 'कलाकार' हैं. मैंने अपने कला-केंद्र का एक बढ़िया-सा नाम भी सोच लिया है– जोर-से एक साथ बोलो, 'सप्तर्षि कला-निकेतन जिंदाबाद!'

इस पर डिजाइन हाल की दीवारें सप्तर्षियों के नारों से गूंज उठीं. तभी सुरजीत सिंह हाथों में बूट पकड़ कर पिछले दरवाजे की ओर दौड़ता नजर आया. पहले तो किसी की समझ में कुछ नहीं आया, किंतु सामने वाले दरवाजे से धुंध के में उभरते चेहरे को देखते ही कई स्वर मुखर हो उठे –भाभी

'भाभी' अर्थात् जीते (सुरजीत) की पत्नी हरशरण कौर. आज घर पहुंचने में देर हो गयी थी न, सो उसकी पत्नी स्वयं आ टपकी थी. लंबे-चौड़े सुरजीत की पत्नी भी लंबी-चौड़ी थी. खालिस पंजाबी जटनी.

सुरजीत अमृतसर (पंजाब) का रहने वाला था. वह दूसरे दोआबियों की तरह टखने से नीचे तक का तंग पांयचों का पाजामा पहना करता था और हरदम एक लंबा चोगेनुमा सफेद कुर्ता धारण किये रहता था. प्रायः मोटे शीशों वाले चश्मे से उसकी बड़ी-बड़ी आंखें एकटक आसमान की ओर ताका करती थीं. कहते हैं, पहले वह अब से भी अधिक कुरूप था. वह और हरशरण अमृतसर के पास पट्टी नामक गांव में रहा करते थे. वह गांव के बाहर बैठ कर अपनी पेंटिंग्स बनाया करता था और हरशरण मुटियार उसके उन्हीं आड़े-तिरछे चित्रों पर ही लट्टू की तरह नाच उठी थी. यह रहस्य उद्घाटित होने के बाद हमारी यह जिज्ञासा शांत हो गयी थी कि इतनी 'सोहणी मुटियार' इतने 'कोझे जाट' के हाथ कैसे पड़ गयी. सुनते हैं, हरशरण ही उसे गांव से भगा कर वाराणसी ले आयी थी क्योंकि उन दोनों के माता-पिता अत्यंत रूढ़िवादी थे. हरशरण के माता-पिता को तो विशेषतः यह 'शक्ल न सूरत का' रांझा एक आंख नहीं भाया था. यहीं आकर इन दोनों ने एक गुरद्वारे में शादी कर ली थी और यहीं बस गये थे.

सबने देखा, हरशरण की सांसें फूली हुई थीं और उसका चौड़ा-चकला वक्षःस्थल जल्दी-जल्दी उठ-गिर रहा था. फूलदार कुर्ता कसीदे के फ्रेम पर चढ़े हुए कपड़े की तरह कसा-कसाया लग रहा था. उसे देख कर मुझे सुधाकर का वह कसा हुआ तबला याद आ जाता था, जो हरदम बज उठने की मुद्रा में सन्नद्ध रहता था.

हमारे चलते हुए कदमों में 'भाभी' का भारी-भरकम स्वर किसी हठीले बालक-सा लिपट गया – किथे गया ओ कायर किते दा? सौरा, पंजाबीयां दा नां डोबदा है. लोकां दे डिजाइन बणाऔंदा आप ही डिजाइन बण गया है –

इस पर वाई. पी. सुधाकर ने आंख की कोर दबाकर संकेत किया कि आज भाभी का पारा काफी 'हाई' है. रामा शिंदे ने कदम तेज करने में पहल की. मुहम्मद रफई अपनी कंटीली दाढ़ी पर बार-बार हाथ फेर रहा था और आंखों ही आंखों में मुझे भाभी का पारा शांत करने का गुप्त संदेश प्रेषित कर रहा था. बी. के. राये अपनी बड़ी-बड़ी मूंछों और कलमों को ही चलते-चलते आदमकद आईने में देख रहा था और सहला रहा था. डेविड के कंधों पर सदा की तरह दोनों थैले लटके हुये थे. एक थैले में तो कैन्वस, तूलिका, ब्रुशों का बंडल और मृगछाला थी और दूसरे बड़े थैले में गिलास, प्लेटें, थाली और गृहस्थी का अन्य जरूरी सामान था. डेविड को देखकर मुझे सदा गालिब के एक शेर की 'बे दरोदीवार-सा इक घर बनाया चाहिए' पंक्ति सताने लग पड़ती थी और मैं अधरों की चौखट के भीतर ही अपने आप से बुदबुदा उठता था—स्साला, खानाबदोश कहीं का! चित्रकारी के सामान के नीचे कंधे से झूलता कैमरा जब-तब झांक उठता था. डेविड मितभाषी था. किंतु उसका यह सामान अधिक बोलता था और उसके व्यक्तित्व की रेखाएं गहरी उकेर जाता था.

पता नहीं, सहसा मेरे जी में क्या आया कि मैं बोल उठा—भाभी, जीते बिचारे को क्यों कोसती रहती हो. यह भारत का उच्च कोटि का चित्रकार बनेगा.

—उंह—चित्तरकार, हरशरण कौर चलते-चलते ठसक से खड़ी हो गयी और हवा में हाथ लहराते हुए फट पड़ी, मूरतां चंगी बणाउंदा होऊगा—मैंनू तो एह पता है कि एह शादी दे सत सालां विच इक बच्चे दी वी मूरत बणा नहीं सकया. कायर किते दा!

यह तीखी प्रतिक्रिया सुनते ही सब को सांप सूंघ गया. मेरे साथ एक दिक्कत यह है कि मुझे असमय ही इधर-उधर की बातें याद आ जाया करती हैं. मसलन, इसी समय मुझे सुरजीत की 'सोहणी के आंसू' पेंटिंग याद हो आयी. उस चित्र में सोहणी की आंखों का अनुपात काफी बड़ा था और घड़ा काफी चमक रहा था, मानो सोहणी के अश्रुओं से उसका कोई संबंध हो. सुरजीत के घर से हम लोग जबरदस्ती वह पेंटिंग ले आये थे और हमने उसे एक प्रदर्शनी में रखवा दिया था. उस दिन सुरजीत प्रदर्शनी के सभी चित्रों को छोड़ कर केवल अपने उसी एक चित्र के आगे बैठा दो घंटे तक टसुवे बहाता रहा था. पूछने वालों से वह यही कहता रहा था—यारो, एस तस्वीर विच विखाये सोहणी दे अथरू मेरे हन, ते शकल किसे होर दी है.

प्रदर्शनी के अंत में राम शिंदे ने आदत के अनुसार सिर खुजलाते हुए सुरजीत के घाव कुरेद दिये थे— शुक्र कर जीते! यह शक्ल तेरी नहीं, वरना तेरी इस पेंटिंग को कोई न पूछता.

भारतीय बुनकर सहकारी-मण्डल की उस शाखा से बाहर निकले तो हमारे कदम तेजी से उठ रहे थे, क्योंकि बूंदाबांदी की रिमझिम हमारी चेतना पर जलतरंग-सी बजने लग गयी थी.

★ ★

आप भी सोचेंगे कि कितना अजीब आदमी है, अपने छहों कलाकार मित्रों की बाबत बताये चला जा रहा है, किंतु अपने बारे में कुछ नहीं कहता. मैं भी अपने छह कलाकार मित्रों के साथ बंबई में हुए मण्डल चुनाव-समिति के इंटरव्यू से चुना जा कर इस वाराणसी-स्थित बुनकर कला-कुंज में नियुक्त होकर आया था. पूरा नाम बृजमोहन जौली है. डेविड और सुरजीत को छोड़ कर शेष मंजरेकर, राये, शिंदे और सुधाकर की भांति मेरे नाम की पूंछ भी झड़ चुकी थी. और मैं मात्र 'जौली' रह गया था.

गोपाल मंजरेकर रत्नागिरी का रहने वाला था. कद ४ फुट ६ इंच. छाती ४८ इंच. उसे तारदेव में रहते हुए अपने मकान-मालिक नानूभाई की अत्यंत रूपवती कन्या उमा से प्रेम हो गया था और वह उसकी चाल से उसे भगा कर ले आया था. लड़की के माता-पिता इतने निर्धन थे कि अनेक भारतीयों की तरह वे अपनी बेटी की शादी नहीं कर सकते थे. जब मंजरेकर की इस पोस्ट पर नियुक्ति हुई तो उसी दिन उसने उमा को दादर के रेलवे स्टेशन पर विदा के बहाने बुला लिया और गाड़ी चलने पर बांह पकड़ कर उसे ऊपर ही चढ़ा लिया. कल्याण पहुंच कर उसने मुझे तार दिया—मेक एरेंजमेंट्स फार मैरिज. मैं बंबई से वाराणसी पहले ही आ चुका था. उसका तार पा कर मैं हक्का-बक्का रह गया.

रेलवे स्टेशन पर मंजरेकर के साथ तीन कपड़ों में खड़ी उमा को देखा तो बस देखता ही रह गया. मैंने उससे स्पष्ट कह दिया—जैसे भी हो स्साले, भोला शंकर की बारात भी अब मुझी को बनानी पड़ेगी.

सो साहब, बारात में कुल तीन व्यक्ति जुट सके थे. एक बाराती था मुहम्मद रफई, जिसने शादी में वर के पिता की भूमिका अच्छी तरह निभाई. दूसरा था रामा शिंदे, जो महाराष्ट्र से आया था और तीसरा मैं स्वयं था. साढ़े नौ बज रहे हैं और सामने से आते हुए मंजरेकर को देखते-देखते मैं अतीत में गोता लगा चुका हूं. सच कहूं, इसकी शक्ल के साथ-साथ मुझे तारा मुकर्जी की भी सूरत याद आ जाया करती है. शायद इसलिए कि मंजरेकर से अधिक कोई भी मैडम को घृणा नहीं कर सका था. तारा मुखर्जी किसी प्राइवेट फर्म की तकनीकी परामर्शदात्री थी. वह दो-तीन महीने बाद बुनकर कला-कुंज आती थी और खादी के कपड़ों पर डिजाइन बनवाने के लिए छहों कलाकारों के डिजाइनों की व्याख्याएं मुझसे सुना करती थी.

आधे-आधे इंच और उससे भी छोटे टुकड़ों से एक संपूर्ण चित्र को अस्तित्व देना यह सब वही जानते हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र का एकाध कोना झांका हो. मैं वक्तृत्व कला में असाधारण रूप से संपन्न होने के कारण अपने कलाकार मित्रों की पोस्ट बरकरार रखे हुए था. मैडम चित्रों को अपने घर ले जाती थी और टेपों पर मेरी आवाजों का रस-पान करती हुई डिजाइन कार्डों के नंबर अपने एजेंटों के हाथ भिजवा दिया करती थी, जो कपड़े का आर्डर दिया करते थे. फिर हम सब डिजाइनों के तकनीकी विवरणों पर विचार करते हुए लागत और लाभ का हिसाब लगाने के बाद उनके सप्लाई आर्डरों का समर्थन करते थे. उसके बाद कपड़े के निर्माण का कार्य बुनकरों का रह जाता था. मंजरेकर ने मेरे कंधे पर दबाव डाल कर मेरी चेतना भंग की. सामने रफई आ रहा था—आओ रफई! मैं अब तक तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था. वहां मोड़ पर क्यों रुक गये थे?

—एक पुराना परिचित मिल गया था. लगा बाल-बच्चों के बारे में पूछने. फिर वही पुराना सवाल कि मैंने अपने इकलौते बेटे का नाम 'सत्यसाची' क्यों रखा. रफई की दाढ़ी काफी बढ़ी हुई थी.

मैंने ध्यान से देखा. उसका चेहरा उड़ा-उड़ा सा था. माथे के एक ओर बालों का एक गुच्छा लटका हुआ था और शक्ल पर वही हमेशा वाली मनहूसियत टपक रही थी. मुझे उसके रुआंसेपन को तोड़ने की इच्छा हो आयी. इसलिए बार-बार सुने हुए उत्तर को सुनने के लिए पूछा—फिर तुमने क्या उत्तर दिया?

रफई का चेहरा सहसा ताजा गुलाब हो आया और उसकी बुझी-बुझी-सी आंखों में एक दुर्बोध चमक तैर आयी, अधरों पर भी वही विरल मुस्कान का उत्तरण हुआ.

—मैंने कह दिया.मैं यह मानता हूं कि अर्जुन जैसा तीरंदाज आज तक भारत ने पैदा नहीं किया. मुझे महाभारत में उसका चरित्र सबसे अधिक पसंद रहा है इसलिए मैंने अपने इकलौते बेटे का नाम 'सत्यसाची' रखा है. . .

—और अपनी इकलौती बेटी रेशमा के नामकरण का कारण नहीं बताया चुगद? यह वाई. पी. सुधाकर था.

—आ गये कंठे महाराज के शिष्य? मैंने उसका स्वागत किया. बात यह थी कि सुधाकर को कूची से ज्यादा तबले का शौक था और वह भारत के प्रसिद्ध तबलानिगार कंठे महाराज का शिष्य था.

मुहम्मद रफई ने उसी भावावेग में कह डाला—यह भी मैंने बता दिया कि रेशमा मुझे बहुत पसंद है और मैं रेशमा का डिजाइनर हूं.

तभी पास की गली से डेविड थौमस प्रकट हुआ. उसके कंधों पर एक कैमरा और दो थैले दीख रहे थे. ऐसा लगता था यदि अभी कोई उससे कह दे, 'मधुबनी चलोगे' तो वह 'हां' में सिर हिला कर अपने कंधों पर अपना 'घर' उठाये चलने भी लग जाएगा.

आते ही डेविड ने सुधाकर की आंखों से चश्मा उतार कर पुराना मजाक दोहराने की इच्छा से उसकी आंखों के सामने अंगुलियां खड़ी कर के पूछा—बताओ, ये कितनी अंगुलियां हैं?

सुधाकर ने झट उसके हाथ से चश्मा छीन कर नथुने फुंकारते हुये कहा—स्साले! मुझे तुम्हारी सारी बातें पसंद हैं, मजाक करना ही है तो सुरजीत (जो उसी की तरह मोटे शीशों वाली ऐनक लगाता था) से किया करो. हां, नहीं तो. . .

इस पर बगल से सुरजीत टपक पड़ा—ओये उड़ीसा के पंछी! मेरे पास कोई फटक कर तो दिखाये. यह कह कर उसने तुरंत आस्तीन ऊपर चढ़ा कर बांहों की उभरी हुई मछलियां दिखायीं.

सुरजीत हिंदी और पंजाबी दोनों धारा-प्रवाह बोल लिया करता था. उसके बस दो ही शगल थे—आसमान की ओर ताकते रहना और जब-तब बैठे-बैठे आहें भरते हुए कहना—हाये साडा पंजाब! पंजाब दीयां की रीसां ने! ओहो जेहे लाणे नूं तां तरस गए असां ऐत्थे वह प्रायः दफ्तर से छुट्टी होने पर घर लौट जाया करता. हरशरण कौर उसकी ऐसी ही आदतों से जली-भुनी रहती थी. कभी पत्नी की अनुपस्थिति में भी उसका नाम ले दिया जाता तो वह तुरंत बगल में जूते दबा कर रफूचक्कर हो जाया करता था.

राये और शिंदे के बारे में सोच ही रहा था कि दोनों बगलों में हाथ दिये सामने से आते दीख पड़े. जो बात जीते के 'साडा पंजाब' में थी, वही बी. के. राये के 'आमार बंगला, भालो बाशा' में.

—कमबख्तो! इतनी देर कहां लगा दी तुमने? सवा दस बज रहे हैं, मैंने आते ही रोब झाड़ा.

—जौली डियर! उस नुक्कड़ वाले खोखे में चाय पीने लग गये थे, राये ने ऊंट-सी गर्दन हिलाते-डुलाते हुए कहा.

—चाय-चाय-चाय! तुम्हें तो मोशाय सारे दिन चाय से ही फुरसत नहीं—मैं पुनः खीझ उठा. कहीं यह स्साला घर बैठ कर अपनी पत्नी प्रवीणा का सितारवादन न सुनता रहा हो, जो कि इतनी देर में आया. प्रवीणा शादी से पहले भी सितार बजाया करती थी, इसीलिए इस भलेमानस को जब देखो रविशंकर के सितारवादन की प्रशंसा से ही फुरसत नहीं मिलती. हर महीने इसकी एक ही रट रहती है, 'अगर मेरा यह चित्र बिक जाये तो मैं प्रवीणा को एक नयी सितार खरीदवा दूंगा...'

अरे हां, मैं आपको यह बताना तो भूल ही गया कि मेरे ये छहों कलाकार मित्र पेट भरने के लिए प्राइवेट रूप से अपनी कला-कृतियां बेचने की भी जान-तोड़ कोशिश करते रहते थे. 'मरता क्या न करता' वाली बात ही समझिये. यदि सौभाग्य से कभी कोई पेंटिंग बिक भी जाती तो उसके पैसों से सिगरेट, पान, चाय और राशन वाले के उधार चुकता किये जाते थे. यह बिचारे राये का दुर्भाग्य था. वह दुकानदारों को गिने-चुने नोट ऐसे गिन-गिन कर कांपते हाथों से पकड़ाता था, जैसे कोई बाप अपनी प्राण-पियारी इकलौती बिटिया को घर से विदा कर रहा हो.

अब वही राये अपनी ३२ इंची छाती तान कर उस पर हाथ फेरते हुए अपना तकिया कलाम दुहरा रहा था—मोशाय! अगर मैं यह चाय न पीता होता तो मेरी यह छाती २६ इंच की ही रह जाती. इस पर दुबे की हवेली का दालान कहकहों से प्रतिध्वनित हो उठा. तभी पिछले कोने से फर्श-चूमती धोती का पल्लू थामे दुबेजी परशुराम की मुद्रा में मंच पर प्रकट हुये—क्यों जी? क्या बात है? कहां घुसे चले आ रहे हो? अपने बाप का घर समझ रखा है क्या?

सुधाकर और राये आगे बढ़ने लगे, तो उन्हें धकियाते हुए मैं बीच में से आगे लपक कर लाला के पांव छूते हुए बोला—पांय लागी महाराज, हम लोग आपका खाली कमरा किराये पर लेने की इच्छा से आए हैं, इतना कह कर मेरे घूमते ही सभी कलाकार मित्र स्वीकारात्मक ढंग से गर्दनें हिला कर मानो जताने लगे कि हां, हां यही बात है. बोले वे इसलिए नहीं क्योंकि उन्हें चुप्पी धारण करने के लिए एक दिन पहले दी गयी मेरी चेतावनी स्मरण हो आयी होगी.

—कमरा? उसका तो किराये बहुत है. तुम लोग नहीं दे पाओगे. जाओ, जाओ अपना रास्ता देखो.

—क्या कह रहे हैं लालाजी? वह रामायण में विभीषण ने जैसा कहा है न कि 'श्रवण सुजसु सुनि आयउं, प्रभु भंजन भव भीर' हम

डा. कृष्ण भावुक (जन्म : १८ जनवरी, १९-४१) का विश्वास है कि कहानी 'जीवन के समांतर साक्षात्कारों से लैस हो कर एक तेजाबी हथियार की तरह बरती जा सकती है.' अब तक करीब सौ कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं.

तो आप ही की शरण में आए हैं. हमें निराश मत करें, शरणागत हैं आपके. जो भी किराया मांगेंगे आपको दे देंगे.

—हूं. भलेमानस जान पड़ते हो. कान खोल कर सुन लो, किराया पूरे पचास रुपये होगा, लाला ने जनेऊ में बंधे चाबी के गुच्छे को हथेली में जकड़े हुए कहा. मुझे पता था, पहले बीस रुपये पर चढ़ा था कमरा.

—क्या साठ? डेविड धीरे से बुदबुदाया, सिक्सटी इज टू लैस.

इतना सुनते ही मैं दांत पीसने लगा. इससे पहले कि मैं कुछ कहता, लाला दुबे बोल उठे—तुम सब लोग मेरे साथ आकर कमरा देख लो पहले.

और हम सब उनके पीछे-पीछे बाहर गली में आ गये, जहां उनका वह कमरा खाली था. लाला अभी ताला खोल ही रहा था कि सुरजीत उकड़ूं हो कर बैठ गया और देखते-देखते सुधाकर उसकी पीठ पर खड़ा हो गया और दो निकली हुई ईंटों वाले रोशनदाननुमा झरोखे में गर्दन डाल-डाल कर भीतर झांकने लगा. डेविड भी एड़ियां उठा-उठा कर वैसे ही उचक रहा था, मानो अभी रोशनदान तक पहुंच जाएगा. यदि लाला वहां न होता तो मैं इन कलाकारों के झापड़ रसीद किये बिना न रहता. भला ऐसी भी क्या जल्दबाजी हुई.

कमरा १० फुट × १० फुट का था. दरवाजा इतना छोटा और संकरा था कि हमें औरंगजेब से भेंटार्थ जाने वाले शिवाजी के बौने दरवाजे से झुकने का ऐतिहासिक दृश्य स्मरण हो आया. कमरे के ईंटों वाले फर्श पर तीन-तीन फुट की सैंक (सीलन) जमी हुई थी. तीनों ओर दीवारें थीं—एकदम बंद और रोशनदान के नाम पर बस वही दो ईंटों का झरोखा था. सो, कमरे में दमघोंट अंधेरा होना स्वाभाविक ही था. मैंने बाहर आकर कलाकार मित्रों से राय पूछी तो पता चला कि उन सबको कमरा पसंद है. जब मैंने दुबे को स्वीकृति दी, तो वह जोर से चौंका. मैंने लाला दुबे का संदेह ताड़ लिया और उनसे सम्बोधित हुआ—दुबेजी, आप इन लड़कों के आचार-व्यवहार से मत घबरायें. ये सब निहायत शरीफ आदमी हैं और इन के संबंध में सारा जिम्मा मैं लेता हूं.

अब बाहर से बी. के. राये अपनी सारसी गर्दन झरोखे में डाल कर देख रहा था और उषा के पंखे की तरह सिर हिला-डुला कर कह रहा था—भालो बाशा, भालो बाशा.

—बात यह है कि मुहल्ले की बदनामी से मैं बहुत डरता हूं, लाला बार-बार धोती का पल्लू अंगुलियों में लपेट और खोल रहा था.

उसी समय मंजरेकर मुझे एक ओर खींच कर ले गया और कान में धीरे से फुसफुसाया—जौली, लाले को बता दो कि मैं सिर्फ एक उमा को भगा कर लाया हूं और आगे भविष्य में किसी और लड़की को घर से भगाने का मेरा इरादा फिलहाल नहीं है.

इतने में लालाजी कहने लगे—तुम यहीं ठहरो, मैं अभी नर्मदा

से कमरा चढ़ाने के बारे में पूछ कर आता हूं.

मैं समझ गया कि अब सब गुड़-गोबर हुआ ही समझो. लालाइन कभी 'हां' नहीं कहेगी—कम से कम इतने सारे 'मुस्टंडों' की हरकतें देखकर. कुछ देर पहले जैसे ही लाला ने दरवाजा खोला था, वैसे ही सब मित्र ऐसे भीतर घुसे थे, जैसे कांजी हाऊस का फाटक खोलते ही पशु खुद-बखुद घुसपैठ करने लग जाते हैं.

डेविड ने तुरंत कमरे का एक कोना 'रिजर्व' कर लिया था और वहीं टांगें पसार कर बैठा सिगरेटें फूंके जा रहा था. बार-बार उसके मुंह से यही सुनाई दे रहा था—मेरा मन करता है, इसी समय यहां से सीधा मधुबनी चला जाऊं. सुधाकर ने भी दूसरे कोने पर अधिकार जमा लिया था और वहीं बनी अलमारी के पल्ले पर तबले का गत-तोड़ा बजाना शुरू कर दिया था. इस पर डेविड चीख उठा—अबे शोर मत मचा! मैं अपने हिस्से का किराया दे कर जाऊंगा.

अब तक गली के बाहर लगभग डेढ़ दर्जन हरिजन बच्चों का जमाव हो गया था और वे भीतर ताक-झांक कर रहे थे. पूरा कमरा सील की दुर्गंध से गंधा रहा था. सुरजीत ने कमरे का तीसरा कोना सुरक्षित कर लिया था और शिंदे ने चौथा. तभी बाहर से रफई की 'हाय-हाय-हाय' की आवाज कानों में पड़ी. बाहर जाकर क्या देखता हूं, उसने बाहर वाली सीढ़ी पर अपनी घिसी-पिटी बाल-उड़ी मृगछाला बिछा कर कैन्वस पर ब्रुश से चित्र बनाना भी शुरू कर दिया था और एक-दो रेखाओं के नशे में धुत्त होकर 'हाय-हाय' कहने लग गया था. बोला—एक सिगरेट होगी जौली?

—न-हीं, मैंने चेहरा सख्त कर के एक शब्द उगला और भीतर लौट आया. भीतर लाला अपनी लालाइन के साथ हतप्रभ खड़ा यह सब ऐसे निहार रहा था, मानो उसके घर की कुर्की हो रही हो. मैं उन दोनों को अपने मित्रों के स्वभाव और आदतों के बारे में पक्षपातपूर्ण ढंग से बताने लग गया. सच पूछिये, तो मेरी हालत उस समय ठीक उस व्यक्ति जैसी थी, जो पहले तो परिवार नियोजन वालों को अपने बच्चों की संख्या कम बता कर पीछा छुड़ाना चाहे और बाद में उन्हीं के सामने घर से दूसरे बच्चे निकलते देख कर शर्म से धरती में गड़ जाए.

तभी सुधाकर लालाइन के सामने हाथ जोड़ कर हनुमान की तरह उकड़ूं बैठ गया और अत्यंत विनम्रतापूर्वक बोला—माताजी! अशोक वाटिका में सीताजी को जो स्तुति हनुमान ने सुनाई थी, वही मैं आपको अभी तबले में सुना सकता हूं, यह कह कर उसने आलमारी के पल्ले पर तबला बजाना चालू कर दिया. पता नहीं लालाइन के मन पर कैसा प्रभाव हुआ कि उसने एकदम मौन साध लिया. उसके चुप्पी धारण करते ही लाला किराया एडवांस मांगने लगा. मैंने सब मित्रों को एकत्र किया और पीठ पीछे एक हाथ पसार कर खड़ा रहा कि जो जिसके पास हो, इस पर धर दो. बड़ी कठिनाई से ८ रुपये कुछ पैसे जमा हुये. २ रुपये स्वयं डाल कर मैंने १० रुपये लालाजी को सौंपे और शेष ४० रुपये ८-१० दिन में चुकता करने का वायदा किया. लाला ने स्वीकार कर लिया किंतु एक शर्त रखी—पहले तुम सब मुझे यह बताओ कि तुम्हें इस कमरे में पसंद क्या आया!

डेविड दूर कोने से लपक कर आया. उसने शायद लाला की बात नहीं सुनी थी. वह मेरे कान में फुसफुसाया—सिक्सटी रुपीज में लाला नहीं मानता, इससे कह दो हम 'एटी' रुपीज दे देंगे.

मैंने उसे तुरंत घूरा तो वह एक ओर छिटक कर खड़ा हो गया. ठीक इसी समय मंजरेकर ने कैन्वास खड़ा कर के उस पर एक गोलाई में घूमती हुई-सी रेखा खींची और उसी को देखते हुए 'वाह-वाह', 'कमाल है' आदि शब्द उगलने लगा. जब ऐसा करते हुए ५-१० मिनट हो गये तो लाला ने चमत्कृत ढंग से पूछा—भाई, यह है क्या?

—लालाजी, आपको चित्र में क्या दिखाई दे रहा है?

लाला भवानीशंकर कुछ मिनट निरर्थकता में गुम सोचते रहे. फिर हाथ हिलाते हुए बोले—पता नहीं, बंदर की पूंछ जैसी रेखा ही लगे है...

इस पर मंजरेकर ने ठहाका लगाया और उनके कंधे पर आघात करते हुए बोला—दुबे महाराज! यह एक लाइन साठ रुपये की है. यह तुम्हारी गली है न, यह ऊपर हवाई जहाज से बिल्कुल ऐसी दिखाई देगी और ये छोटी-छोटी बिंदियां हैं न, ये गली में चलते हुए लोगों के सिर हैं...

अपने प्रश्न का उत्तर पाये बिना लाला विस्फारित नजरों से उस वक्ररेखा को देखते हुए लालाइन के साथ भीतर चला गया. उसके जाते ही सब मित्रों ने मुझे घेर लिया और मुझसे पान और सिगरेट के पैसे मांगने लगे, जिससे पता चला कि उन सबकी जेबें खाली हो चुकी हैं. मैंने उन्हें फटकारा—स्सालो, अगर तुम्हारे पास पैसे नहीं थे तो कला-निकेतन किस बूते पर खोलने चले थे?

जैसे-तैसे इधर-उधर से उधार लेकर कमरे का शेष किराया लाला के हाथ पर रखा गया. सप्तर्षि कला-निकेतन खुल गया, किंतु कोई बोर्ड-वोर्ड नहीं लगाया गया.

—कितनी शांति है यहां...रामा शिंदे यह बात कई बार कह चुका था और उतनी ही बार डेविड समर्थन कर चुका था.

—ठंढा भी कितना है यह कमरा! सुधाकर भी कई बार अपनी पसंद का कारण दोहरा चुका था.

हम सब ने मिलकर जो बातें तय कीं, वे इस प्रकार थीं—

१. रफई कमरे के बाहर बैठ कर चित्र नहीं बनायेंगे. हां, वे प्रेरणा के लिए यदा-कदा कमरे से बाहर जाकर प्राकृतिक दृश्य देख सकते हैं.

२. सुधाकर सिर्फ पेंटिंग बनायेंगे और तबला बजा कर शोर नहीं करेंगे.

३ सुरजीत पेंटिंग बनाते समय लंबी-लंबी डकारें लेकर दूसरों को डिस्टर्ब नहीं करेगा.

४. गोपाल मंजरेकर चित्र बनाते समय जोर-जोर से ठहाके नहीं लगायेगा.

५. बी. के. राये (जिसका कद सबसे लंबा था) धरती पर बैठ कर चित्र बनायेंगे, खड़े होकर नहीं.

६. भाषण केवल मैं ही दिया करूंगा और इसके लिए मेरे 'सर्वाधिकार सुरक्षित' होंगे.

यद्यपि पहले महीने मेरी दौड़-धूप के कारण कलाकार मित्रों के कुछ चित्र बिक भी गये और उनके चित्रों की ख्याति वाराणसी में फैल गयी, तथापि बंबई में घर की स्थिति काफी डावांडोल हो जाने के कारण मुझे तुरंत वहां जाना पड़ गया. पीछे मेरे उन कलाकार मित्रों के साथ क्या बीती, क्या न बीती, मुझे कुछ पता न चल सका. आखिर ५ वर्ष बाद मेरा वाराणसी में चक्कर लगा.

★ ★

वाराणसी के रेलवे स्टेशन पर गाड़ी से उतरते समय मेरी चेतना में मुहम्मद रफई की लंगड़ी टांग (जो उस दिन चोट लगने के कारण लंगड़ा कर चलने से 'लंगड़ी' ही जान पड़ती थी) और दूसरे साथियों की यतीमी सूरतें मेले के हिंडोलों की तरह ऊपर-नीचे आ-जा रही थीं. उन्हें देख कर उस दिन बंबई की ट्रेन पकड़ने के लिए इसी प्लेफार्म पर चलते हुए ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरे सभी कलाकार मित्रों के संरक्षक या तो स्वर्गवासी हो गये हैं या उन्हें सदा के लिए छोड़ कर किन्हीं अज्ञात स्थानों पर चले गये हैं, रफई काफी लंगड़ा कर चल रहा था और अपने आप बुदबुदा रहा था—अब मुझे अपनी दूसरी टांग कभी नहीं मिलेगी.

सुधाकर फड़फड़ाते अधरों से केवल एक शब्द निकाल पाया था—जौली...डेविड ने कंधों से थैले फर्श पर पटकते हुये मेरा

भरपूर आलिंगन किया था और ये शब्द कहते-कहते रोने लग गया था—जौली. . .अब फिर कब. . .? अश्रुओं ने शेष शब्दों को पूरा कर दिया था. रामा शिंदे को पता नहीं क्या सूझी कि उसने झुक कर मेरे पैर छू लिये. गोपाल मंजरेकर मुझसे आंखें नहीं मिला रहा था और बार-बार रूमाल से आंखों की कोरें साफ कर रहा था. राये आंखों में अपार दर्द और दयनीयता भर कर कह रहा था—जौली डियर, प्रवीणा भी तुम्हें 'सी-ऑफ' करने के लिए आना चाहती थी, लेकिन. . .

और राये महाशय भी अपना वाक्य अधूरा छोड़ कर पायदान पर चढ़ गये थे. सच पूछिए तो इस समय मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या भूलूं, क्या याद करूं. डेविड की वह मैली टाई मेरी चेतना में बिजली के खंभे के तारों से लटके हुए किसी मृत नीलकंठ के पंजों-सी फरफरा रही है, रह-रह कर. पता नहीं ये सब लोग कहां होंगे, अच्छे-भले होंगे भी या नहीं.

मैं प्लेटफार्म से बाहर निकल आया हूं. सहसा धरती से आठ-नौ फुट की ऊंचाई पर लगे पैनल में एक मॉडर्न पेंटिंग देख कर ठिठक गया. अरे! यह तो मंजरेकर का बनाया हुआ चित्र है. मैं एड़ी के बल जरा-सा उचक कर पेंटिंग के नीचे कोने में निर्माता का नाम खोजता हूं. स्पष्ट अक्षरों में लिखा था 'प्रोड्यूस्ड बाई तारा मुकर्जी' और उसके नीचे कुछ कम छोटे शब्द बड़ी कठिनाई से पढ़ पाया. 'पेंटिड बाई' इन दो शब्दों के बाद टेढ़े-मेढ़े अक्षर थे—'जी. एम.'

तभी एक कुली मेरी अटैची लेने के लिए आगे बढ़ा.—बाबूजी, कहां जाना है आपको?

पता नहीं कैसे मैं उबल पड़ा—नहीं जाना है मुझे कहीं, रहने दो. बाद में सोचा तो पता चला यह मंजरेकर का पूरा नाम न देख सकने की तात्कालिक प्रतिक्रिया थी.

बहुत छानबीन के बाद वाराणसी की एक तंग बदबूदार गली में सुधाकर का पता-ठिकाना मिल गया. आंखों पर लगे चश्मे के शीशों पर खरोंचें पड़ी हुई थीं, फिर भी पता नहीं उसने चश्मा क्यों नहीं बदला था. मुझे देखते ही वह सुबकते हुए मुझसे लिपट गया. बाद में उसने बताया कि पत्नी और बच्चों को उसने एक साल से मायके में छोड़ा हुआ है.

—क्या करता, मेरा हाथ इतना तंग था कि. . . क्या बताऊं जौली, तुम गये तो जैसे मेरी किस्मत भी. . . खैर छोड़ो, ये बातें तो होती रहेंगी, पहले मैं तुम्हारे लिए चाय-वाय ले आऊं खोखे से.

मैंने उठ कर भीतर से उमड़ती रुलाई को रोकते हुए कहा—यार! रहने दो. चाय तो मैं अभी स्टेशन से पी कर आ रहा हूं. यह बताओ, तुम्हारा तबले का अभ्यास अब कैसा है?

यह सुनते ही उसके अधरों पर एक रेतीली मुस्कान आयी और शीघ्र ही लुप्त हो गयी. वह सीना फुला कर बोला— मेरी प्रैक्टिस अब भी जारी है डियर. और तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि जीवन की अंतिम सांस तक जारी रहेगी.

—गुड! आइ एम प्राउड ऑफ यू सुधाकर! अच्छा, यह बताओ, सुरजीत कहां मिलेगा? डेविड का पता बता सकोगे?

—जौली! सुरजीत को बनारस छोड़े तो दो साल हो गये. तुम्हारे जाने के बाद ही हम लोगों ने दुबे का कमरा छोड़ दिया था, किंतु लौट कर पुरानी नौकरी पर भी नहीं गये. कभी किसी का एकाध चित्र बिक जाता था. सुरजीत तो पंजाब चला गया, रही डेविड की बात, तो वह तुम न पूछो तो ही अच्छा है!

—क्यों, क्या हुआ डेविड को? सहसा मेरे हाथ में पकड़ा सिगरेट का पैकेट थरथराने लगा और मेरी स्मृति में डेविड की टाई फांसी के फंदे की तरह मरियल-सी झूल गयी.

पता नहीं सुधाकर से क्या सुनने को मिलेगा! सुधाकर खाली सीपियों-सी आंखें शून्य में गाड़े हुये बोला—जौली डियर! बहुत दुखद अंत हुआ उसका—एक कार पर उसने विज्ञापन के लिए मॉडर्न पेंटिंग बनायी थी. सेठ ने पहले जो पैसे तय किये थे, बाद में उससे कम देने चाहे. इसी पर डेविड उससे उलझ पड़ा. सड़क सून-सान देख कर सेठ ने उसी कार से उसे कुचल दिया. देखा तो नहीं, पर सुना है उसके शरीर का बायां हिस्सा बुरी तरह से घायल हो गया था और मांस की थैलियां-सी सड़क पर निकल पड़ी थीं. कहते हैं कई घंटे तक एक पुलिसमैन उसके थैले उठाये लोगों से उसका परिचय पूछता रहा था. पोस्ट मार्टम के लिए ले जाने से कुछ पहले बंगाली मोशाय राये ने स्ट्रेचर पर उसकी शिनाख्त की और पुलिस को बयान दिया कि एक मित्र के नाते लाश उसे सौंप दी जाये.

—च-च-च. . .हे भगवान्! उसकी. . .अर्थी में कौन-कौन था? मैं एकाएक रुआंसा हो गया था. मुंह से शब्द नहीं फूट रहे थे.

—राये स्वयं उन दिनों अस्पताल में दाखिल था, क्योंकि हृदय-गति रुक जाने से कुछ महीने पहले प्रवीणा चल बसी थी और उसी के गम में वह भी बीमार पड़ गया था. बहुत खोजने पर शिंदे ही मुझे मिल गया था. बस, यहां जिस खोली में डेविड रहता था, उसी की बगल में रहने वाले चार आदमी और हमारे साथ थे. हमने कार वाले सेठ के विरुद्ध पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज करायी, किंतु कुछ नहीं हो सका.

—ओह! बस करो सुधाकर. मुझसे अब और नहीं सुना जाता. अब चलूंगा. यह कह कर मैं उठ खड़ा हुआ. अच्छा यह बताओ, अब राये—उस बंगाली मोशाय का क्या हाल है? शिंदे कहां है? और हां, रफई और मंजरेकर का पता तुम्हें मालूम है?

—राये स्वास्थ्य-लाभ तो कर चुका है, किंतु उसने चित्रकला छोड़ कर रामा शिंदे के साथ उपन्यास लिख-लिख कर पेट भरने का धंधा अपना लिया है. सुरजीत ने कितनी बार कहा, स्साले तुम अपने जैसा कोई काम क्यों नहीं तलाश करते? इस पर रफई एक ही उत्तर देता था, कोई कर्म किसी के बाप की बपौती नहीं होता. मैं जो चाहूं करूं. उसके मुहल्ले के लोग कई बार आ कर उससे शिकायत करते थे कि वह जुम्मे की नमाज उनकी तरह जमात में जाकर क्यों नहीं पढ़ता. उन्हें भी रफई फटकारते हुए कहता था, पहले खूब गुनाह करो, फिर उन गुनाहों की तलाफी के लिए जाओ, यह हम से न होगा. हमारा खुदा हमारी रूह में कायम है, जब जरूरत होगी उसे अजान दे लेंगे. सुनते हैं यही कहता-कहता वह पागल हो गया. आजकल पागलखाने में है. कुछ लोगों का मत है कि चित्रकला के क्षेत्र में उपेक्षा ने ही उसे पागल कर दिया था. रही मंजरेकर की बात—तो वह आजकल तारा मुकर्जी की शरण में है. पता चला है उसका वहां भी दम घुटता है. जौली, उसकी एक पेंटिंग 'चूहा और बिल्ली' को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला है. तुमने देखी है क्या?

—क्या बताऊं जौली? बस लाल-सुर्ख धब्बे ही धब्बे भरे पड़े हैं. लोगों की समझ में भी पेंटिंग बिल्कुल नहीं आयी है. मैंने सोचा शायद तुमने देखी हो तो तुम्हीं से उसकी व्याख्या सुन लूंगा.

किंतु तब तक मेरे भीतर बहुत-सी दीवारें गिर चुकी थीं. कुछ देर तक मौन का एक कैन्वस हमारे बीच तना रहा.

—अच्छा. . .तो चलूं. . .मैंने सुधाकर के कंधे थपथपाते हुए ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा. सांझ ढल रही थी और आकाश की चादर पर सूर्य खून के थक्के ही थक्के उगल रहा था. मेरे कदम लड़खड़ा रहे थे. इतनी अधिक संवेदनशीलता पता नहीं मेरे स्वभाव में जन्मजात थी याकि अपने उन कलाकार मित्रों के संपर्क से आयी थी. पर क्या मेरे लिए वे सिर्फ 'मित्र' ही थे? क्या खयाल है आपका? □□□

६४/४, कुदरत निवास,
तोपखाना रोड, पटियाला १४७००१

समय की बात

• लक्ष्मण भंभाणी

एक एम. एल. ए. ने सचिवालय में चिकित्सा विभाग के उपसचिव श्री लाल के कमरे में मुलाकात के लिए अपने नाम की चिट भेजी. आधे घंटे के बाद चपरासी ने आ कर कहा कि सा'ब मीटिंग में जा रहे हैं, आज मिल नहीं पायेंगे.

कुछ दिनों के बाद ही मंत्रिमंडल में परिवर्तन हुआ. नये मुख्य मंत्री आये, जिन्होंने उस एम. एल. ए. को भी मंत्रिमंडल में सम्मिलित कर लिया और उसे चिकित्सा विभाग दिया. चिकित्सा विभाग के उपसचिव श्री लाल नये चिकित्सा मंत्री से मिलने आये. मंत्री महोदय ने चपरासी के हाथ कहलवाया कि थोड़ी-सी प्रतीक्षा कीजिए. आधा दिन निकल गया. उन्होंने फिर चपरासी द्वारा मंत्री जी को कहलवाया.

ज्यों ही मंत्रीजी ने उन्हें अपने चेंबर में बुलवाया, वह हाथ जोड़ कर बोले—मैं बहुत ही लज्जित हूं कि उस दिन. . .

मंत्री जी सिर्फ मुसकराते रहे.

निष्कर्ष : अफसरों को कभी भी किसी एम. एल. ए. को नाराज नहीं करना चाहिए. क्या पता वह कब मंत्री बन जाये. □

उलटी गंगा

• लक्ष्मण भंभाणी

ज्यों ही अफसर के चेंबर का दरवाजा खोलकर बाबू अंदर आया, अफसर चौंक कर खड़ा हो गया और चेहरे पर नम्रता के भाव ला कर, हाथ जोड़ कर पूछने लगा—जी. . . जी. . . हुक्म फरमाइए.

बाबू ने रोब से कहा —तूने मुझे अभी बुलवाया था?

अफसर ने हकलाते हुए कहा—जी हां. . . वास्तव में बड़े साहब मिल्क सप्लाई स्कीम वाली फाइल मांग रहे थे, इसलिए मैंने आपको कष्ट दिया.

—पर यह भी कोई मुझे बुलाने का समय है? तुम्हें मालूम है कि इस समय मैं चाय पीने जाता हूं. दिस इज माई टी-टाइम.

—सॉरी, गलती हो गयी. लेकिन बड़े साहब को फाइल तुरंत ही चाहिए, इसलिए. . .

—मैं यह कुछ भी सुनना नहीं चाहता. मैं चाय पी कर, पान खा कर और सिगरेट पी कर जब वापस आऊंगा, उस समय यदि मूड हुआ तो फाइल निकालूंगा. . .

और ज्यों ही बाबू चेंबर से बाहर निकला, अफसर ने अपने ललाट का पसीना पोंछा और अपनी कुर्सी पर बैठ गया. □

नौकरी

• भुवनेश दशोत्तर

तो आपने एम. ए. किया है? उसने कहा.

—जी, वह बोला.

—टाइप आता है?

—जी. . नहीं.

—सॉरी, टाइप जरूरी है. यह उसका पहला इंटरव्यू था.

—आपको टाइप आता है? उसने पूछा.

—जी वह बोला.

—शार्टहैंड?

—जी. . .नहीं.

—सॉरी, हमारे यहां शार्टहैंड जरूरी है. यह उसका दूसरा इंटरव्यू था.

—आपको शॉटहैंड आता है? उसने पूछा.

—जी. वह बोला.

—पहले कहीं काम किया है?

—जी. . . नहीं.

—सॉरी, हमें अनुभवी व्यक्ति चाहिए. यह उसका तीसरा इंटरव्यू था.

इसके बाद वह अनुभव बेचने वाली दूकान की तलाश में लग गया. □

• दत्ता राने

वास्तविकता

• वीणा गुप्ता
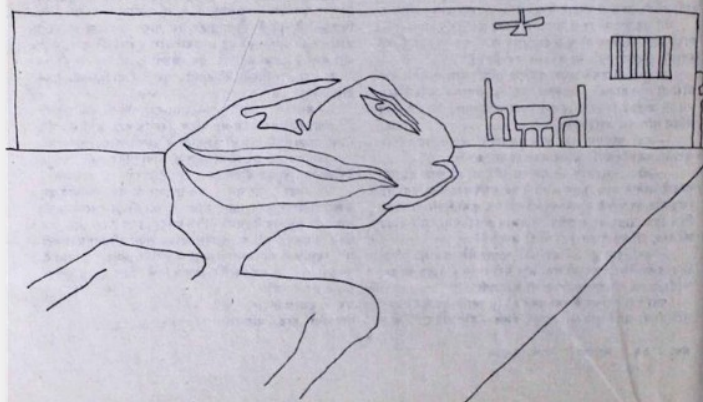
युवक दौड़ा-दौड़ा वहां पहुंचा तो एक शामियाने के नीचे कुदाल, तसला, कस्सी आदि एक कोने में पड़े थे और पास ही चार-छह व्यक्ति खड़े कोका कोला पी रहे थे.

—यहां एक सड़क के निर्माण का काम शुरू होना है ना, साहब?

लगभग हांफते हुए युवक ने पूछा तो एक वृद्ध ने शामियाने के बाहर खुदे हुए जमीन के टुकड़े की ओर संकेत करते हुए उत्तर दिया—तुमने थोड़ा-सा अधिक सुन लिया नौजवान, यहां केवल निर्माण के पहले का कार्य. मेरा मतलब है उद्घाटन होना था. □

मूल्यांकन

• वीणा गुप्ता

नये अस्पताल के बाहर गिर गये युवक की नब्ज देखते हुए डॉक्टर ने कहा— इसे तुरंत अंदर ले चलो. यदि शीघ्र ही खून निकलना बंद नहीं हुआ, तो इसका बचना असंभव हो जायेगा.

—लेकिन अभी तो अस्पताल का उद्घाटन ही नहीं हुआ. बस मंत्रीजी की कार आती ही होगी.

—लेकिन तब तक क्या इस का कोई उपचार नहीं होगा?

डॉक्टर के प्रश्न का उत्तर देते हुए उस नेता रूपी चमचे ने कहा—परंतु उद्घाटन हुए बिना अस्पताल में किसीका उपचार कैसे...

और तभी डाक्टर ने युवक का हाथ छोड़ते हुए कहा—लो, अब यह आपके उद्घाटन समारोह की 'जंजीर से मुक्त हो गया है. □

चुनाव-यज्ञ

• कुंजबिहारी मिश्र

रामचंद्रजी अपने प्रचार विभाग में हनुमानजी के साथ बैठे थे, कि भरत जी दौड़े-दौड़े आये और हांफते हुए बोले—सुना भाई साहब! उस धोबी के बच्चे ने सीताजी पर क्या-क्या इल्जाम लगाये हैं? ओह, अब क्या होगा? चुनाव में सिर्फ दो महीने बाकी हैं और वह आपकी इमेज बिगाड़ने पर तुला है. लगता है यह सब विरोधी पार्टी वालों की करतूत है. आप आज्ञा दीजिए भाई साहब, मैं उस पर देशद्रोही होने का इल्जाम लगा कर, सीखचों के पीछे बंद करवा दूं.

—नहीं भरत, जनतंत्र में ऐसा करना ठीक नहीं. विचारमग्न रामचंद्रजी बोले—इस तरह हमारी पब्लिक इमेज एकदम बिगड़ जायेगी. फिर दूसरे ही क्षण उछलते हुए बोले — आइडिया! भरत, तुम लक्ष्मण से बोलो कि वह सीता को जंगल में छोड़ आये. और हनुमान, तुम हमारे विशेष दूत बाल्मीकि को सीता की अगवानी और उसके लिए विशेष प्रबंध करने के लिए कह आओ. और भरत, तुम यह समाचार सभी अखबारों, पत्रिकाओं में छपवा दो कि हमने एक मामूली व्यक्ति के संदेह-मात्र से कितना बड़ा बलिदान किया है! देखना, इस तरह हमारी कैसी इमेज बनती है. बेवकूफ विरोधी पार्टी वालों ने अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारी है.

इस तरह चुनाव-यज्ञ बिना सीता के ही संपन्न हुआ. और रामचंद्रजी की पार्टी को इस कदर बहुमत मिला कि एक भी विरोधी सामने नहीं टिक पाया.

मंत्रि-मंडल बनते ही, उन्होंने एक विशेष विमान भेज कर सीता को वापस बुलवा लिया. □

अपाहिज

• किशोर जाधव

अभी तक शुशी आयी न थी.

दिन भर की कड़ी गर्मी के बाद ठंडी हवा चलने लगी थी. पर इसमें भी हलकी कातिलता थी. लकड़ी के सहारे वे उठ खड़े हुए और डग-मग चलते हुए शुशी के घर तक पहुंचे. धुंधले प्रकाश में रह-रहकर आसपास देखने का प्रयत्न करते रहे.

—शुशी... बेटा... शुशी...

क्षणभर, बंद दरवाजे के सामने वे विचार करते खड़े रहे और धीरे-धीरे थरथराते कदमों से वापस मुड़े. सुबह से शुशी दिखाई दी न थी. और स्वयं कई देर तक बाहर चुपचाप बैठे रहे थे. घर में दाखिल होते ही, उनके सामने और सामने तैरा करती धुंधलाहट एकाएक हिल उठी. दीवार पर हाथ रखते हुए, वे थम गये. 'कुछ तो बोलना चाहिये न .' वे बड़बड़ाये. आज वे कुछ भी बोल नहीं पाये थे. कुछ भी नहीं. अब, दिन भर के मौन की गहराई उन्हें लगने लगी. उसके बोझ में से छूटने का प्रयत्न करते हुए, एक दीर्घ निःश्वास निकल गया. उन्हें यही असह्य लगता था – उनकी पत्नी का कुढ़न भरा मौन. पर उसका स्वभाव ही ऐसा था. जब देखो तब, कुछ न कुछ इधर-उधर का काम करती रहती है – चुपचाप . देखकर कभी-कभी वह उत्तेजित हो उठते.तब वह उनके सामने टुकुर-टुकुर देखा करती. और... वैसे तो उन्होंने भी समझ पकड़ी तभी से, उस मौन को पहचानते थे– नाम लिया था. और उसके कारा श्वास के साथ अपना श्वांस मिलाकर जीवित थे. पर कुछ तो बोलना ही चाहिये न! उसे कुछ तो कहना चाहिये न! रात में, शांति के क्षण में, एक बार उन्होंने पत्नी को आवाज दी. पहले तो अंधकार की सलवटों का कोमल घिस्सा सुनाई दिया. कोने में, बिस्तर पर वे बीड़ी का दम मारते रहे.खयाल था कि उनके पास में आकर वह मौन-मौन खड़ी हुई थी.

—अपना हाथ ला तो!

वे आवेश में आ गये. और सामने से लंबे किये हुए हाथ पर सुलगती बीड़ी चिपका दी. अंधकार में सिसकारी सरक पड़ी. और वे जोर से हंसे.

—और क्या हो सकता था तुमसे? यही ना...

—तो और क्या करूं... बोल? हं...उत्तेजना में वे बोले. और एकाएक चुप हो गये. उस हाड़-हाड़ में उतर गयी भारी-भरकम चुप्पी के बीच, उसके बाद घंटों तक गुनगुन बैठकर बीड़ियां फूंका करते. इस कारण खांसी ने जोर पकड़ लिया था. उसका खयाल आते ही वे तेजी से बाहर निकले. रास्ते पर त्वरा से दौड़े जा रहे ट्रक के चक्के चिचिया उठे. उन्हें कुछ बेचैनी हो आयी. खांसी उठती थी तब चौड़े हो जाते दोनों हाथों की तनी हुई अंगुलियों को जमीन पर टिका रखनी पड़ती थी. उस समय, दुहरे हो जाते सारे शरीर में भयंकर जलन हो उठती थी. गले की नसें तन आती थीं और सांस टूट-टूट जाता हो, ऐसा लगाता था. पर यह भी आदत हो गयी थी. तभी सामने से किसी के आने का अहसास हुआ. वे रुके. कुछ क्षण बाद देखा तो, शुशी की माँ काम पर से लौट रही थी.

—शुशी को देखा, आते...? वे बोले.

—नहीं. क्यों, आपके यहां नहीं? कहते, उसके फुफकारते पैर दरवाजे की ओर मुड़े. साड़ी तले ढके हुए पेट का आगे तनता भाग थोड़ा-सा दिखाई दिया. यहीं कहीं खेलती होगी...

सुनकर, अनमनेपन से उन्होंने कुछ कहने का प्रयत्न किया. आखिर, दूर की जलती बत्ती के कारण अस्थिर हो उठी शाम की परछाइयों में वे आगे बढ़े. खांसी का दौर न आए तो ठीक, उन्होंने सोचा. क्या ...? हं...? मजाक! पर आज फटकी ही नहीं, इस ओर... मन ही मन फुसफुसाये. पास के छप्पर में से मजदूरों की बातचीत सुनाई दी. और पानी के हौज के सामने वे ठिठक गये.

[illegible] गया. रास्ते पर नयी कोठरियां बन रही थीं. वहां शुशी कभी छिप जाती थी. तब वे यहां, आसपास चक्कर लगाते– शुशी की खिलखिलाती हंसी को पकड़ लेते. और इस तरह देर तक मनोरंजन चलता. सोचते हुए, स्फूर्ति से उन्होंने कदम उठाये. एक के बाद एक कोठरी में झुकते हुए जोर से आवाज दी—शुशी बेटा. . . शुशी! निस्तब्धता में उनको केवल लकड़ी के ठेके ही सुनाई देते रहे. एकाएक भान हो आया. लकड़ी को झेलकर, उनके साथ ही साथ कोई चलता हो, ऐसा लगा. वे घबराये. कौन है? कौन है? पीछे मुड़ कर देखा. ईंट पर पैर पड़ते ही, वे लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बच गये. तब लकड़ी को नीचे से पकड़कर, कोई जैसे उनको नीचे, अथाह गहराई में बलपूर्वक खींचता जाता हो, ऐसा लगा. और यों, वे जैसे किसी खाली बावड़ी में उतरते—खिंचते जाते थे. शु. . . शी. . . उनका फटा हुआ स्वर चारों ओर गूंजकर शून्य में डूब गया. भयविह्वल दशा में वे ठहर गये. और दूर-दूर से, बत्ती के प्रकाश में, भागदौड़ करती छोटी-छोटी आकृतियों की किलकारियां सुनाई दीं. उस दिशा को झेलकर बाहर आने के लिए प्रयत्न करते, हांफते, तेज कदमों से, मैदान के पास आये. बत्ती के खंभे को पकड़कर, उसके आसपास चकफेरी खाते हुए बच्चे, हल्ला-गुल्ला मचा रहे थे. फिर वहां से बिखरकर, यहां-वहां उछलते हुए, चारों ओर घूम रहे थे. आंदोलित हो उठी हवा में, उस ओर कई देर तक, अनिमेष दृष्टि से ताकते रहे.

—शुशी को खोजते हैं? पहले तो वे चौंके. सामने बिनु खड़ा था. शुशी घर गयी, आपके वहां. कहकर, वह छलांग मारता, तैरते प्रकाश में दूर सरक गया.

उठकर वे घर की ओर मुड़े. वहां पहुंचकर देखा तो कोई न था.

—छोक. . . रे. हंसे. खी. . .खीं. . .खीं. . .खूब है, छोक. . .रे.

बीड़ी सुलगाकर, दीवार के सहारे टिककर बैठ गये. जलते धुएं को, सांस के साथ घोंटकर, मुंह से शर्राटे की आवाज निकाली. और एकाएक एक तीखी चीख सुनाई पड़ी—शुशी के घर की ओर से, शुशी के माता-पिता लड़ रहे थे. और अचानक शुशी दिखाई दी. नन्हें-नन्हें कदम भरती, दोनों ओर सिर झुलाती, वहां घर के सामने आयी. क्षण भर सहमकर खड़ी रह गयी. और घबराहट में वहां से वह भाग छूटी.

—शुशी. . . वे बोले.

आते ही, उनकी गोद में वह छिप गयी.

किशोर जाधव (जन्म : १९३८) गुजराती की नयी पीढ़ी के सशक्त कथाकार हैं. दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. तीसरा प्रेस में है. १९६३ से नागालैंड के रिहाइशी और स्टेट कमिश्नर के निजी सचिव.

—कहां गयी थी, बेटा तू? उसके सिर पर हाथ फेरा.

—हम खेलते थे. . . सब.

—पर अभी तक क्या खेलते थे ?

—बताऊं. . . ? उत्सुकतापूर्वक वह उठ खड़ी हुई. बताऊं. . . . हूं. . . अं. . . . याद करती हो ऐसे, निचले होंठ पर अंगुली दबा रखी. 'धूप छांव. . . और हर्षावेश में नाच उठते हुए, खिलखिलाकर हंस पड़ी. कांतु है न, वह जाता था. . . भागता. . . हमारे चितकबरे कुत्ते ने उसकी कमीज पीछे से काट खाई. . . मजा आ गया. . .

—यहां तो तू सारे दिन नहीं दिखाई दी.

—आप मजाक नहीं करते जाइये. . . रूठते हुए वह बोली.

—अच्छा . . . बता देखें. . . शुशी की मां किस तरह चलती है? शुशी ने, दोनों हाथों का पेट के आगे लंबा वर्तुलाकार बनाया और लगभग घिसटते पैरों से चलने लगी. इसके साथ ही दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े. धुंए के कारण उनकी आंखों में पानी बढ़ आया.

—नहीं. . .आप मजाक करिये. . .कहकर शुशी पीठ पीछे से उनके गले टंग गयी.

—पर भई, तू छोड़ तो सही. गले को भींचते शुशी के दोनों हाथों को अलग करने का उन्होंने यत्न किया.

—नहीं. . .नहीं. . .नहीं छोड़ने वाली. . .

उन्हें घुटन लगने लगी.आंखों के आगे अंधेरा आने लगा. पर. . . प. . .भई. . .सांस घुटती हो ऐसा लगा. प. . .र. . .छो...छटपटाहट में, शुशी के हाथ पर सुलगती बीड़ी चिपक गयी. और चीख मारती शुशी वहां से भागी. क्षण भर वे स्तब्ध वहां बैठे रहे. आखिर धीरे-धीरे शुशी के घर की ओर चल पड़े. उसकी मां आंगन में अभी भी दबी-दबी सिसकियां भरती, कराहती पड़ी थी. एकाएक मन में कुछ चिंता व्याप्त हो आयी. इस समय तो वह नींद में होगी, सोचकर तेजी से लौट गये.

घर में दाखिल होते अचकचाये. चारों ओर कोई अनजान-सी अराजकता फैल गयी हो, ऐसा लगा. और वे अंधेरे सन्नाटे में, पहली बार भयभीत हो उठे. वहां कोई न था. उनकी पत्नी न थीं. शुशी न थी. अभी शुशी होती तो ठीक रहता, उन्होंने सोचा. □□□

कमिश्नर के निजी सहायक, कोहिमा (नागालैंड)

फ़ुटपाथ के किनारे पर बैठे सदरू को आज पहली बार एहसास होता है. . . बुजदिल, मैं बुजदिल हूं.

हो: हो: हो: हो!

सुबह की धूप में दम मारते गंजेड़ी 'साला छक्का कहीं का' कह कर एक साथ हंस देते हैं.

गंजेड़ियों को कब्रिस्तान की दीवार का सहारा है—दीवार के पीछे सैकड़ों कब्रें हैं. कच्ची मिट्टी की, संगमरमर की, टूटी हुई, धंसी हुई, गली हुई. . .

कब्रें दीवार को ताक रही हैं. दीवार गंजेड़ियों की पीठ को. गंजेड़ी सदरू की पीठ को. सदरू सामने के फुटपाथ को. सामने का फुटपाथ अपनी छाती पर खड़ी 'चाल' को. चाल सदरू के लटके हुए चेहरे को.

यहां सब कुछ एक-दूसरे में घुल-मिल गया है. यहां, जीने के लिए एक-दूसरे में घुल-मिल जाना जरूरी है. यहां तुम्हें अकेले मौत भी नहीं मिल सकती, सदरू सोचता है. मरना आसान है. आत्महत्या कर लेना कोई मुश्किल काम नहीं. पर अकेले हो तब. यहां तो पीछे कतार खड़ी है. मां, कुंवारी बहन, बीवी, नन्हें-नन्हें बच्चे, दादी. . .ये सब सदरू के साथ चल पड़े तो? वे मौतें मामूली नहीं होंगी. एक तरह से देखा जाये तो वे मौतें खास भी नहीं होंगी.

—ए सदरू!

वह पलट कर देखता है.

—यहां आके बैठ न! आज हम तेरेकू मुफत में दम मारने को देगा.

सदरू की बायीं ओर बसस्टॉप है. सदरू और बसस्टॉप के बीच घनी छाया वाला पेड़ है. मौसम सूखा है. दो कुली बसस्टॉप के शेड में चारपाई डाले बैठे हैं.

मुसाफिरों ने शेड से बाहर क्यू लगा ली है. बस आती है. रुकती है. घंटी बजती है. घरघराहट होती है. बस दौड़ जाती है. मुसाफिर घटते नहीं. मुसाफिर बढ़ते नहीं. सदरू को लगा, मुसाफिर कम जरूर होते हैं, पर घटते नहीं. उसे यह भी एहसास हुआ कि नये मुसाफिर क्यू में आ खड़े होते हैं, पर मुसाफिर बढ़ते नहीं.

सामने की चाल की बाल्कनी में खड़ी एक बेवा टूथब्रश से दांत साफ कर रही है. सदरू मन-ही-मन हंस देता है. पागल तो नहीं हो गया? सबेरे दस के बाद दांत साफ करना क्या हंसी की बात होती है! पैडर रोड और अल्टामाउंट रोड पर तो दिन के दो बजे के बाद भी ब्रशिंग होता है.

—साली चालू है. . .पहले शब्द आते हैं. उनके पीछे तुरंत ही मुक्त हास्य का बवंडर आता है. बवंडर सदरू के खुले अंगों को छूते हुए सड़क पार कर जाता है. सदरू मुड़ कर पीछे देखता है. गंजेड़ी तीन हैं. चिलम एक. एक के बाद एक दम मारते गंजेड़ी लाजवाब जोक्स छेड़ रहे हैं. इन जोक्स का विषय है—औरत. इन जोक्स का टेस्ट है—चुलबुला. इनकी कैटेगरी है– मांसाहारी. यहां मजाक के अनेक पहलू होते हैं.

इन गंजेड़ियों ने कल ही सदरू को एक इंपोर्टेड जोक सुनाया था. पल भर को जी बहल गया था. आज सोचने पर उसे लगा. . .वह जोक, जोक न था. कुत्ते के गोश्त का सींक कबाब था.

सदरू खामोश बैठा रहता है. सोचता रहता है. . .बेकारी के ये दिन. . .गर्दिश के ये बादल न जाने कब बिखरेंगे. अचानक सदरू की आंखों के क्षेत्र में एक मदारी आता है. सामने की सड़क पर खेल शुरू करने से पहले वह अपनी दूकान सजा रहा है. टोकरी में से सांप निकलते हुए देख कर दो बच्चे पीछे हट जाते हैं. और तीन आ कर उसके साथ घुल-मिल जाते हैं. सदरू की नजर मदारी के सिर पर से उछल कर सामने की चाल पर चढ़ जाती है.

पांचवी मंजिल की मटमैली खिड़की से साड़ी झूल रही है. दूसरी मंजिल की ग्रिल वाली बाल्कनी में बैठा कोई बूढ़ा सो गया है. तीसरी मंजिल पर एक लड़की खिड़की के परदे डाल रही है.

सदरू को फिर हंसी आ जाती है. अबे, पागल तो नहीं हो गया? दोपहर के बारह बजे परदे गिराना क्या हंसने की बात होती है? पैडर रोड और अल्टामाउंट रोड पर तो अकसर दिन में ही परदे डाले जाते हैं.

सदरू की नजर पहली मंजिल की बाल्कनी पर टिक जाती है. कहां गयी? वह बेवा कहां गयी? शायद. . .दांत साफ करने के बाद नाश्ता कर रही हो तो हैरानी की कोई बात नहीं. पर. . .पर यह तो लंच का समय है! सदरू सोचने पर मजबूर होता है. लंच के वक्त नाश्ता और डिनर के समय लंच. अजीब, सचमुच अजीब! इस साले भिंडी बाजार और पैडर रोड में ज्यादा फर्क नहीं रहा. शायद बाजार और रोड में हो! आदमी और आदमी में तो कतई नहीं है.

● भगवानदास रूपानी

पेट पर हाथ फेरते सदरू मदारी के खेल में मन पिरोता है. मदारी भीड़ के दायरे के बीच कहीं खड़ा है. उसकी आवाज इस फुटपाथ तक सुनायी पड़ती है. उसकी डुगडुगी की आवाज सुनायी पड़ती है. कभी डुगडुगी वाला हाथ ऊंचा होने पर अनेक सिरों के बीच उसे हाथ का एक हिस्सा दिखायी पड़ जाता है.

सड़क पार कर सदरू दायरे में घुल-मिल जाता है.

—छोकरा, तुम्हारा भाई कितना है?

—पांच

—छोकरा, तुम्हारा बहन कितना है?

—दस.

—छोकरा, तुम्हारा बाप कितना है?...

वही सालों पुराना जोक. फिर भी सब इसका आनंद लेते हैं. दायरा खी: खी: खी: कर हंस देता है. छोकरे का कॉमेडी चेहरा देख कर सदरू कुछ पलों के लिए अपने दुख भूल जाता है.

—बच्चा लोग! एक बार जरा जोर से ताली बजाओ. जो ताली नहीं बजायेगा, उसको उसके भगवान का कसम.

तालियों की गड़गड़ाहट.

धीरे-धीरे सड़क पार कर वह अपनी जगह आ जाता है. वही किनारा फुटपाथ का, वही छाया छटादार पेड़ की, वही गंजेड़ी, वही बसस्टाप, वही कब्रिस्तान की दीवार, वही मुर्दे. खेल खतम. पैसा हजम.

मदारी अपनी दूकान समेट कर चल देता है. खाली हुई जगह पर एक तांगा आ कर रुक जाता है. हाथ में चाबुक थामे बूढ़ा तांगे-वाला नीचे कूद पड़ता है. घोड़े के आगे कुछ सूखी घास डालता है और सड़क पार कर सदरू के पीछे बैठे गंजेड़ियों में घुल-मिल जाता है.

सूरज सिर पर से गुजर रहा है. गंजेड़ी दीवार का सहारा छोड़ कर बसस्टाप के शेड में आ जाते हैं. एक चारपाई यहां पहले से ही खाली पड़ी है. कुछ मिनटों पहले यह चारपाई खाली न थी. इस पर दो कुली बैठे ख्वाब देख रहे थे. रोटी के चक्कर में वे कहीं चलते बने हैं. गंजेड़ियों ने अब चारपाई पर कब्जा कर लिया है. इनके जाने पर कोई तीसरा व्यक्ति इस पर कब्जा जमा लेगा. रात को कोई चौथा आदमी इस पर सोयेगा. कमबख्त, यह चारपाई चारपाई है या रंडी? सदरू इतना जानता है... रंडी हलकट नहीं होती. बाकी जब साली इंटरनैशनल रांडें होती हैं.

—ए सदरू!

—परेशान मत कर, यार!

—कुछ खायेगा या यों ही भूखा बैठा रहेगा?

इस प्रश्न का उत्तर उसके पास नहीं है. उदास नजरों से वह घास खाते हुए घोड़े को देख रहा है.

—साले, अब भी नहीं समझेगा तो तबाह हो जायेगा.

गंजेड़ियों की बात सच नहीं. दूसरे ही पल सदरू को लगा... गंजेड़ियों की बात झूठ भी नहीं. तबाही की राह पर वह दूर तक निकल गया है.

बाल्कनी में अपने लंबे बाल झटकती बेवा की साड़ी पर सदरू की नजर फिर एक बार ठहरती है. वह सोच रहा है... साड़ी सिल्क की होगी! या फिर नाइलोन की! चिकनी जरूर होगी. जगमगाती है. काफी महंगी होगी.

यह साड़ी पेडर रोड या अल्टामाउंट रोड की है. वहां से यहां तक आयी होगी. शायद यह बेवा साड़ी लेने वहां तक गयी होगी. दोनों बातें संभव हैं. संभव इसलिए कि पेडर रोड तथा अल्टामाउंट रोड के पास सुलेमान का खजाना है. बेवा के पास क्लिओ-पेट्रा की जवानी. और जवानी खजाने का मुख फेर सकती है.

नयी-नयी शादी होने पर सदरू की बीवी ने ऐसी ही ख्वाब-सी एक साड़ी की प्यार भरी फरमाइश की थी. फिर खीझ कर. फिर गुस्से से. फिर झगड़ कर. और अंत में यह मामूली फरमाइश रोज-मर्रा के झगड़ों में दफन हो गयी थी.

बालों के साथ सांवले बदन को भी झटका देती हुई बेवा अंदर चली जाती है. सदरू हथेली से हथेली मसलता है. हथेली में देखता है. रेखाओं की उलझन देखता है. सब कुछ स्पष्ट है. जीने के लिए कोई नया काम ढूंढना जरूरी है. नया काम... वह काम कुत्ते के गोश्त के सीक कबाब-सा भी हो सकता है.

इस बार उसकी नजर विधवा की बाल्कनी तक पहुंचे, इससे पहले ही कब्रिस्तान के दरवाजे तक पहुंच जाती है. किसी श्रीमंत मुसलमान का जनाजा है. काफी भीड़ है. मुर्दा, जनाजा, मुर्दे के नाते-रिश्तेदार, किराये के कंधा देने वाले, सब के अंदर चले जाने पर सदरू की लड़खड़ाती नजर लौट आती है. वह हौले से खड़ा होता है. सड़क पार कर चाल के प्रवेश तक आता है. सीढ़ियों पर एक नजर फैलाता है. चढ़ जाऊं... जाऊं... जाऊं... जाऊं?

भीतर की आवाजें बढ़ती जा रही हैं. साथ ही गूंज भी तेजी से बढ़ती जाती है. सदरू दोनों हाथों के बीच अपना सिर दबा लेता है. पैर पीछे की ओर खिसकने लगते हैं. सूरज डूबने की कोशिश में लगा है. परछाइयां लंबी होती जा रही हैं.

गंजेड़ी अंगड़ाई के साथ खड़े हो गये हैं. ताश के पत्ते चारपाई पर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं. बूढ़ा तांगे वाला पत्ते इकट्ठे कर रहा है. एक गंजेड़ी नुक्कड़ के ईरानी होटल तक चला गया है. बाकी के दो आपस में गुफ्तगू करते हुए वहीं खड़े हैं.

—मेरी बात मान ले, यार! आज मेंडी से दूआ आयेगा.

—ख्वाब देखा क्या!

—यो देख!

कब्रिस्तान की दीवार से टिका एक पागल बैठा है. उसका मुंह खुला है. यानी मेंडी और दूआ. पागल के फैले पैरों के बीच दो फुट का फासला है.

—और... अगर मेंडी से दुआ नहीं आया तो?

—मेरे मुंह में पेशाब कर देना.

अचानक सदरू के कंधे पर उस गंजेड़ी का हाथ टिकता है. सदरू सिर उठा कर उसके चहरे में देखता है.

—जिंदगी बनानी है तुझे?

सदरू एकटक देख रहा है.

—अबे जवाब तो दे!

सदरू 'हां' नहीं कहता. सदरू 'ना' नहीं कहता. बस, खड़ा हो कर सड़क पार कर जाता है. □□□

भूलाभाई मेमोरियल इंस्टीट्यूट,
आकाशगंगा, वार्डन रोड, बंबई–३६

आबिद सुरती (जन्म : ५ मई, १९३५) गुजराती के प्रख्यात युवक कथाकार हैं और हिंदी में भी कभी-कभी लिखते हैं. हिंदी में इनकी चार किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं. इन्होंने छल-कपट और गैरइनसाफी के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में अपनी कलम को हथियार बनाया है. लेखक के साथ-साथ यह जाने-माने चित्रकार भी हैं.

सारिका के लिए विशेष : बारह कहानियों के क्रम में

भगवतीचरण वर्मा की अंतिम कहानी

मोर्चाबंदी

यह अपने ढंग का अनोखा युद्ध है और इस युद्ध की अपने ढंग की अनोखी मोर्चाबंदी है.

युद्ध क्षेत्र है लखनऊ की छोटी-सी संजीवन कालोनी, जो प्रमुखतः छोटे-छोटे अफसरों, राजकर्मचारियों एवं व्यापारियों की बस्ती है. पढ़े-लिखे संपन्न लोग, ऊपर से आधुनिक युग के प्रगतिशील, लेकिन अंदर से बड़े धार्मिक, असीम आस्था और विश्वास रखने वाले. बुद्धिमत्ता, तिकड़म, सरलता और दांव-पेंच का विचित्र योग.

यह युद्ध कैसे ठन गया, किन लोगों में ठन गया, इसे समझने के पहले संजीवन कालोनी का इतिहास जान लेना आवश्यक होगा.

इस प्रदेश की राजधानी इलाहाबाद से हट कर लखनऊ आयी थी, घुमरा तल्लुके के ताल्लुकेदार राजा चंद्रभूषण सिंह ने गोमती के किनारे पांच एकड़ जमीन खरीद कर उसके बीचों बीच एक निहायत शानदार कोठी बनवायी थी जिसके चारों ओर फलों और फूलों के बाग और लंबे-चौड़े लॉन थे.

राजा साहेब शौकीन-मिजाज आदमी थे, उनके पास हाथी थे, घोड़े थे; फिटन थी, मोटर थी— दर्जनों नौकर चाकर थे. इस कोठी का नाम का था घुमरा हाउस, और घुमरा हाउस के चारों ओर एक ऊंची चहार दीवार थी.

तै बात है इन लंबे खर्चों के कारण राजा चंद्रभूषण सिंह करीब-करीब दिवालिये हो गये थे. उनके मरने के बाद जब रियासत उनके पुत्र सूर्यभान सिंह को मिली, उन्होंने खर्चों में कटौती की. हाथी-घोड़े बेच कर कर्ज चुकाया गया, घुमरा हाउस के नौकर-चाकर रियासत भेज दिये गये और घुमरा हाउस में ताला लटका दिया गया. सूर्यभान सिंह संयत आदमी थे, समय की धारा वह पहचानते थे. उन्होंने अपने पुत्रों को शिक्षा दिलायी.

सन १९४८ में जमींदारी उन्मूलन एक्ट के बाद ताल्लुकेदारी समाप्त हो गयी. जमींदारी समाप्त होने के सदमे से चार-पांच वर्षों में ही सूर्यभान सिंह की मृत्यु हो गयी. उनके दो पुत्र थे, बड़े का नाम सिंहासन सिंह, छोटे का नाम संजीवन सिंह. सिंहासन सिंह ने कृषि विद्यालय का डिप्लोमा प्राप्त किया, और वह राज का उत्तराधिकारी होने के नाते अपना डेढ़ हजार एकड़ का फार्म संभालता हुआ घुमरा के महल में रहने लगा. छोटे लड़के संजीवन सिंह ने लखनऊ विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम. ए. पास किया, और लखनऊ के एक डिग्री कालेज में लेक्चरार हो गया.

लाल संजीवन सिंह लंबे-से रौबदार आदमी थे, शांत और गंभीर. किसी कदर कलाप्रेमी. म्यूजिक कालेज में उन्होंने कुछ दिन संगीत का अभ्यास किया, मुशायरों और कवि-सम्मेलनों में उन्हें बेहद दिलचस्पी थी. राजा सूर्यभान सिंह ने लखनऊ वाला घुमरा हाउस अपने छोटे पुत्र के नाम कर दिया था, और लाल संजीवन सिंह संतुष्ट थे. लेकिन उनके गंभीर और शांत व्यक्तित्व के भीतर छिपा हुआ एक अत्यंत जिद्दी और उग्र व्यक्तित्व भी था जो प्रकट होते ही विस्फोट का रूप धारण कर लेता था. शायद इसीलिए लाल संजीवन सिंह ने अपनी शादी करने से इंकार कर दिया था, और राजा सूर्यभान सिंह अपने इस छोटे पुत्र से इस कदर डरते थे कि उन्होंने संजीवन सिंह पर विवाह करने के लिए अधिक जोर भी नहीं दिया. लाल संजीवन ने घुमरा हाउस को फिर से आबाद करने की कोशिश की, लेकिन अकेले आदमी— साथ में रामसिंह रावत, उनका खिदमतगार, उनका अंगरक्षक, उनका रसोइया— यानी उनकी गृहस्थी का मालिक. कहावत है कि बिन घरनी घर भूत का डेरा, तो एक-एक कर घुमरा हाउस के कमरे गिरते गये और लाल संजीवन सिंह उसका मलबा बेचते रहे.

कामकाज ठीक तरह से चल रहा था कि एक दिन कालेज के प्रिंसिपल से उनकी कुछ कहा सुनी हो गयी. कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर जैकब तानाशाह किस्म के आदमी थे. गाली बकने और धौंस जमाने में माहिर. चारों ओर उनकी धाक थी. कहासुनी ने उग्र रूप धारण किया और मिस्टर जैकब ने आदत के अनुसार लाल संजीवन सिंह को गाली दी. उसे लाल साहब के अंदर अनेक पर्तों में दबे हुए विस्फोटक व्यक्तित्व का पता नहीं था. और तभी लाल साहब ने आव देखा न ताव, मिस्टर जैकब को धरपटका और उनकी इतनी पिटाई की कि चार दिन तक मिस्टर जैकब की मरहम पट्टी होती रही. तहलका मच गया कालेज में, और लाल साहब कालेज से बर्खास्त कर दिये गये.

कालेज की नौकरी छोड़ कर उन्होंने अपने बंगले में संगीत विद्यालय स्थापित करने का प्रयत्न किया, लेकिन एक तो बंगला शहर से दूर फिर मिरासियों से वह आजिज आ गये, विद्यालय बंद हो गया. बड़े भाई सिंहासन सिंह समय-समय पर उनकी थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता कर देते थे, लेकिन किसी पर अवलंबित रहना उन्हें अच्छा न लगता था. सहसा उनकी मुलाकात बाबू चिरंजीलाल बंसल से हो गयी जो ओवरसियरी के लंबे अनुभव के बाद तीन-चार साल तक पी. डब्ल्यू. डी. के असिस्टेंट इंजीनियर का पद सुशोभित करने के बाद रिटायर हो रहे थे. निहायत घिसे हुए आदमी, तो उन्होंने लाल साहब को घुमरा हाउस के प्लाट बना कर बेचने की सलाह दी. उन्होंने इस योजना का ब्ल्यू-प्रिंट बना दिया. चालीस प्लाट बने, हरेक प्लाट की कीमत छह हजार रुपया. दो लाख चालीस हजार रुपयों में दो लाख रुपये लाल साहेब ने बैंक में जमा कर दिये, चालीस हजार रुपयों में इस कालोनी के एक किनारे चार कमरों का आधुनिक ढंग का एक काटेज बनवा लिया और उस कालोनी का नाम पड़ा संजीवन कालोनी. आउट हाउसेज तुड़वा दिये गये थे, पुराने नौकरों में चार वहां रह रहे थे, तो दो-दो कोठरियों के चार मकान बना कर उन पुराने नौकरों को उनकी सेवाओं के पुरस्कार में दिये गये. लेकिन उस समय न नौकरों के दिमाग में यह बात आयी और न लाल साहब के दिमाग में यह बात आयी कि उन कोठरियों की लिखा-पढ़ी हो जाये. दान तो दान ठहरा.

संजीवन कालोनी आदर्श कालोनी थी.सभी मध्यवर्ग के आदमी, शांतिप्रिय, धार्मिक और आस्थावान. कहीं कोई टंटा-बखेड़ा नहीं, आपस में भ्रातृभाव. बाबू चिरंजीलाल बंसल उस कालोनी के मुखिया, सरपंच सभी कुछ थे. और लाल संजीवन सिंह राजा की तरह अपने बंगले में रहते थे. उनके यहां संगीत पार्टियां जमती थीं. कवि-सम्मेलन या मुशायरे होते थे और लाल संजीवन सिंह की जिंदगी मौज में बीत रही थी. संजीवन कालोनी को बने दस वर्ष से अधिक बीत गये, लेकिन किसी को लाल सिंह के चरित्र के विस्फोटक पहलू का पता नहीं चल पाया.

एक कहावत है— ना जाने का भेस में नारायण मिल जायें. तो उस कहावत के अनुसार लाल साहब के चरित्र का विस्फोटक रूप एक अति साधारण घटना को ले कर प्रकट हुआ.

बाबू चिरंजीलाल को कालोनी वाले इंजीनियर बाबू कहते थे. बड़े रौब-दाब के आदमी, उम्र कोई पैंसठ वर्ष, लेकिन हाव-भाव में, चाल-ढाल में तथा व्यवहार में नौजवानों का उत्साह. तो उस दिन उनके पुत्र रामबिहारी की मंगनी आयी थी. दूसरे दिन सत्यनारायण की कथा हुई, और सत्यनारायण की कथा में कालोनी के निवासियों को निमंत्रण था. लाल संजीवन सिंह को बाबू चिरंजीलाल स्वयं जा कर आमंत्रित कर आये थे.

सत्यनारायण की कथा बांच रहे थे, चंद्रिकाप्रसाद अवस्थी उर्फ चंद्रिका महाराज. चंद्रिका महाराज राजा सूर्यभान सिंह के पुरोहित शिवाधार अवस्थी के पुत्र थे और लाल संजीवन सिंह ने अपने आउट हाउस में बना दो कोठरियों वाला एक हिस्सा मुफ्त दे रखा था. आजीविका के लिए चंद्रिका महाराज स्टेट बैंक में चपरासी की सीढ़ियां पार करते हुए जमादार बन गये थे. अवस्था कोई पचासी वर्ष की, बड़ी-बड़ी घनी मूछें चेहरे का रौब बढ़ा रही थीं. हेड जमादार बनने की जितनी योग्यताएं होनी चाहिए, उनमें सब थीं. कानून का अधकचरा ज्ञान, जिद पर अड़ जाना, यूनियन के बल पर अपनी मांगें मनवा लेना, जनतंत्र के इस युग में बड़े-बड़े अफसरों को चुनौती देना आदि-आदि.

मोटी और भद्दी आवाज जो लगातार गाली-गलौज करने के कारण और भी भद्दी और मोटी हो गयी थी, मिडल स्कूल तक पढ़ी हिंदी और संस्कृत का कच्चा-पक्का ज्ञान, लेकिन कथा बांचने में सिद्धहस्त थे. जैसे-तैसे उठते-बैठते, घूमते-फिरते लाल संजीवन सिंह कथा के अंत तक बैठे रहे, लेकिन कथा समाप्त होने के बाद बाबू चिरंजीलाल बंसल ने खड़े हो कर मध्यवर्गीय घरों में प्रचलित 'जय जगदीश हरे' की आरती आरंभ की. और देखा-देखी वहां उपस्थित पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों ने खड़े हो कर आरती के कीर्तन में योग दिया. लाल संजीवन सिंह को भी शिष्टतावश हाथ जोड़ कर खड़ा होना पड़ा.

और तभी लाल संजीवन सिंह को अनुभव हुआ कि वह किसी ऐसे माहौल में आ फंसे हों जहां हरेक व्यक्ति चीख रहा था, चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष हो. कहीं भैंस रंभा रही थी, कहीं कौवा कांव-कांव कर रहा था, कहीं गधा रेंक रहा था, कहीं बकरी मिमिया रही थी. उन्हें लगा कि उनके कान के परदे छिलने लगे हैं और जल्दी ही वे पर्दे फट भी जायेंगे. घबरा कर उन्होंने इधर-उधर देखा और
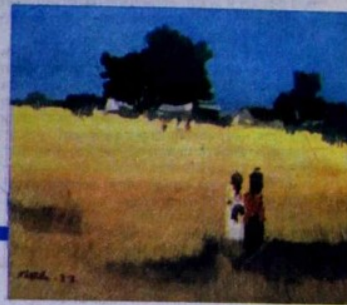
फिर घूम कर वह तेजी के साथ वहां से भागे. उनका भागना किसी ने देखा, किसी ने नहीं देखा. लेकिन इस आरती-गायन में लोग इस कदर व्यस्त थे कि किसी ने उन्हें रोका नहीं.

आरती वाला कीर्तन समाप्त हुआ, और प्रसाद बंटना आरंभ हुआ.अब बाबू चिरंजीलाल को यह भास हुआ कि संजीवन सिंह बिना प्रसाद लिये ही चले गये हैं. प्रसाद जैसा एक संपन्न वैश्यकुलीन इंजीनियर के घर का मंगनी के बाद वाली कथा का होना था,वैसा ही था. पंजीरी तो औपचारिक थी, उसके साथ एक पाव वाले दोने में खोए की मिठाइयां तथा कटे हुए फल थे. एक-एक कुल्हड़ बादाम, किशमिश और चिरौंजी पड़ा हुआ दही के साथ अधऔटे दूध का चरणामृत. सब लोगों को प्रसाद बांट कर बाबू चिरंजीलाल ने चंद्रिका महाराज से कहा— चंद्रिका महाराज, लाल साहेब तो बिना परसाद पाये चले गये.

—हां बाबू, इहां तो आखीर बखत तक रहे,बड़े ध्यान से कथा सुनिन. जब आरती गाय रहे न तबहू रहें. तौन कुछ तबियत खराब हुई गई होई, बड़कवा मनई आयें.

—राम जाने. बाबू चिरंजीलाल बोले— लेकिन सत्यनाराण बाबा का परसाद तो उन्हें मिलना चाहिए.

—हां बाबू! ई मामला कौनो मकआम! हम उनका परसाद दिये आइत आब, भुला तुमहू साथ चलो. मिजाज-पुरसी करि लेव चलिके! और चंद्रिका महाराज हंस पड़े.

एक अधसेरे दोने में प्रसाद भरवा कर बाबू चिरंजीलाल ने लिया,एक अधसेरे गिलास में चरणामृत चंद्रिका महाराज ने पकड़ा. दोनों लाल साहब के काटेज की ओर रवाना हो गये.

★ ★

लाल संजीवन सिंह बाबू चिरंजीलाल के यहां से जो भागे तो अपने ड्राइंग रूम में पहुंच कर उन्होंने दम लिया. ड्राइंग रूम का दरवाजा उन्होंने अंदर से बंद कर लिया फिर कुछ देर तक बेचैनी के साथ ड्राइंग रूममें ही चहल-कदमी करते रहे.लेकिन कीर्तन का कोलाहल उनके कानों में लगातार गूंज रहा था. एकाएक उन्हें एक खयाल आया. लपक कर उन्होंने अपने ग्रामोफोन के रिकार्डों का कैबिनेट खोला, और वैसे ही प्रसिद्ध ठुमरी गायिका मेहरुन्निसा का ठुमरी का रेकार्ड उनके हाथ में आ गया. तत्काल उन्होंने रिकार्ड रिकार्ड प्लेयर पर चढ़ा दिया, और सोफा पर इत्मीनान के साथ पैर फैला कर ठुमरी के संगीत में लय हो गये.

मुश्किल से दो-तीन मिनट ही बीते होंगे कि उनके काल बेल की घंटी बोल उठी. उठ कर उन्होंने दरवाजा खोला, दरवाजा खोलते ही प्रसाद हाथ में लिये हुए चिरंजीलाल और चंद्रिका महाराज ड्राइंग रूम में घुस आये. चरणामृत का गिलास मेज पर रखते हुए उन्होंने बाबू चिरंजीलाल से कहा— बाबू, लाल साहेब की तबीयत तो ठीकै आय. कइस मगन भाव से गाना सुन रहे आय!

बाबू चिरंजीलाल ने भी प्रसाद का दोना मेज पर रख दिया. कुछ मुसकराते हुए वह लाल साहब से बोले— मैंने तो समझा था कि आपकी तबीयत कुछ खराब हो गयी जो आप बिना कुछ कहे एकाएक चले आये. सत्यनारायण बाबा का धन्यवाद कि आप भले-चंगे हैं.

—धन्यवाद सत्यनारायण बाबा का नहीं बल्कि मेहरुन्निसा बेगम के संगीत को है जो कानों में कुछ राहत मिली.

—जी राहत मिली. मैं आपका मतलब नहीं समझा. कौन-सी तकलीफ हो गयी थी आपको? चिरंजीलाल ने पूछा.

एकाएक लाल संजीवन सिंह अपना संयम खो बैठे, गुर्राकर बोले— कान के परदे फटते-फटते बच गये. निहायत भोंड़ी आवाज में और अशुद्ध भाषा में सत्यनारायण की कथा, और उसके बाद वह कीर्तन. हद हो गयी. एक से एक मोटी, भद्दी और बेसुरी आवाजों का सम्मिश्रण.

लाल साहेब अभी अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि चंद्रिका महाराज ने तमक कर कहा— भगवान के कीर्तन से कान केर परदा फाटत आय और पतुरिया के गाना पुरखन की आत्मा तार रहे हैं.

चंद्रिका महाराज का इतना कहना था कि लाल साहेब तमक कर उठ बैठे— क्यों बे हरामजादे, गाली देता है. और इसके पहले कि लाल साहब हमला बोलें,चंद्रिकामहाराज उलटे पैर भागे. लाल साहब ने मुड़ कर चिरंजीलाल से कहा—खैरियत इसीमें है कि आप इसी समय यहां से मुंह काला करें, वरना मैं आपके हाथ-पैर तोड़ कर रख दूंगा.

चिरंजीलाल चुपचाप सर झुकाये हुए चल दिये. उनका हृदय प्रतिहिंसा से जल रहा था. इस तरह उन्हें किसीने कमरे से नहीं निकाला था. घर लौट कर उन्होंने देखा कि चंद्रिका महाराज भरे बैठे हैं. चिरंजीलाल के घर पहुंचते ही वह बोले— बाबू तुम्हारे कारण हम खून का घूट पी के रहि गयेन नाही तो चंद्रिका महाराज के हाथन आज एक हत्या हुई गई होत. तुम्हारी पद-मर्जादा केरे भी खयाल नाही कीन्हिस!

चिरंजीलाल ने दांत किटकिटाते हुए कहा— उस बदमाश ने हम लोगों का नहीं भगवान का अपमान किया है.

—नां भगवान उसे बदला लेहिएं, ऊका नष्ट करिके रख देहिएं.

चिरंजीलाल धीरे-धीरे संयत हो रहे थे. कुछ सोच कर उन्होंने कहा— भगवान खुद बदला लेने को अवतार लेंगे नहीं, दसवां कालकी अवतार जब होगा, तब होगा. इस लाल से तो बदला हमें लेना होगा, हमें!

चंद्रिका महाराज इस बात से उत्साहित नहीं हुए— बाबू, हाथ-पैर से तो हम लोग ई लाल साहब से बदला लै ना पाइब. लंबे-तड़गे आदमी. फिर उनके पास तमंचा है, राइफल है. और उनकेर खिदमतगार रामसिंह. पूर भेड़िया समझो ऊका! तौन कौनो जुगत भिड़ावैं का पड़ी, तुमही सोचो.

चिरंजीलाल कुछ देर तक सोचते रहे फिर एकाएक उछल पड़े— आ गया समझ में. बड़ा साला कलावंत बनता है. अखंड कीर्तन होना चाहिए चंद्रिका महाराज एक हफ्ते का. भगवान अपने गुणगान कराके बदला लें.

—आप कीर्तन करहियो तो लाल साहब का रूप तो आज और देख चुके आप, जान जोखिम मां समझिए लेंय.

—अरे मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं कि अपने घर में अखंड कीर्तन कराऊं.

—तो बाबू हमहूं ऐस गदहा न आन कि हम अपने घर मां कीर्तन बैठाई. नाहीं, यू ना चली.

—चलेगा तो कीर्तन ही. चिरंजीलाल बोले— ध्यान से मेरी बात सुनो. यह जो लाल साहेब के काटेज के पास छोटी-सी मढ़िया पड़ी है, उसका उद्धार होना चाहिए. तो यह लो मुझ से सौ रुपया, कालोनी वालों से चंदा करके हजार-डेढ़ हजार रुपया इकट्ठा कर लो थोड़ी बहुत टीप-टाप करके नई मूर्ति की स्थापना हो और मूर्ति की स्थापना के उपलक्ष्य में अखंड कीर्तन करा डालो. लेकिन अभी नहीं, तीन-चार महीना चुप रहो वरना यह लाल कुछ बवाल पैदा कर देगा.

—यह बाबू—का बात कहेस. रुपिया आनन-फानन इकट्ठा और अखंड कीर्तन के लिए एक-से-एक जवां मर्द आदमी बाहर से आय जइहें. मान गये न तुम्हारी बुद्धि का.

★ ★

तीन महीने बीत गये और इन तीन महीनों में यह घटना आयी गयी हो गयी. कालोनी वालों के दिन हंसी-खुशी में बीत रहे थे. और तीन महोने बाद एक दिन चंद्रिका महाराज हाथ जोड़ कर लाल साहेब के सन्मुख उपस्थित हुए— लाल साहेब, अपने पितामह की बनाई भगवान की मढ़िया टूट गयी आय तो हम सोचा कि ई केर मरम्मत हुई जाय और मूरती की स्थापनौ हुई जाय!

—हां-हां, लेकिन— लेकिन, लाल साहेब कहते-कहते रुक गये.

—अरे खरिचा की कौनो चिंता न करें लाल साहेब,मंदिर का उद्धार कारण तो कालोनी के निवासियों का धरम समझो. तौन हम कालोनी वालों से चंदा करिलीन हव. चौदह सौ रुपया हुई गये हैं. एक मंदिर उद्धार कारण कमेटी बनाय दीन है. तौन आपसे विनय आय कि आप सौ रुपया दै के डेढ़ हजार पूरा करि देव और कमेटी के अध्यक्ष बन जायं. बाकी आपके काम करैं की कौनो आवश्यकता नहीं— हम पंच करि लेइब.

लाल साहेब ने तत्काल सौ रुपए दिये, अध्यक्ष बन गये.

मंदिर की मरम्मत में चार-पांच दिन लगे. इस बीच लखनऊ

'दो बांके' और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी व्यंग्य कथाओं के लेखक भगवतीचरण वर्मा अब फिर कहानी के क्षेत्र में रचनाशील हुए हैं. आज के संदर्भों में उनका व्यंग्यकार का रूप एक बार फिर आपके सामने है. वर्मा जी 'सारिका' के लिए विशेष रूप से बारह कहानियां लिख रहे हैं, उनमें से अब तक आप ग्यारह कहानियां पढ़ चुके हैं—'सौदा हाथ से निकल गया' (अप्रैल'७४); 'क्षमायाचना' (मई'७४), 'संकट' (जून '७४), 'रंगीलेलाल तीर्थयात्री' (जुलाई '७४), 'वसीयत' (अगस्त '७४), 'खानदानी हरामजादे' (सितंबर '७४), 'समझौता' (अक्तूबर '७४), 'गनेसीलाल का रामराज' (नवंबर '७४), 'दिल का दौरा' (दिसंबर '७४) 'जबरा मारे और रोने न दे' (जनवरी '७५) और 'गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो हैं' (फरवरी '७५).

म्यूजिम के दरबान को दस रुपया दे कर चंद्रिका महाराज वहां विष्णु भगवान की एक पत्थर की मूर्ति उठा लाये, एक कुम्हार से उन्होंने इसे इस तरह रंगाया कि कोई उसे म्यूजियम वाली मूर्ति पहचान न सके. रामनवमी के दिन ठीक बारह बजे दोपहर को जब भगवान राम का जन्म हुआ था, बद्रीनाथ ट्रस्ट एवं अन्य मंदिरों के प्रबंध वाले प्रदेश के मंत्री श्री वर्मा के करकमलों से मूर्ति की स्थापना हो गयी.

इस अवसर पर कालोनी के सब निवासी मौजूद थे. उत्सव की अध्यक्षता स्वयं लाल संजीवन सिंह ने की. बड़ा शानदार उत्सव था. लाल साहेब प्रसन्न मन वापस लौटे. भोजन करके उन्होंने अपनी दोपहर वाली नींद पूरी की. शाम के समय वह घूमने निकले. आठ बजे रात को जब वह घूम-फिर कर वापस लौटे, उन्हें लगा जैसे कालोनी में एक हंगामा-सा मचा हुआ है. लाउडस्पीकर से निहायत बेसुरी चीख और चिल्लाहट की आवाजें निकल कर कालोनी के शांत वातावरण में एक बवंडर-सा ढाये हुए हैं. यह आवाजें मंदिर से आ रही थीं. लाल साहब ने अपने खिदमतगार रामसिंह रावत को देखने भेजा कि यह हंगामा कहां और कैसे मच गया है. उसने लौट कर बतलाया— सरकार, मंदिर में आठ-दस आदमी ढोलक और मजीरा लिये कीर्तन कर रहे हैं. चंद्रिका महाराज को तो हम पहचानते हैं. बाकी आदमी कालोनी के बाहर के हैं.

लाल साहेब करीब आधे घंटे तक प्रतीक्षा करते रहे कि कीर्तन बंद हो और उन्हें चैन मिले, लेकिन कीर्तन बंद होने के स्थान पर जोर पकड़ता जा रहा था. आखिर लाल संजीवन सिंह स्वयं उठे. उन्होंने मढ़ियानुमा मंदिर में जा कर देखा— दस आदमी गला फाड़-फाड़ कर रामायण का पाठ कर रहे हैं. न कहीं सुर, न ताल. ढोलक कहीं जा रही है, मजीरा कहीं जा रहा है. माइक्रोफोन लगा हुआ है और लाउडस्पीकर का रुख ठीक उनके बंगले की तरफ है. लाल साहब चुपचाप विमूढ़-से कुछ समय तक यह दृश्य देखते रहे, किसीने जैसे लाल साहब को पहचाना तक नहीं. उन्होंने अंदाजा कि वहां एकत्र लोग बैंकों या सरकारी दफ्तरों के चपरासी या दरबान हैं, हट्टे-कट्टे, लंबे-तड़ंगे आदमी. हार कर लाल साहब को पूछना पड़ा— यह क्या हंगामा मचा रखा है तुम लोगों ने?

कीर्तन चलता रहा, उत्तर चंद्रिका महाराज ने दिया—ई हंगामा दिखत है लाल साहेब! ई कीर्तन, भगवान की पूजा!

लाल साहब ने अपने को दबाते हुए कहा— भगवान की पूजा इस शोर-शराबे से की जाती है? और चंद्रिका महाराज बोले— भगवान की पूजा पतुरिया और भांड़न के गाना सो तो नाही होत है.

बिजली की तरह तीन-चार महीने पहले वाली बात लाल संजीवन सिंह के मस्तिष्क में कौंध गयी, जब चंद्रिका महाराज के पीछे वह दौड़े थे. इस बीच कालोनी वाले कुछ लोग इकट्ठा हो गये थे. एकाएक लाल साहब गरज उठे— बंद करो यह कीर्तन-वर्तन! नहीं तो मैं लाउडस्पीकर फेंक दूंगा. चंद्रिका महाराज के दो तगड़े शिष्यों ने आगे बढ़ कर कहा— लाउडस्पीकर में हाथ न लगे, समुझ लेव, ई धरम का मामला आय. खून खराबा हुई जाई.

तभी चंद्रिका महाराज ने आगे बढ़ कर कालोनी-निवासियों की भीड़ से पूछा— आप लोगन का तो भगवान के कीर्तन मां कौनो आपत्ति न आय?

कालोनी-निवासियों की भीड़ की ओर से बाबू चिरंजीलाल ने उत्तर दिया— भला भगवान के कीर्तन से किसी को कोई एतराज हो सकता है, महाराज? और उन्होंने संजीवन सिंह से कहा— आपके ही मंदिर में यह कीर्तन हो रहा है, आप इस कमेटी के अध्यक्ष हैं. आपको अगर कुछ असुविधा हो तो सहन कीजिए.

लाल साहब ने स्थिति ताड़ी, उनके मुकाबिले आठ-दस आदमियों का दल. हट्टे-कट्टे और लड़ाकू, फिर कालोनी का जनमत उनके विरुद्ध. वह चुपचाप वापस लौट आये. उन्होंने कार निकाली और अपने मित्र चौधरी नईम हैदर के यहां सोने के लिए चले गये. यह चौधरी नईम हैदर भी पुराने रईस थे— करीब आध मील की दूरी पर उनका बंगला था. लाला साहब के बचपन के साथी.

दूसरे दिन करीब ग्यारह बजे दिन में लाल साहब अपने यहां वापस लौटे. कीर्तन बदस्तूर चल रहा था. उन्होंने फिर रामसिंह रावत को पता लगाने भेजा, उसने लौट कर बताया कि चंद्रिका महाराज सो रहे हैं. रात वाले आदमी चले गये हैं, कीर्तन करने वालों का एक नया दल आ गया है. यह दल दफ्तरों और बैंकों के चौकीदारों का है जो रात की ड्यूटी करके कीर्तन करने आये हैं.

झुंझला कर लाल साहब उठे. उन्होंने जा कर चंद्रिका महाराज को जगाया. बड़े शांत भाव से उन्होंने पूछा— चंद्रिका महाराज! कब तक यह चलता रहेगा?

उसी तरह शांत भाव से चंद्रिका महाराज बोले—राम-राम लाल साहेब! आप ई का हंगामा कहत आय? यू तो अखंड कीर्तन आय—एक हफ्ता समझो आप, भगवान की महिमा का बखान हुई रहा है.

लाल संजीवन सिंह उबल पड़े— कान के परदे फट जाते हैं, नींद हराम है.

—अरे लाल साहेब, हम तो बड़े सुख की नींद सोय के उठे आन. तौन धरम-करम मां मन लगाओ, हफ्ता की तो बात आय! तौन कीर्तन तो चलिहे!

—यह कीर्तन नहीं चल पायेगा. कहते हुए लाल साहब घूम पड़े. घर पहुंच कर उन्होंने थाने में फोन मिलाया. थानेदार ने धरम-करम के मामले में दस्ताजी करने के संबंध में अपनी विवशता बतलायी. उन्होंने सुपरिंटेंडेंट पुलिस को फोन मिलाया. वहां से भी यही उत्तर मिला कि लाउडस्पीकर लगा कर ईश्वर की उपासना या उसका गुणगान करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है.

—जन्मसिद्ध अधिकार है, धर्म-सिद्ध अधिकार है! किटकिटाते हुए उन्होंने रिसीवर पटक दिया.

दोहपर के शोर-शराबे में घर के दरवाजे और खिड़कियां बंद कर लेने के कारण कीर्तन के स्वरों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा. लाल साहब ने बियर की दो बोतलें चढ़ायीं और भोजन करके सो

गये, लेकिन शाम के समय जब उनकी नींद खुली, कीर्तन चल रहा था. उन्होंने दूसरी रात भी चौधरी नईम हैदर के यहां बिताने का संकल्प किया, और तैयारी करने लगे. तब तक कालोनी के एक दर्जन आदमियों का एक शिष्टमंडल लाल साहब के यहां पहुंचा. सेल्स टेक्स इंस्पेक्टर बाबू संकटा प्रसाद, सेक्रेटेरिएट में सुपरिंटेंडेंट पंडित शिवराम पांडे, कपड़े के व्यापारी लाला गिरधारी लाल, कांग्रेस कमेटी के सचिव श्री रामाधार आदि.

लाला गिरधारी लाल ने बड़े विनम्र भाव से कहा— लाल साहब, आपसे विनम्र निवेदन है. आपने एक दिन सत्यनारायण की कथा में चंद्रिका महाराज और बाबू चिरंजीलाल का अपमान कर दिया था. आपको याद होगा.

आंखें फाड़ कर लाल संजीवन सिंह ने उस शिष्टमंडल को देखा. फिर बोले— मैंने अपमान कब किया था? बेसुरे चंद्रिका दीक्षित के बेसुरेपन की बात ही कही थी कि उसने गाली दी तो मुझे क्रोध आ गया था.

अब रामाधार यादव बोले— इस अखंड कीर्तन से आप कितने परीशान हैं, यह हमको मालूम है. हमने चंद्रिका महाराज से कहा तो वह बोले कि अगर लाल साहेब धम के संबंध में अपने अपशब्दों पर खेद प्रकट करें तो कीर्तन बंद हो जाये.

लाल साहब भड़क उठे— तो आप लोगों का मतलब है कि मैं उस हरामखोर से माफी मांगूं?

बाबू संकटाप्रसाद ने लाल साहब को शांत करने का प्रयत्न किया— इस तरह गाली देना आपको शोभा नहीं देता. चंद्रिका महाराज ब्राह्मण हैं, स्टेट बैंक के हेड जमादार हैं.

लेकिन लाल साहब का पारा चढ़ता जा रहा था.—यह साला हमारे बाप-दादा के टुकड़ों पर पला है. मैंने उसे अपनी परजा समझ कर उसे सर्वेंट क्वार्टर में दो कोठरियां दे दी हैं. अब साले की इतनी हिम्मत हो गयी कि वह मुझसे माफी मंगवाये. उससे कह दीजिए कि कीर्तन बंद कर देने में ही उसका भला है, वरना मैं उसे उन कोठरियों से निकाल बाहर करूंगा. माफी मांगे मेरी बला, वही मुझसे माफी मांगे. मैं अपने दोस्त चौधरी नईम हैदर के यहां जा रहा हूं. वहीं वह आ जाये. और लाल साहब उठ कर चौधरी नईम हैदर के यहां रवाना हो गये.

सब लोगों ने एक-दूसरे का मुंह देखा, तभी बाबू चिरंजीलाल आ गये. उन्होंने ही यह शिष्टमंडल भिजवाया था. इस शिष्टमंडल के साथ वह चंद्रिका महाराज के यहां पहुंचे. उन्हें सब बातें बतलाई गयीं. चंद्रिका महाराज ने कड़क के साथ कहा— देखी कौन ससुर हमें निकालत है आय के, हम आन चंद्रिका महाराज, ई लाल से हम घुटना टिकवाय के रहिबे.

★ ★

लाल साहब चंद्रिका महाराज की प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन वह नहीं आये. सोने से पहले लाल साहब ने चौधरी नईम हैदर से पूछा— चौधरी साहेब, क्या कव्वाली मुसलमानों का धार्मिक संगीत है?

—सौ फीसदी धार्मिक. क्यों, क्या बात है?

—सोच रहा हूं कल से एक हफ्ता के लिए अपने घर पर कव्वाली की महफिल कराऊं. कोई कव्वाल-पार्टी है आपकी नजर में? कितना खर्च लगेगा?

—अरे अर्च-खर्च की बात नहीं. वह जुम्मन कव्वाल अपने ही बावर्ची का बेटा है. पांच-छह आदमियों की पार्टी है. पचीस-तीस रुपयों पर एक रात के लिए राजी कर दूंगा.

—तो फिर कल शाम से ही वह कव्वाली का प्रोग्राम होना चाहिए.

—जी हां, इंतजाम हो जायेगा. लेकिन लाल साहब, कम्यूनल रॉयट हो जाने का खतरा है. उन लोगों की जान की जिम्मेदारी कौन लेगा?

सीना तान कर लाल साहब ने कहा—उसकी जिम्मेदारी मुझ पर. रघुकुल रीति सदा चलि आयी, प्राण जाय पै बचन न जायी.

दूसरे दिन लाल साहब ने चंद्रिका महाराज पर बेदखली और ट्रेसपासिंग का मुकदमा दायर कर दिया.शाम के समय वह कव्वाली की पार्टी ले कर अपने घर लौटे, एक जबर्दस्त माइक्रोफोन और उससे भी जबर्दस्त लाउडस्पीकर वह साथ में लेते आये.

★ ★

रात आठ बजे कीर्तन की पाली बदली और उसी समय लाल साहब के बंगले में कव्वाली का कार्यक्रम शुरू हुआ.कालोनी वालों को थोड़ी देर तक तो यह पता ही नहीं चला कि यह सब क्या और कैसे हो रहा है, और फिर कीर्तन और कव्वाली में घमासान युद्ध छिड़ गया. दोनों लाउडस्पीकर पूरी ताकत के साथ खोल दिये गये. घंटे-दो घंटे तो कालोनी वाले तमाशा देखते रहे, फिर धीरे-धीरे मंदिर के आसपास लोग इकट्ठा होने लगे. करीब बारह बजे रात तक चंद्रिका महाराज ने चालीस-पचास आदमियों को इकट्ठा किया. लाठियां लिये हुए इस भीड़ ने लाल साहब के बंगले को घेर लिया और चंद्रिका महाराज ने कड़े स्वर में आवाज लगायी — लाल साहेब, यू मुसलमानी कव्वाली बंद करो—भगवान के कीर्तन मां बाधा पड़त आय.

—यह भी खुदा की परस्तिश है! लाल साहब ने बरामदे में निकल कर कहा, और खुदा की परस्तिश मैं करवा रहा हूं. जो इसमें दखल देगा, उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा. और लोगों ने देखा कि लाल साहब के हाथ में रिवाल्वर है और उनकी बगल में खड़े रामसिंह रावत के हाथ में राइफल है.

चंद्रिका महाराज गरजे — हम ई कौवालन को आगाह किये देइत हैं कि इनकी जान की खैर नहीं आय! आपन कल्याण चहत हौ तो उलटे पैर अबहीं वापस जाओ, नाहीं तो दंगा हुई जाई.

लाल साहब ने भी आवाज लगायी—कौन साला दंगा करने आया है? जरा दंगा करके तो दिखाए? मैं हूं लाल संजीवन सिंह. और उन्होंने अपने रिवाल्वर से हवाई फायर कर दिया.

भगदड़ मच गयी. चंद्रिका महाराज ने बाबू चिरंजीलाल से कहा—बाबू, अब कुछ करो.

बाबू चिरंजीलाल ने कांग्रेस कमेटी के सचिव रामाधार यादव से कहा—यादव जी, आन का मामला है.

★ ★

चिरंजीलाल के साथ रामाधार यादव थाने पहुंचे. खबर एस. एस. पी. को दी गयी. गृहमंत्री सो रहे थे. उन्हें जगाया गया. स्थिति भयानक रूप से गंभीर हो गयी थी. उसी समय पी. ए. सी. का एक सशस्त्र दस्ता संजीवन कालोनी में तैनात कर दिया गया. रात जैसे-तैसे बीती.

दूसरे दिन सुबह के साथ गृहमंत्री स्वयं संजीवन कालोनी में आये.अखंड कीर्तन और कव्वाली में घमासान मचा हुआ था. समस्त कालोनी लाल साहब के विरुद्ध हो गयी थी, क्योंकि वह विशुद्ध हिंदू कालोनी थी और वह इस हिंदू कालोनी में मुसलमानों को बुला लाये थे और सांप्रदायिक दंगा करवाने पर तुले हुए थे.

गृहमंत्री ने दोनों ओर के तर्क सुने.बहुत सोच-विचार कर उन्होंने निर्णय दिया — कीर्तन और कव्वाली, दोनों ही भगवान के गुणगान हैं, उन पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता. लेकिन इस कालोनी में बाहर वाले लोगों के आने से, विशेष रूप से शुद्ध हिंदू कालोनी में

मुसलमानों के आने से शांति भंग हो रही है, इसलिए इन कव्वालों को कालोनी से बाहर कर दिया जाये.

लोगों ने हर्षध्वनि की, चंद्रिका महाराज ने नारा लगाया– गृहमंत्री जिंदाबाद!

अपमानित और पराजित लाल संजीवन ने बड़ी हिकारत की नजर से गृहमंत्री को देखते हुए कहा— आपने कहा है कि कव्वाली और कीर्तन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जायेगा, केवल व्यक्तियों पर प्रतिबंध लग सकता है.

गृहमंत्री ने उत्तर दिया — बिल्कुल यही बात कही है मैंने.

—तो फिर यह जो कालोनी के बाहर से कीर्तन करने वाले आये हैं, उनके संबंध में आपको क्या कहना है?

गृहमंत्री ने चंद्रिका महाराज को देखा और चंद्रिका महाराज ने कहा—ई हमार नात्ते-रिश्तेदार आय. भाई-भतीजा पर तो रोक नहीं लगा सकते हैं?

—ठीक है, लेकिन जो लोग रिश्तेदार न हों, वे भी यहां से चले जायें, गृहमंत्री ने आज्ञा दी.

★ ★

लाल साहब ने कव्वालों को विदा किया, चंद्रिका महाराज ने गैर-रिश्तेदारों को. कालोनी के ही चार आदमी अब कीर्तन में शामिल हो गये. अखंड कीर्तन को टूटने के पाप से बचाने के लिए. गृहमंत्री चले गये.

कालोनी के निवासियों ने संतोष की गहरी सांस ली.

लेकिन शाम के समय जब कीर्तन बाकायदा चल रहा था, लाल साहब के यहां कव्वाली का कार्यक्रम आरंभ हो गया. हुआ यह कि दिन में लाल साहब एक दर्जन ग्रामोफोन रेकार्ड खरीद लाये और उन्होंने अपने इलाके से रामसिंह के छोटे भाई श्यामसिंह रावत को बुलवा कर लगातार रिकार्ड बजाने की ड्यूटी पर लगा दिया.

लाल साहब रिवाल्वर ले कर बैठ गये, और लाउडस्पीकर तेज कर दिया गया.

★ ★

नोट : कल से लगातार तार आ रहे हैं कि कहानी भेजो, तो आज तक की कहानी इतनी ही है — आगे क्या होगा, कहा नहीं जा सकता. इतना तै है कि दंगा नहीं होगा — यह मोर्चाबंदी भी कुछ दिनों की है. सुलह हो ही जायेगी. लेकिन चंद्रिका महाराज पर जो मुकदमा दायर कर दिया गया है, वह बरसों चलेगा. □□□

चित्रलेखा,
महानगर, लखनऊ–६

समाचार पंजीयन (केंद्रीय) नियम १९५६ के ८वें नियम (संशोधित) से संबंधित प्रेस और पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा १९ डी. की उपधारा (बी) के अंतर्गत अपेक्षित बंबई के 'सारिका' नामक समाचारपत्र के स्वामित्व तथा अन्य बातों का ब्यौरा :

प्रपत्र चतुर्थ (देखें नियम ८)

१–प्रकाशन का स्थान :	दि टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, दि टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई.
२–प्रकाशन की आवर्तिता :	मासिक
३–मुद्रक का नाम :	श्री श्रीकृष्ण गोविंद जोशी, स्वत्वाधिकारी, बेनेट कोलमैन एंड कं. लिमिटेड के लिए
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	ए–१/२ सुमन नगर, सायन ट्रांबे रोड, चेंबूर, बंबई ४०००७१
४–प्रकाशक का नाम :	श्री श्रीकृष्ण गोविंद जोशी, स्वत्वाधिकारी, बेनेट कोलमैन एंड कं. लिमिटेड के लिए
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	ए–१/२ सुमन नगर, सायन ट्रांबे रोड, चेंबूर, बंबई ४०००७१
५–संपादक का नाम :	श्री कमलेश्वर
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	सारिका, टाइम्स आफ इंडिया, बंबई–४००००१
	शेयरहोल्डर्स :
६–उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो २१-१-१९७५ को समाचारपत्र के स्वामी और भागीदार या कुल पेड-अप पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के शेयरहोल्डर हैं :	१. भारत निधि लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली. २. मेसर्स साहू जैन लिमिटेड, 'टाइम्स हाउस', चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ३. अशोक विनियोग लिमिटेड, १४, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता–१. ४. अशोक होल्डिंग्स लिमिटेड, 'टाइम्स हाउस', चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ५. अर्थ उद्योग लिमिटेड, डालमियानगर, बिहार. ६. पंजाब नेशनल बैंक, विप्लवी रासबिहारी बासु रोड, कलकत्ता–१. ७. मेसर्स साहू प्रॉपरटीज लिमिटेड, १८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता–१. ८. श्री अशोककुमार जैन, 'टाइम्स हाउस', चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ९. श्री मनोजकुमार जैन, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता–१. १०. श्री चुन्नीलाल जयपुरिया तथा श्री प्रभुदयाल डाबरीवाला, द्वारा साहू जैन ट्रस्ट, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ११. श्री मोलिचंद शर्मा तथा श्री सीताराम सेक्सरिया, द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५–४७ कनाट प्लेस, नयी दिल्ली–१. १२. कु. नंदिता जैन, अपने पिता तथा अभिभावक श्री अशोककुमार जैन ६, सरदार पटेल मार्ग, नयी दिल्ली के माध्यम से.

मैं, श्रीकृष्ण गोविंद जोशी, घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं.

(एस. जी. जोशी)
प्रकाशक के हस्ताक्षर

तारीख : १. ३. १९७५

कबिरा खड़ा बजार में (१३)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीर की भेंट भारत सेवक समाज के नेता से

कबीर अटैची लेकर बाहर निकला तो देखा वही कनछेदी बरामदे में बैठा अंगीठी ताप रहा है.

कबीर ने पूछा—कहो कनछेदी, क्या कर रहे हो?

उसने कहा–कुछ नहीं, अंगीठी ताप रहे हैं. भीतर भूख की आग तो बाहर कोयले की आग. गनीमत है कि कोयला मिला रहा है. गेहूं तो अभी तक राशन दूकान पर आया नहीं. जहां तक चावल का सवाल है, एक डिब्बे में मुट्ठी भर नमूने के लिए रख छोड़ा है. आगे नाती-पोते पूछें कि बाबा आपके जमाने में चावल क्या होता था तो निकाल कर बता दें कि बेटा इस चीज को हम चावल कहते थे.

कबीर ने कहा—इतने निराश मत होओ कनछेदी! अच्छा समय आ गया है. अमेरिका में अपने राजदूत कौल ने दरबार में कान पकड़ कर कह दिया है—अन्नदाता, भूलचूक माफ! फिर बाबू जगजीवनराम भी गये हैं.

कनछेदी ने कहा—ठीक है.हम तो अब यह सोच रहे हैं कि जनसंघ में चले जायें. जब अटल बिहारी प्रधान मंत्री हो ही रहे हैं तो इस कनछेदी को कोई राशन दूकान दिला ही देंगे. पर तुम कहां चले?

कबीर ने कहा—भारत सेवक समाज के एक नेता से मिलने.

कनछेदी ने कहा—कैसे साधु हो? साधु-संतों, भले आदमियों को तंग करते हो. लोगों का दिमाग खराब करते हो. तुम्हें भी क्या सुकरात की तरह जहर का प्याला पीना है?

कबीर ने कहा—जहर का प्याला तो रोज पीते हैं, कनछेदी! पर मरते नहीं. अच्छा, अब चलूं.

कबीर जब भारत सेवक समाज के नेता के पास पहुंचा, तो वे चिंतित बैठे थे. सामने एक आदमी हिसाब कर रहा था–दस और दस बीस-बीस और पंद्रह पैंतीस.

मैंने कहा—भारत सेवकजी मैं कबीरदास हूं–राम की लुगाई.

वे बोले–बैठो साधु, तुम राम की लुगाई और हम भजन गाते हैं–रघुपति राघव राजाराम, सबको सन्मति दे भगवान.

कबीर ने कहा—याने भगवान, सबको सन्मति दे पर हमें मत दे?

भारत सेवक बोले–नहीं, भगवान ने हमें भी सन्मति दी कि मौका मिला है तो कुछ कर लो. तभी तो यह जांच चल रही है. हिसाब बनवा रहे हैं.

कबीर ने कहा—याने

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम !
सांचे से तो जग नहीं; झूठे मिलें न राम!

भारत सेवक बोले—बस यही मुश्किल आ पड़ी है. जग और राम दोनों को साधने के कारण यह जांच कमेटी बैठ गयी है.

कबीर ने कहा—चिंता मत करिये. राम सब ठीक कर देंगे.

भारत सेवक बोले—राम ठीक करते होते तो यह जांच क्यों होती. हमारा काम तो राम को समर्पित है. अब राम अपने ही काम की जांच करवा रहे हैं. स्वर्ग से गांधीजी भी हमारी मदद नहीं करते.

वे बहुत दुखी हो गये.

कबीर ने कहा –आप इन मामलों में इतने पुराने माहिर हैं कि सब ठीक कर लेंगे. किसी मंत्री को नहीं पटाया?

वे बोले–पटाये तो तीन मंत्री हैं.

कबीर ने कहा—बस, फिर होने दीजिए जांच. दो-तीन मंत्री मैं पटाये देता हूं.

वे खुश हुए. कहने लगे—साधु, तुक इतना कर दो तो हम संकट से उबर जायें.

मैंने कहा—मैं कर दूंगा. पर अब जरा भारत सेवक समाज पर बात हो जाय. यह भारत सेवक समाज किसलिए बना?

वे बोले —भारत की सेवा के लिए.

कबीर ने कहा—नहीं, गांधीवाद एक मीठे फलों का झाड़ है. इस झाड़ की हर शाखा पर कई पक्षी बैठे हुए मीठे फल खा रहे हैं. एक शाखा पर आप भी बैठे हैं और मीठे फल खा रहे हैं.

भारत सेवक ने कहा—नहीं, बात यह है कि आजादी के बाद कांग्रेस के कुछ लोग तो सत्ता में चले गये-विधायक, संसद सदस्य, मंत्री वगैरह हुए. फिर भी काफी कांग्रेसी बच गये. इन्हें कहीं फिट करना था. फिट नहीं करते तो ये बेकार कांग्रेसी ऊधम मचाते इसलिए नेहरू सरकार ने सोचा कि २०-२५ करोड़ से कुछ फर्क नहीं पड़ता. इन्हें दे-दिवा दो और काम से लगा दो.

कबीर ने पूछा–तो इन बेकार कांग्रेसियों के लिए ये सब संस्थाएं खोली गयीं ?

वे बोले–और नहीं तो क्या! बेकार कांग्रेसियों में कुछ सर्वोदय में चले गये, कुछ सर्व सेवा संघ में और काफी भारत सेवक समाज में. ग्रांट मिलती जाती थी और काम में लगे थे.

कबीर ने कहा—तो क्या बेकार कांग्रेसियों को चुप रखने के लिए भारत सेवक समाज बना?

उन्होंने जवाब दिया—हां, और हम यही सेवा करते आ रहे हैं कि चुप हैं. वरना हम बोलते. सबकी पोल खोलते. तिकड़म करते तो मंत्री हो जाते. तब हम खुद ग्रांट देते. पर आज यह हाल है, कि हमें ग्रांट के लिए मंत्रियों के दरवाजे खटखटाना पड़ता है.

कबीर ने कहा—आप तो बहुत पुराने वयोवृद्ध भारत सेवक हैं. आप क्या यह नहीं समझते कि पंडित नेहरू ने स्वतंत्रता के बाद ही यह सोचा कि हो सकता है उन्हें कांग्रेस छोड़ना पड़े इसलिए एक संस्था खड़ी कर दो जिसका नेतृत्व वे संभाल लें और कांग्रेस से बड़ी पार्टी खड़ी कर दें. गांधीजी ने कहा ही था कि आजादी के बाद कांग्रेस को खत्म कर दो. पंडित नेहरू का विराट व्यक्तित्व भारत सेवक समाज को कांग्रेस से बड़ा संगठन बना देता .

भारत सेवक बोले—हां, यह हो सकता है. पर ऐसा मौका आया ही नहीं , क्योंकि सरदार पटेल की मृत्यु हो गयी.

कबीर ने कहा –याने सरदार पटेल की मृत्यु ठीक समय पर हुई ?

उन्होंने कहा–हां, ठीक समय पर हुई.

कबीर ने कहा—और गांधीजी की मृत्यु?

वे बोले—वह भी ठीक समय पर हो गयी. हर मृत्यु ठीक समय पर हुई.

कबीर ने पूछा—गांधीजी जीवित रहते तो क्या होता?

भारत सेवक ने कहा—मैं क्या जानूं! तुम साधु हो, गांधीजी भी साधु. तुम काइयां साधु हो. गांधीजी भी काइयां साधु थे.

कबीर ने कहा—तुम ठीक कहते हो. वे काइयां साधु थे. वाइसराय लार्ड वेवेल से उनकी तीन घंटे बात हुई. लार्ड वेवेल ने कहा—आप संक्षेप में लिख दीजिए कि आप क्या चाहते हैं. गांधीजी ने पांच वाक्य लिख दिये. वेवेल ने पढ़ा और संतुष्ट हो गया. रात को उसने फिर पढ़ा और आधी रात को अपने सेक्रेटरी को पुकार कर कहा—अरे, यह गांधी तो मुझे बेवकूफ बना गया. ये पांच वाक्य ठीक हैं, पर हर वाक्य दूसरे को काटता है. बड़े काइयां साधु थे गांधीजी.

भारत सेवक ने कहा—सही है साधु. पर वे जीवित रहते तो सरकार की फजीहत होती.

कबीर ने कहा—और वे रोते :

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे,
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे!

खैर, छोड़ो गांधीजी को! यह बताओ कि भारत की क्या सेवा कर रहे हो?

भारत सेवक ने कहा— चुप हैं. यह क्या कम सेवा है? सर्वोदयी भी चुप हैं. यह भी भारत की सेवा है. फिर हम चरखा अभी भी चलाते हैं. दतौन करते हैं. 'रघुपति राघव' करते हैं.

कबीर ने कहा—पर यह जांच किसलिए हो रही है?

उन्होंने कहा—हिसाब-किताब की जांच है. कहते हैं, हमने घपला किया, पैसा खाया.

कबीर ने पूछा—क्या ऐसा हुआ?

वे बोले—भई, बात यह है कि हम भी भारतीय हैं. हम कोई विदेशी तो हैं नहीं. आम भारतीय जैसा करेगा, वैसा ही हम करेंगे वरना हम देशद्रोही हो जायेंगे. तो हमने भी देशवासी की तरह आचरण किया. इसमें गलत क्या हुआ?

कबीर ने कहा—गलत कुछ नहीं. पर आप ऊंचे हैं. आप भारत सेवक समाज वाले हैं. आप पर ये व्यक्तिगत खाने-वाने के आरोप नहीं लगना चाहिये.

भारत सेवक ने दो टूक बात कही—साधु, हम क्या भारत के अंग नहीं हैं? यदि हमने अपनी ही सेवा की तो क्या यह भारत की सेवा नहीं हुई?

कबीर ने कहा—ठीक है. आपने अपनी सेवा करके भारत की ही सेवा की है. एक मरीज अस्पताल से मुफ्त इलाज कराके निकलने लगा, तो डाक्टरों ने कहा, कुछ दान गरीबों के लिए दे जाइये. उसने कहा कि गरीब तो मैं भी हूं, इसलिए वह दान अपने आपको दे लेता हूं. ऐसा ही आपने किया. आपने अपने को भारत मान लिया और अपनी सेवा करने लगे. यही भारत सेवा हुई और भारत सेवक समाज का काम.

तभी हिसाब करने वाला बोला—भैयाजी, तीन रसीदें नहीं मिल रही हैं.

भारत सेवक ने कहा—रसीदें नहीं मिल रही हैं? अरे तुम्हें इतने पैसे क्या इसलिए दिये जाते हैं कि तुम मुझसे कहो कि रसीदें नहीं मिल रही हैं? नहीं मिल रही हैं तो बना लो. तुम्हारे और दूसरे कार्यकर्ताओं के पास अंगूठे नहीं हैं? क्या तुम लोग जाली दस्तखत नहीं बना सकते? यदि ऐसा नहीं कर सकते तो क्यों इस संस्था में हो? क्यों इस पवित्र संगठन को बदनाम करते हो?

उसने कहा—मैं सब ठीक कर लूंगा भैयाजी, आप चिंता मत कीजिये.

भारत सेवकजी ने कहा—देखो संत कबीर, क्या दुर्भाग्य है? जिस पवित्र संस्था में सेवक के ईमान पर शक किया जाय, वह भी क्या संस्था है! जी चाहता है कि इसे छोड़ दूं.

कबीर ने कहा—अगर पेट भर गया हो तो छोड़ दीजिये. जब आदमी का पेट भर जाता है तो वह थाली को हटा देता है.

भारत सेवक ने कहा—साधु, तुमसे क्या छिपाना! अभी एक रोटी की भूख और है. एक रोटी और खा लूं तो थाली पड़ी रहेगी और मैं कुल्ला करने चला जाऊंगा.

कबीर ने कहा—यह भी ठीक है. अधपेटे मत उठा.

भारत सेवक ने कहा—साधु एक बात कहूं—मेरे पास अभी गुंजाइश है. मैं दे सकता हूं. कुछ रुपये अपने मठ के लिए लेते जाओ. पर दो-तीन मंत्रियों को पटा देना.

कबीर ने कहा—नहीं मुझे नहीं चाहिये. कबीर को पैसे से क्या लेना देना! मंत्री मैं पटा दूंगा पर इसकी मजदूरी नहीं लूंगा.

आप साफ बच जायेंगे.

भारत सेवक ने कबीर के चरण पकड़ लिये. कहने लगे—कोई मेरे लिए उपदेश?

कबीर ने कहा—क्या उपदेश दूं? तू बाम्हन, मैं काशी का जुलाहा! फिर भी सुनो—

झूठ बराबर तप नहीं, सांच बराबर पाप,
जाके हिरदय झूठ है, ताके हिरदय आप।

* *

कबीर लौटा. वही कनछेदी मिल गया. पूछा—कहो कबीर क्या हाल हैं भारत सेवक के?

कबीर ने कहा—हिसाब की जांच होनेवाली है. दस और दस बीस-बीस बीस बीस— और पंद्रह पैंतालीस!

कनछेदी ने कहा—अरे बाप रे बीस और पंद्रह पैंतालीस?

□□□

इतने वर्षों बाद फिर एक दिन दमयंती से मुलाकात हो जाएगी, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी. और वह भी इतनी दूर बड़ौदा में, राह चलते नहीं, किसी पार्क में या सिनेमा के वेटिंग हाल में नहीं, खंडेराव मार्केट में सब्जियों की दूकान पर.

देख कर ठगा-सा रह गया था. देर तक करीब-करीब गूंगा. दमयंती ने मुझे देखा था और एकदम बच्चों-सी किलक पड़ी थी. सब्जियों के बास्केट को जमीन पर पटक कर एकदम दोनों हाथों की मुट्ठियों में मेरी दोनों बांहें भींचते हुए उसने कहा था—जाना मत. दो मिनट रुको. थोड़ी-सी और सब्जियां ले लूं. उफ, क्या महंगाई है!

कह कर वह अपने खास अंदाज में खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. यों ही. आदतन. बेमानी. और एकदम से सब्जियों का बास्केट उठाकर सब्जियों की दूकानों की तरफ दौड़ गयी थी. जाते-जाते तनिक-सा मुड़कर पूछा था—तुम्हारे लिए हरी मटर ले लूं? या...

आगे की बात उसने बीच में ही छोड़ दी थी और खिलखिला कर हंस पड़ी थी. मैं वैसे ही गूंगा बस मुस्करा कर रह गया था. उसके व्यवहार में उस झगड़े का कोई ट्रेस नहीं था, जिसकी वजह हम एक दूसरे से जुदा हो गए थे. और तो और, पंद्रह साल के बाद भी उसे मेरी आदतें याद थीं. मटर के दिनों में बिस्तर पर पड़े-पड़े छीमियां छुड़ाकर दाना चबाते रहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है.

सब्जियों के मोल-तोल में दमयंती जिस तरह व्यस्त हो गयी थी, उससे जाहिर था, दुनिया के तौर-तरीके काफी बदल गए थे. मैंने अपने कानों सुना था, वह भाव में पांच पैसे छुड़वाने के लिए सब्जीवाले से कह रही थी – दो रुपये का पेट्रोल जलाकर यहां आकर सब्जियां खरीदने से तब मुझे क्या फायदा होगा? इस भाव में तो ठेलेवाला भैयाजी दरवाजे पर दे जाता है.

तीन रुपए की जगह दो रुपए पंचानवे पैसे की हरी मटर. दो रुपए का पेट्रोल. यानी दमयंती बेहद सयानी हो गयी थी. और दुनियादार. सब्जीवाले को पैसे देकर उसने ब्लाउज के अंदर हाथ डाल कर एक नन्हीं-सी डायरी निकाली थी और दो मिनट वहीं खड़े-खड़े जाने क्या नोट किया था. शायद सब्जियों का हिसाब. वह कितनी गिहथिन हो गयी थी!

मैंने उसे बहुत गौर से देखने की कोशिश की थी. दिन कब का ढल चुका था, लेकिन आकाश में अब भी बड़ी चमक थी. एक बड़ी खुशरंग चमक, मुलायम-मुलायम-सी, आंखों पर रेशम की तरह फिसलती हुई. ऐसी शाम अपनी तरफ नहीं होती. अपनी तरफ मद्धिम और उदास कर देती है. यहां की तरह झलकाती नहीं.

वह डायरी में जाने क्या नोट कर रही थी और रह-रह कर मेरी ओर देखकर मुस्करा रही थी. और मैं पिछले पंद्रह सालों के संभावित परिवर्तननों को उसमें चीन्हने की कोशिश कर रहा था. ललाट पर सिंदूर की एक बड़ी-सी बिंदी के सिवा नक्शा हू-ब-हू वही था. वही कसा-कसा-सा छरहरा बदन. बड़ी रुचि से कपड़ों में जरूरत भर ढंका हुआ. यानी वह पंद्रह साल के बाद भी उम्र की उसी सीढ़ी पर थी, जिस पर एक दिन हमारी मुलाकात हो गयी थी.

शायद मैं दमयंती को आंखों से और उघार कर देखने की कोशिश करता, मगर अब उसका वक्त नहीं था. उसने अपनी वह नन्ही-सी डायरी ब्लाउज में पहले की जगह डाल ली थी और हाथों में सब्जियों से भरा बास्केट उठाकर मेरी तरफ तेज कदमों से चल चुकी थी. मैंने यों ही अनुमानने की कोशिश की थी कि उसे मुझ तक पहुंचने में कितने सेकेन्ड्स लगेंगे, मगर इतना अवसर ही नहीं मिला था. उसने मेरे पास पहुंचकर एकदम से कहना शुरू कर दिया था—उफ, क्या महंगाई आ गयी है! दस रुपए की सब्जियां लीं और बास्केट भी नहीं भरा. तुम्हारे लिए गोभी का मुसल्लम बनाना चाहती थी,
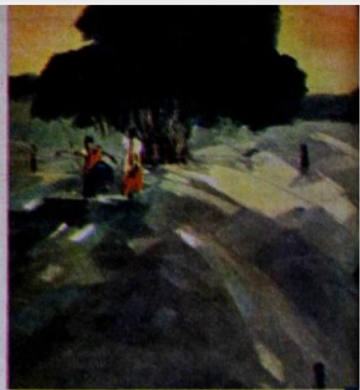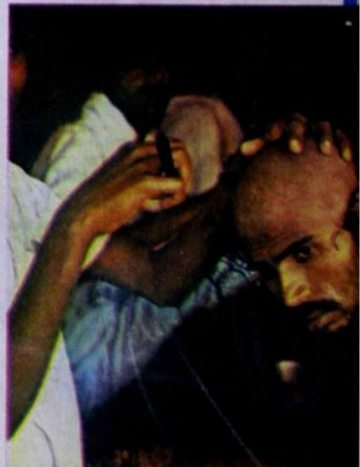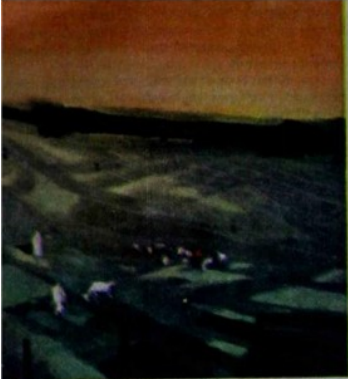
• राजेंद्र किशोर

मगर क्या खाक बनाऊंगी! हर चीज में जैसे आग लग गयी है. कितनी महंगी है गोभी! चार रुपए की किलो. यानी मुसल्लम बनाने लायक एक गोभी. और तेल. बाप रे बाप! यहां तो मूंगफली का तेल चलता है. खुले बाजार में सात रुपए का पांच सौ ग्राम. यानी गोभी का मुसल्लम बनाया और सात-आठ रुपए फुंक गए. कोई क्या खाएगा गोभी का मुसल्लम? क्यों?

इतनी बातें दमयंती एक सांस में कह गयी थी. दूसरी गंभीरता के साथ और चेहरे से उस समस्या की परेशानी जाहिर करते हुए. और मैं उसके बारे में पहले से भी ज्यादा कंफ्यूज्ड हो गया था. ऊपर से उसका नक्शा जरा भी नहीं बदला था. उसकी अदाएं भी वही थी. मगर फिर भी वह कुछ अजीब-सी, अनमनी लग रही थी. मैं उसकी तमाम बातों के जवाब में सिर्फ मुस्करा सकता था, क्योंकि सब्जियों और तेल के भाव से परेशान दमयंती से कितना कुछ और क्या कहना चाहिए, मैं इसका निर्णय नहीं कर पा रहा था. मैं पहले की तरह उससे कहना चाहता था, दमयंती, मेरे पास आओ. बहुत देर के बाद मिली हो. पहले मैं तुम्हें सूघूंगा, फिर तुमसे बातें करूंगा. मगर यह कहने का साहस मैं बटोर नहीं पा रहा था. इसलिए नहीं कि पंद्रह साल पहले हम झगड़ कर जुदा हो गए थे. वह रेखा मैं निःसंकोच और निर्भय लांघ सकता था. साहस के अभाव की वजह दूसरी थी और वह वजह ही मेरी समझ में नहीं आ रही थी.

यह अच्छा हुआ था कि उसने ही मुझे इस सांसत से उबार लिया था. मेरे चेहरे पर फैली हुई अजनबी जिज्ञासा को देखकर वह खुद ही अपनी बातों के बेतुकेपन पर खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. आदतन. बोली थी—मैं भी कैसी वह हूं.

इससे मुझे कुछ कहने का एक मौका मिल गया था. बहुत दिनों के बाद उसकी परिचित देह-गंध का मन-ही-मन स्वाद लेते हुए मैंने पूछा था— कैसी वह हो?

फिर वही खिलखिलाहट आदतन. वही लहजा, वही अदा. वही मुहावरा. उसने कहा था– अरे, बड़ी वह हूं. इतने दिनों के बाद तुम मिले हो और मैं तुमसे महंगाई डिस्कस करने बैठ गयी हूं. मगर मैं भी क्या करूं? समुरी हमारी चेतना में समा गयी है. यहां मैं कोई मौज करने तो आयी नहीं हूं, कमाने आयी हूं और इस महंगाई की वजह पता ही नहीं चलता कि मैं कमा रही हूं. पैसे को मैं दांत से पकड़ने लगी हूं, मगर

मैंने गौर किया था, कहते-कहते फिर उसके चेहरे पर परेशानी उभरने लगी थी और बायीं भौंह के ऊपर कुछ वैसी ही सिकुड़न पैदा हो गयी थी,जैसी अक्सर गुस्से की हालत में पैदा हो जाया करती थी. वह बड़ी खतरनाक सिकुड़न हुआ करती थी. जब वह पैदा हो जाया करती थी, उसके भीतर का रस बदल जाता था. कई दिनों तक वह बोलती थी मगर इस तरह जैसे उसके अंदर से कोई दूसरा बोल रहा हो और उसका उससे कोई रिश्ता न हो. यहां तक कि उसकी देह-गंध बदल जाती थी. लगता था, कोई मुर्दा महक रहा है.

पंद्रह साल पहले उस सिकुड़न को देखकर जिस तरह मैं डर जाया करता था, मुझमें कुछ उसी तरह का डर समा गया था. इसीलिए बात पलटने की गरज से हल्के हंसते हुए कहा था— देखता हूं, तुम बहुत समझदार हो गयी हो.

दरअस्ल मैं उससे कहना चाहता था, तुम बहुत सयानी हो गयी हो. मगर कहते वक्त खुद-ब-खुद मुंह से सयानी की जगह समझदार शब्द निकल गया था. शायद यह उस अलार्म का असर था, जो उस सिकुड़न को देखकर पैदा से हो जाया करता था और इस वक्त भी अनायास ही मेरे मन में पैदा हो गया था. सयानी —इस शब्द से उसे किस कदर नफरत थी!

मैंने पहला परिवर्तन नोट किया था. वह सिकुड़न तुरंत गायब हो गयी थी और उसने फिर आदतन खिलखिलाकर हंसते हुए कहा और मैं अपना पचड़ा ले बैठी हूं. खैर फॉरगेट भी. यह बताओ, कंपनी के काम से आए हो? कहां ठहरे हो?

—होटल में.

—क्यों?

उसने एकदम गुस्से से भर कर पूछा था और फिर तुरंत अपने गुस्से के बेतुकेपन पर इतने जोर से हंस पड़ी थी कि आसपास सब्जियां खरीदते लोग भौंचक होकर हमारी तरफ देखने लगे थे. तनिक दम लेकर उसने कहा था — जाने आज मुझे क्या हो गया है! जरूर यह तुम्हारा असर है. बेतुकी बातें करनी लगी हूं, बेवजह गुस्साने लगी हूं. तुम क्या जानो कि मैं यही हूं!

मैं कहना चाहता था, यह जानता होता भी कि तुम यहीं हो, तो भी क्या फर्क पड़ता? मगर मैं यह नहीं कह सका था. वह बहुत खुश और खुली-खुली नजर आ रही थी और मैं कहीं की मिट्टी कुरेद कर उसे मूंद देना नहीं चाहता था. मगर इसके सिवा और क्या कहा जा सकता था?

मैंने कुछ कहने से कतराने के लिए अपनी नजर उसके चेहरे पर से उतार ली थी और सब्जियों की दूकानों की तरफ देखने लगा था, जिधर शाम की चमक बहुत कम हो गयी थी. मुझे उसकी तरफ फिर उसके एक छोटे-से शब्द ने मुखातिब किया था, उसने सब्जियों की बास्केट जमीन पर से ले ली थी और बोली थी—चलो.

मगर उसकी तरफ मुखातिब होने की वजह यह नहीं थी कि उसके 'चलो' में वह स्पष्ट निमंत्रण नहीं था जिसकी कहीं मुझमें बड़ी गोपन वासना उत्पन्न हो गयी थी. मैं तो चौंक कर उसकी तरफ मुखातिब हुआ था, क्योंकि उसकी आवाज में अचानक एक नयापन पैदा हो गया था. मैंने उसके चेहरे से यह जानने की कोशिश की थी कि उस आवाज में परेशानी, ऊब और झुंझलाहट में किसका अनुपात अधिक था. पर उसका चेहरा एकदम सपाट था और उसकी आंखें बाहर से खुली होकर भी अंदर से एकदम मुंदी हुई थीं.

मैंने सिर्फ यह नोट किया कि यह जो दमयंती मेरे सामने खड़ी थी, उसका वर्तमान से कोई रिश्ता नहीं था. वह कोशिश करके बार-बार वर्तमान में लौटती तो थी, मगर टिकती नहीं थी.

पता नहीं, क्या वजह थी, मगर इस अनुभव से एक अजीब-सा अनबूझ डर मुझमें पैदा हो गया था और सिर्फ उस डर के संदर्भ से निकलने के लिए मैंने उसका वह हाथ पकड़ लिया था, जो खाली था, और उसके साथ-साथ मार्केट से बाहर आ गया था. उसका स्कूटर मार्केट के फाटक पर खड़ा था. वह मुझे उसके पास लिये चली गयी थी और उसने स्कूटर के सामने की खाली जगह में सब्जियों की बास्केट रख दी थी और मैंने उसका हाथ छोड़ दिया था और वह जल्दी-जल्दी स्कूटर को स्टैंड पर से उतारने लगी थी.

मुझे जाने कैसा लगा था. लगा था, किसी वीराने में अकेला खड़ा हूं. शायद इसीलिए बहुत घबरा कर मैंने पूछा था—तुम्हें बहुत जल्दी है क्या ?

वह वर्तमान में नहीं थी.उसकी आवाज कुछ इतनी दूर से आती लगी थी. बोली थी—तुम इस तरह यहां मिल जाओगे, इसका गुमान भी नहीं था. तुम मिल गये तो कुछ ऐसा उछाह आ गया कि समय के कांटे पर से ध्यान उतर गया. इतनी देर मुझे किसी दिन नहीं होती. आती हूं और फुर्र से लौट जाती हूं. दूध का डीपो बंद हो गया तो भारी मुश्किल हो जाएगी. तुम्हें चाय कैसे पिलाऊंगी? बाजार में पानीवाला दूध ढाई रुपए लिटर है. स्वाद तो जाएगा ही, पेट्रोल ऊपर से फुंकेगा.

जितना मैं दमयंती को जानता हूं, उसके आधार पर मैं सहज ही कह सकता हूं कि स्वार्थ उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है. उसकी तुच्छता और उसके काइयांपन से मैं अच्छी तरह परिचित था और हमारे झगड़े और बिलगाव के मूल में उसका यही स्वभाव था. पर यह तो सर्वथा अजाना था. उसके स्वार्थ में एक विचित्र-सी तर्कसंगति आ गयी थी.

मन में किसी किस्म की कोई कचोट उठने की कोई वजह नहीं थी. पंद्रह साल पहले उससे चाहे मेरा जो रिश्ता रहा हो, आज उस रिश्ते की कोई संभावना नहीं थी. हमने जुदा होने के पहले एक दूसरे के बीच नफरत की ऐसी दीवार खड़ी कर दी थी जिसके आर-पार उचक कर झांकना भी मुमकिन नहीं था. मगर फिर भी मुझे अपने भीतर एक अनबूझ व्याकुलता अंकुराती-सी लग रही थी और इस अहसास से रह-रह कर मन डरा जा रहा था कि मन के किसी गोपन रहस्यलोक में दमयंती की वासना, उसकी मांग अब भी बनी थी.

इसीलिए मेरे मन में हुआ था कि मुझे वहां से तुरंत कट जाना जाना चाहिए. मुझे उसमें किस्म-किस्म की नवीनता नजर आने लगी थी और यह बेहद खतरनाक बात थी. शायद मन उससे जुड़ने के बहाने ढूंढ़ रहा था.

इसीलिए मैंने झट से कह दिया था— तुम्हें बहुत जल्दी है, तुम जाओ.

कहकर मैं खुद ही ठगा-सा रह गया था. जल्दीवाली बात मैंने उसे चोट पहुंचाने के लिए कही थी, क्योंकि खुद को उससे तोड़ने का कोई-न-कोई बहाना तो चाहिए ही था. पर मेरी बात सुनकर वह एकदम से खिलखिलाकर हंस पड़ी थी और कुछ देर तक मेरी तरफ चुहलभरी आंखों से देखते हुए ही रह गयी थी. बोली थी— कभी-कभी मैं सोचती थी, तुम बहुत बदल गये होगे. न, पंद्रह साल बाद भी तुम तो वही हो. उतने ही ईर्ष्यालु.

वह स्कूटर में चाबी लगा चुकी थी. कसकर उसने चाबी निकाल ली थी और फिर जोर लगाकर स्कूटर को खींच कर स्टैंड पर खड़ा कर दिया था. मेरी तरफ मुड़ कर उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये थे और बड़ी आत्मीयता से अपने खास लहजे में कहा था— ए, खट्टी ही रहेगी? मिट्ठी नहीं करोगे?

कहा था और एकदम से मेरे बाएं गाल में जोर से चिकोटी काट ली थी. मैं अपना गाल सहलाने में व्यस्त हो गया था र वह फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. बोली थी—क्या नखरे करते हो? देख लो, अब मेरे हाथ में नाखून नहीं हैं.

उसने दोनों हाथ के पंजे मेरी आंखों के सामने फैला दिये थे. बेशक, अंगुलियों में वे नाखून नहीं थे, जिनकी वजह मैं उसे शेरनी कहा करता था या जिनसे वह कभी-कभी गुस्से में मेरे चेहरे को बुरी तरह खरोंच दिया करती थी.

पता नहीं क्यों, मुझे उसका उस तरह नाखून दिखाना बड़ा अच्छा लगा था. शायद वह मेरी किसी गोपन वासना या आकांक्षा के बहुत अनुकूल था. मैंने सहज होते हुए कहा था— अच्छा किया, तुमने अपने वे नाखून काट दिये . मैं अब धमकियों से आगे भी जाने लगा हूं. हाथ पकड़ कर दांतों से तमाम नाखून कुतर दे सकता हूं.

—अच्छा? दमयंती ने अपने होंठ मेरी कनपट्टी से छुआते हुए कहा, देखूंगी.

कहकर उसने बड़ी रहस्यभरी आंखों से मुझे देखा था. एकदम वैसे ही अपनी बड़ी-बड़ी बोझिल पलकें ऊपर ही ऊपर फुरफुराते हुए अपनी सहज, निर्द्वंद्व, विमुक्त, ऐच्छिक आत्मीयता से फिर मेरे हाथ पकड़ लिये थे और कुछ दूर पर लगी लकड़ी की बेंच की तरफ मुझे लिये चली गयी थी. खुद बैठ कर हाथ के शरारती झटके से खींचकर मुझे अपने पास बिठा लिया था.

कुछ देर हम दोनों चुपचाप बैठे रहे थे और उस अंधेरे को देखते रहे थे जो आकाश से बड़ी तेजी से उतर रहा था. बीच-बीच में

मुड़कर हम एक दूसरे को इस भाव से देख लेते थे जैसे हमें कुछ बहुत जरूरी कहना हो, पर कुछ कहते नहीं बन पड़ता था. शायद हमारा कथ्य स्वयं हमारे भीतर के अंधेरे में कहीं खो गया था.

थोड़ी देर बाद मैंने अपनी पीठ पर सांप की तरह रेंगते उसके हाथ का अनुभव किया था. वह हाथ रेंगते हुए मुझे घेर कर मेरी पसलियों के नीचे पहुंच गया था और तब अचानक मुझे अपनी पसलियों के नीचे उसकी दो-तीन अंगुलियों की बड़ी तेज चुभन का अनुभव हुआ था.

मैं कुछ वैसे ही चौंक पड़ा था जैसे पंद्रह साल पहले प्रायः गहरी नींद में उसकी अंगुलियों की खुलन से मैं चौंक कर जग जाया करता था और वह उसी तरह मेरी तरफ देखकर मुस्कराए जा रही थी.

ठीक उसी तरह मेरी झुंझलाहट का स्वाद लेते हुए उसने बड़े ही शरारती अंदाज में पूछा— ऐ, मुझसे बहुत गुस्सा हो?

मेरे कानों को वह आवाज बड़ी अच्छी लगी थी. मगर मैंने कोई जवाब नहीं दिया था. उसने उसी शरारती अंदाज में फिर पूछा था— यहां कब तक रहोगे?

—कल तक, मैंने कहा था.

—फुर्सत है? उसने पूछा था.

—क्यों? मैंने अंधेरे में उसकी तरफ देखते हुए बड़े गंभीर और निरासक्त स्वर में जिज्ञासा की थी.

उसने या तो जिज्ञासा के संकेत पर ध्यान नहीं दिया था या जानबूझ कर उस संकेत को कतरा गयी थी. मुझे उम्मीद थी, मेरा सवाल सुनकर अपने स्वभाव के अनुसार वह बेहद गुस्से में आ जाएगी. वह अपनी नजर में वह शाश्वत नारीत्व थी जिसकी वासना से पुरुष कभी मुक्त नहीं हो सकता. अपने इस आकर्षण को छीजा देखकर वह बौरा जाती थी और कई बार उसने अपने बड़े-बड़े नाखूनों से मेरा मुंह बुरी तरह खरोंच दिया था. मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ था. मेरी जिज्ञासा पर वह खिलखिला कर हंस पड़ी थी और मेरी पसलियों के नीचे दोबारा अपनी अंगुलियां कोंचते हुए उसने कहा — देखती हूं, तुम्हारी अक्कल सठिया गयी है. यहां आए हो. मैं यहीं हूं. और मेरे यहां आए बगैर चले जाओगे.

बात इतनी सहज आत्मीयता और अधिकार के साथ कही गयी थी कि मुझे कोई विरोध रचने का अवकाश ही नहीं मिल सका था. कहकर दमयंती एकदम से उठ कर खड़ी हो गयी थी. बोली थी—चलो, तुम्हें तुम्हारे होटल में छोड़ती चली जाऊंगी. और देर हो जाएगी तो खाना भी न बना सकूंगी और होटल में पांच-सात रुपए फुंक जाएंगे. मगर कल सुबह तुम्हें मेरे यहां आ जाना है. मैं सात बजे एक जगह ट्यूशन करने जाती हूं. लौटते में तुम्हें लेती आऊंगी. इसमें पेट्रोल की बचत होगी. ठीक?

उसने झुक कर मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये थे और झटके से मुझे खींच कर खड़ा कर दिया था. मैं सही-सही नहीं बता सकता कि वजह क्या थी, मगर भीतर एक बड़ी गहरी उदासी उग कर मुझ पर छा गयी थी. मैंने भीतर-ही-भीतर अपने मन को टटोलने की कोशिश की थी. क्या समस्त तटस्थता के बावजूद मुझे आज रात के निमंत्रण की प्रतीक्षा थी? मुझे वहां कोई उत्तर नहीं मिला था. उसने स्कूटर चालू करके मुझे पीछे बैठ जाने का इशारा किया था. मैं बैठ गया था. सड़क पर आ कर उसने मुझसे मेरे होटल का नाम पूछा था, मैंने बता दिया था. मेरे होटल के सामने मेरे उतर जाने पर उसने एक गहरी सांस लेकर कहा था— नौ बज गये. ट्यूशन के लिए दो लड़कियां आकर लौट गयी होंगी. चालीस रुपये का भच्चा बैठ गया. और मैंने सुन लिया था. जाने के पहले जितनी खोयी-खोयी-सी आवाज में उसने मुझसे पूछा था— कल सुबह का तय है न? उतनी ही खोयी-खोयी और बेलौस आवाज में मैंने कह दिया था— हूं.

ऊपर होटल के अपने कमरे में पहुंच कर मैंने अपने कपड़े भी नहीं बदले थे और बिस्तर पर जा गिरा था. मुझे अपने बदन में एक अजीब-सी हरारत का अनुभव हो रहा था. सारा बदन अंदर-ही-अंदर कांपता, झनझनाता मालूम हो रहा था. चेहरे में त्वचा के भीतर एक विचित्र-सी दहकती दपदपाहट-सी लग रही थी जैसे सहसा रक्तचाप बढ़ गया हो. आंखों पर बिजली की रोशनी कड़कती हुई-सी मालूम हो रही थी. उससे बचने के लिए मैंने अपनी आंखें मूंद ली थीं.

बदन में सहसा एक बड़ी तेज सनसनाहट दौड़ गयी थी. एकदम व्याकुल होकर मैं एक ही झटके में उठ कर बैठ गया था. मेरी खाना के एक-एक अणु में मोगरे के फूल फूट गये थे और मेरी सांसें उनकी गंध से इतनी बोझिल हो गयी थीं कि उठाये नहीं उठती थीं. मैं बार-बार अपनी जुड़ी फली हथेलियों को सूंघ रहा था और याद करने की कोशिश कर रहा था कि ये हथेलियां कब और कहां दमयंती के कंधों से छू गयी थीं, मगर कुछ भी याद नहीं आ रहा था.. बस, क्षण-क्षण भीतर उदासी घनी और जमा होती जा रही थी.

★ ★

सुबह जब दमयंती ने आकर दरवाजे को नॉक किया था, मैं सोया था. वैसे ही शाम के कपड़ों में. पांव पलंग के नीचे लटके हुए थे और बदन बिस्तर पर एक किनारे लुढ़क गया था. पता नहीं, कब ऐसा हो गया था, क्योंकि मुझे अच्छी तरह याद है, मैंने सुबह को खिड़कियों से झांकते हुए देखा था.

दरवाजा खोलते हुए मुझे सहसा हंसी आ गयी थी. दमयंती को अपने विगत अनुभव को प्रमाणित सिद्ध करने का पंद्रह साल बाद फिर एक मौका मिल गया था. जैसे मैं दरवाजा खोलने के पहले ही यह दावे के साथ कह सकता था कि अब मेरी सांसों में कौन-सी गंध भर जाएगी, वैसे ही मैं यह भी कह सकता था कि दरवाजा खुलते ही वह कहेगी, अरे, तुम भैंस ही रहोगे, आदमी नहीं बनोगे.

मैंने दरवाजा खोल दिया था और दमयंती के उस अनुमानित वाक्य पर ठहाके लगाने को तैयार हो कर मैं एकदम तन कर उसके सामने खड़ा हो गया था. दमयंती ने मुझे देखा था और वही वाक्य कहा था. मेरी सांसों में वही अनुमानित गंध भर गयी थी. मगर ठहाका अंतड़ियों के नीचे जरा-सा गुनगुना कर यकायक मुर्दा हो गया था. दमयंती के चेहरे पर न वह झुंझलाहट थी, न वह गुस्सा था. वह मुझे देखकर मुस्करायी थी और उस मुस्कराहट में जितनी ऊब थी, उतनी ही विरक्ति, जितना संकोच था, उतना ही पश्चाताप.

वह कमरे के अंदर आ गयी थी, मगर मेरे पांव जैसे वहीं चिरा गए थे. मैं चुपचाप कमरे में उसकी गतिविधि को देखता रह गया था. उसने कमरे में चारों ओर नजर दौड़ा कर मेरे सामान का अनुमान किया था और मैंने साफ देखा था, सामान के नाम पर सिर्फ मेरे पास चमड़े के एक छोटे-से सूटकेस को देखकर उसके चेहरे पर एक निश्चितता का भाव झलक आया था. मेरी तरफ देखकर उसने कंठ-ही-कंठ में हंसते हुए कहा था—बौड़मराम, तुम जल्दी से होटल का हिसाब साफ कर आओ. मैं तुम्हारा सामान पैक करती हूं. सवा आठ होने को हैं और नौ बजे एक लड़की से वक्त तय है. मैं पंद्रह मिनट के अंदर घर पहुंच जाना चाहती हूं.

मैं पूछना चाहता था, तुम्हें आज छुट्टी नहीं है. मुझे ले जा कर क्या करोगी? मगर यह सवाल होंठों तक आकर रुक गया था. एक तो इस सवाल में जो मांग छिपी हुई थी, मैं उसे जाहिर नहीं करना चाहता था, दूसरे मुझे एक क्रिया में उकसा कर वह स्वयं में व्यस्त हो रही थी. मैं कुछ देर तक चुपचाप उसे सूटकेस में सामान सहेजते देखता रहा था, फिर दबे पांव कमरे से निकल कर सीढ़ियां उतर गया था. शायद वह नीचे बिल तैयार करने को कह आयी थी और इसलिए मुझे वापस आने में पांच मिनट का वक्त भी नहीं लगा

[illegible] वह मेरे इंतजार में खड़ा था. मुझे देखकर वह बड़ी आत्मीयता से मुस्करायी थी और मेरे निकट पहुंचते ही उसने एक बार चौकन्नी आंखों से आजू-बाजू देखा था और सहसा मेरे गले में अपनी बांहें डालकर मुझे कमरे के अंदर खींच लिया था और फिर सहसा मुझे छोड़ते हुए बोली थी— न, अभी नहीं. घोड़े की तरह महक रहे हो.

कहकर उसने मुझे बड़ी शरारती आंखों से देखा था और मुझसे छिटक कर खिलखिला कर हंस पड़ी थी. मैं एक विचित्र-सी प्रसन्नता में सने अचरज में डूब गया था. न, इस दमयंती के बारे में अब कोई अनुमान नहीं टिकता.

जब मैं दमयंती के घर पहुंचा था, नौ बजने में पचीस मिनट बाकी थे. रास्ते में पिछली बातें उरेह-उरेह कर हम इतना हंसे थे कि उस हंसी में हमारा सारा संगठित निजत्व बह गया था. वह एक हाथ में मेरा सूटकेस उठाये और दूसरे से मेरा हाथ पकड़े हुए मुझे खींचते हुए सीधे अपने बेड-रूम में लिये चली गयी थी. कोने में पड़ी तिपाई पर मेरा सूटकेस पटक कर मुझे दोनों हाथों से बलपूर्वक बिस्तर पर रोपते हुए बड़े प्रसन्न स्वर में बोली थी— मैं चाय लाती हूं. इतने में तुम गुसलखाने हो लो. तुम जितनी देर मुझको हासिल हो, उसका एक पल भी मैं गंवाना नहीं चाहती.

मुझसे कुछ कहते नहीं बन पड़ा था. जब वह चली गयी थी मैं कुछ देर तक यों ही बैठे-बैठे उस कमरे का मुआयना करता रहा था. कमरे की सजावट में उसका सिद्धांत साफ झलक रहा था. वह कहा करती थी. कला की दो ही विशेषताएं होती हैं— सादगी और ताजगी. हर चीज इस तरह अपनी जगह करीने से रखी हुई थी कि लगती थी कि कोई कमरे को अभी-अभी सहेज गया है.

मैं दमयंती की कलात्मक सूझबूझ का कायल रहा हूं. कमरे की साज-सजावट, पहने-ओढ़ने के अंदाज में हमेशा एक सुखद संगठन और अनुरंजक नवीनता उसमें मुझे दीखी है. कभी-कभी तो ताजगी और नवीनता के प्रति उसका यह मोह मुझमें बड़ी झुंझलाहट ला देता था. शाम को लौटकर कमरे की ताजा व्यवस्था में मुझे जरूरत की हर चीज नये सिरे से ढूंढनी पड़ जाती थी. वह ताजगी उसके स्वभाव की मांग थी. एक ऐसी वहशी मांग, जो उसे मुझसे भी काट कर ले गयी थी और इसका उसे कतई अफसोस नहीं था. मगर ताजगी की उस चाह में नवीनता का चाहे जितना आयोजन-संगठन हो, उसमें वह स्थिर कसाव नहीं था, वह स्थिर रूपात्मकता नहीं थी जिसका अनुभव इस वक्त मुझे कमरे में हो रहा था.

एक अस्पष्ट-सी बेचैनी की हालत में मैं उठा खड़ा हुआ था. जाने कैसी एक आशंका मुझमें समा गयी थी और मैं मैं अनायास ही सामने के दरवाजे से भीतर के बरामदे पर निकल गया था. मुझे दमयंती को ढूंढने या पुकारने की जरूरत नहीं हुई थी. वह मुझे दरवाजे के करीब ही आती हुई मिल गयी थी— ट्रे में चाय की प्यालियां लिये हुए.

मुझे देखकर होंठों को एक किनारे पर बटोर कर मुस्कराते हुए बोली थी— हाय, तुम्हारा कुकुरपन अभी तक नहीं गया! मुझे सूंघते फिर रहे हो. और ट्रे लिए हुए कमरे के अंदर चली गयी थी.

उसके उस कथन की भंगिमा में कुछ ऐसा प्राचीन और मौलिक था कि सहसा मुझे मेरा तात्कालिक संदर्भ विस्मृत हो गया था. दरअसल एक कुत्ते की तरह मैं उसकी गंध के सहारे बेडरूम के बाजूवाले कमरे में जा पहुंचा था.

वह शायद उसका सिटिंग रूम था या साधना-कक्ष या ट्यूशन-रूम. एक किनारे एक फूलदार कालीन पर तबलों के जोड़े के पास घुंघरुओं की भारी-भरकम पट्टी पड़ी थी और दूसरे किनारे पर दीवार से लगा सोफासेट पड़ा था. वह तिपाई पर चाय की ट्रे रखकर सोफे पर मेरा इंतजार कर रही थी. मेरे बैठते ही उसने हाथ का प्याला मेरी तरफ बढ़ा दिया था और दरवाजे के पार चिंतित देखते हुए बोली— जल्दी पी लो! मैंने खास मीठी कर दी है. चिमनभाई किसी भी वक्त टपक सकते हैं. तब मजबूरन कटसी में मुझे दोबारा चाय बनानी पड़ेगी. उफ, इन दिनों गैस कितनी मुश्किल से मिलती है. और चीनी तीन रुपये पचास पैसे की पांच सौ.

कहते-कहते अपना प्याला लिये वह उठ खड़ी हुई थी. मैं अभी उसके कथन के दो संकेतों के बीच कहीं स्थिर होने की कोशिश कर ही रहा था कि वह फिर वैसी ही चिंतित आवाज में बोल उठी थी—चिमनभाई किसी भी वक्त टपक सकते हैं. नौ बजा ही चाहता है. वह लड़की भी आती होगी. तुम वक्त जाया मत करना. जितनी देर मैं ट्यूशन करूंगी, उतनी देर में तुम नहा-धो लेना. तुमसे कितनी बातें करनी हैं और तुम कितनी कम देर के लिए मुझे हासिल हुए हो.

आखिरी वाक्य बोलते-बोलते उसकी बड़ी-बड़ी अधमुंदी-सी चिंतित आंखें सहसा दरवाजे से लौट कर मेरी आंखों में खुल गयी थीं. बोध के अनिश्चय और अभिव्यक्त न होने की कोशिश के बावजूद शायद उसे मेरे अंदर कसती हुई ग्रंथियां दीख गयी थीं, क्योंकि उसकी आंखों में अचानक वही बड़ी तेज वहशी चमक पैदा हो गयी थी, जिसकी आंच मेरी हर कोशिश के बावजूद आज तक मेरे लहू में मद्धिम न हो सकी थी.

मैंने अपनी आंखें झुका ली थीं. मुझे अपने अनुभव से सब मालूम था और मुझे कुछ देखने की जरूरत नहीं थी. मैंने जल्दी से प्याले को होंठों से लगा लिया था और एक ही सांस में सारी चाय सुरक गया था. पंद्रह साल में वह चमक देखकर मैं बौरा जाया करता था. तंतु-तंतु में असंख्य अनियंत्रित ज्वार फूट पड़ते थे. पर आज लहू में उस चमक की आंच के मौजूद रहने के बावजूद मन में जाने कैसा एक जड़ अनिश्चय समा गया था. मैं उसकी आंखों की वह चमक अंकोरने के लिए अपनी पलकें तोलना चाहता था, मगर आशंकाओं के बोझ से पलकें तोले नहीं तुलती थीं.

वह ट्रे उठा कर चली गयी थी. ट्रे उठाते हुए उसकी निकटता को मैंने अपने रोओं पर जाना था. पर मुझसे न उधर देखते बन पड़ा था, न उससे कुछ कहने को मैं कोई शब्द उचार सका था. कोई एक परदा था जो मुझ पर गिर गया था. मैं उसे उठाना तो चाहता था, मगर उसके अंदर सुरक्षा की चेतना से भीतर-ही-भीतर अभिभूत भी था.

बेड-रूम से उसने मुझे पुकारा था. और उठ कर इस तरह उस पुकार पर दौड़ गया था, जैसे जन्म-जन्मांतर से मैं उसी पुकार के इंतजार में बैठा था. वह परदे की आड़ में दरवाजे के पाट से लग कर खड़ी थी. अंदर प्रवेश करते ही उसने अचानक मुझे अपनी बांहों में खींचकर कस लिया था और पंजों पर उचक कर मुझे बेहताशा चूमना शुरू कर दिया था.

प्रतिवाद असंभव था, विरोध की चेष्टा अर्थहीन. ज्वार के लौटने पर मुझे छोड़कर हल्के हांफते हुए उसने बड़े प्यार से कहा था—बौड़म! और मुझे उसी तरह कमरे में छोड़कर चली गयी थी.

★ ★

मैं कुछ देर वैसे ही खड़ा इस घटना को मन में कहीं खोजने की कोशिश करता रहा था, फिर सूटकेस से कपड़े निकाल कर संलग्न गुसलखाने में घुस गया था. जब मैं गुसलखाने से निकला था, बाजू के कमरे में घुंघरुओं की झनक शुरू हो गयी थी. मेरा जी हुआ था कि जाकर बैठ जाऊं, लेकिन दमयंती की सुविधा-असुविधा की चिंता से मैंने यह इरादा छोड़ दिया था. वह पलंग के पास ही एक नन्ही-सी मेज पर नाश्ते की तश्तरी रख गयी थी— टोस्ट और उबले हुए अंडे. पर इसको देखकर मात्र भावनात्मक सुख हुआ था, खाने की कोई इच्छा नहीं हुई थी.

राजेंद्र किशोर (जन्म : ७ अगस्त, १९३२) की कहानियां आदमी और आदमी के बीच के रिश्तों को बड़े सूक्ष्म स्तर पर उकेरती हैं. ये कहानियां जहां पाठक को संवेदनात्मक स्तर पर उद्वेलित करती हैं, वहीं उसे जिंदगी की बेहतर पहचान भी करवा जाती हैं.

ठंडी, तेज फुहारों से जी भर नहाने से शरीर के साथ-साथ मन बहुत हल्का हो गया था. मैं बिस्तर पर लेट गया था और मैंने अपनी आंखें बंद कर ली थीं.

कब पिछली रात का जागरण मुझमें सक्रिय हुआ था और कब मुझे नींद आ गयी थी, पता नहीं. मुझे दमयंती ने ही जगाया था—उठो, नाश्ता नहीं करोगे?

पुरानी आदत के अनुसार मैंने आंख खोले बिना ही उसे पकड़कर बिस्तर पर खींच लेने के इरादे से अपना हाथ बढ़ा दिया था, मगर मेरा हाथ हवा में तिरकर खाली लौट आया था. आंख खोलकर मैंने देखा था, वह मेरे पायताने बैठी थी. उसकी गोद में प्लास्टिक के एक झोले में ऊन के कई गोले पड़े थे. उसकी नजर हालांकि मुझ पर टिकी थी, उसके हाथ बुनाई की सलाइयों पर बड़ी तेजी से दौड़ रहे थे.

यह उसकी प्रकृति और सिद्धांत के खिलाफ था. इसीलिए उठकर बैठते हुए मैंने सहज कुतूहल के भाव से पूछा था— क्या बुन रही हो?

—कार्डिगन.

—अभी से?

—अरे ना. उसने बित्ते से बुने हुए अंश की लंबाई नापते हुए बड़े आत्मीय एवं सहज स्वर में इस तरह कहा था, जैसे हमारे और उसके बीच सूचनाओं का तार कभी टूटा ही न हो—तुम जानते हो, अपने कपड़े बुन-सी कर पहनना मुझसे कभी नहीं हुआ. यह तो जया के लिए बना रही हूं. लगभग चौदह की हो रही है. आज इसको पार्सल कर देना बहुत जरूरी है. स्कूल से लड़कियां कश्मीर जा रही हैं न.

जया? कौन जया? यह नाम तो कभी सुना नहीं. मैं पूछना चाहता था—जया से तुम्हारा क्या रिश्ता है? पर इसका अवसर ही नहीं मिला था. वह यकायक गोद से बुनाई का सामान बटोर कर झोले में रखते हुए उठ खड़ी हुई थी. बोली थी—तुम बैठो, मैं जरा किचेन में झांक लूं. गैस का बड़ा खयाल रखना पड़ता है. और एकदम झटकती हुई कमरे से बाहर निकल गयी थी.

मैं चुपचाप वैसे ही बैठा कुछ देर तक जया के संबंध में तरह-तरह के अनुमान करता रहा था. मन इस जया के उल्लेख से कहीं पीड़ित हो गया था और मैं जानना चाहता था कि उस पीड़ा का वास्तविक आधार क्या है? मगर मेरी जिज्ञासाएं मेटने को दमयंती को फुर्सत कहां थी?

आधे घंटे के बाद उसने यह पूछते हुए कमरे में प्रवेश किया था — तुम्हें कूकर की चने की दाल पसंद है न ? और आकर फिर बिस्तर पर बैठते हुए बुनाई का काम शुरू कर दिया था. बोली थी—बस उधर दाल तैयार होगी, इधर यह बांह तैयार हो जाएगी. चावल और मटर की सब्जी बनाते-बनाते यह मिलकर तैयार हो जाएगा. पार्सल तैयार करने में कितनी देर लगेगी? बस, फुर्सत. फिर इतमीनान से बातें होंगी, शाम को जाकर जी. पी. ओ. से पार्सल कर आएंगे.

मुझे जाने क्यों यह सब अच्छा नहीं लग रहा था और रह-रहकर संयमित करने पर भी मुझे अपनी व्यर्थता का अनुभव हो आता था और मुझे अपने आत्मदाह को छिपाने के लिए मन को अनावश्यक कल्पनाओं में उलझा देना पड़ता था. मैं यह कतई नहीं चाहता था कि दमयंती को किसी भी रूप में मेरी असुविधा का अनुमान हो जाए. फिर भी, मेरे मुंह से निकल गया था — दमयंती, तुम इतनी ही व्यस्त रहती हो?

मेरी बात सुनकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. बुनाई को गोद से बिस्तर पर डालते हुए घुटनों पर उठ बैठी थी और उलझ कर मेरे गले में अपनी बांहें डालकर खींच कर मेरे सिर को जोर से अपनी छातियों के बीच भींच लिया था. हंसी से उसके वक्ष में उठते हुए आंदोलनों को अपने चेहरे पर झेलते हुए मैंने सुना था, उसने अपने खास उकसानेवाले अंदाज में फुसफुसाहट की-सी आवाज में कहा था — व्यस्त तो रहती हूं, मगर आज तुम्हें तरसा रही हूं.

पहले मैंने उस गिरफ्त से छूटने की कोशिश की थी, फिर अभिभूत हो गया था. उसे मेरी दुर्बलताएं किस कदर याद थीं! अब उसकी बांहें ढीली पड़ी थीं और आहिस्ता-आहिस्ता मुझसे अलग होकर वह फिर अपनी जगह पर बैठ गयी थी. मैंने अपनी फूलती हुई सांसों को काबू में करने की कोशिश करते हुए उसकी तरफ देखा था. उसका चेहरा रक्त के चाप से लाल भभूका हो आया था और बुनने की कोशिश करती हुई उसकी अंगुलियां सलाइयों पर बुरी तरह कांप रही थीं. मैंने चाहा कि उसे अपनी देह में समेट कर इस ज्वार को वहां पहुंचा दूं, जहां से यह आता है. कुछ इसी इरादे से उठकर मैं उसके पास गया भी था मगर मन के जाने किस निर्देश से उसे छुए बगैर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया था.

बाहर बरामदे पर मैंने कूकर से निकलती सीटी की आवाज सुनी थी. दो-एक मिनट बाद दमयंती ने अपनी ठनकती आवाज में मुझे पुकार कर कहा था — बाहर अकेले क्या कर रहे हो? मगर उस पुकार पर दौड़ जाने की अपनी मांग के बावजूद मैं देर तक बरामदे पर चहलकदमी करता रह गया था. कभी-कभी जैसे अधिक प्रकाश के लिए उकसाए जाने की प्रक्रिया में तेल में डूब कर बाती बुझ जाती है, मेरा मन भी दमयंती के प्रति तीव्र आसक्ति एवं मोह में समाकर कुंठित हो गया था.

दमयंती ने ही बाहर आकर मुझे घेरा था. मैं बरामदे पर एक किनारे खड़ा सूनी आंखों सामने सड़क पर लोगों को आते-जाते देख रहा था. उसकी निकटता का अनुभव कर मैंने घूम कर उसकी तरफ देखा था. मुझे मुखातिब हुआ देखकर उसने बड़े सहज भाव से कहा था — बौड़मराम, बारह बजने को हैं और तुम यहां निश्चित खड़े हो. मेरा खाना भी बन चुका और कार्डिगन भी तैयार हो गया. तुम्हें दोबारा नहाना हो तो नहा लो. खा-पी कर जरा आराम करेंगे फिर जी. पी. ओ जाएंगे. ठीक चार बजे बस मिलती है. पेट्रोल की बचत हो जाएगी. कहकर उसने वैसे ही सहज भाव से फिर मेरी आंखों में देखा था और कार्डिगन को दोनों हाथों से पकड़ कर अपने वक्ष पर फैलाते हुए पूछा था—अच्छा, बोलो तो, यह जया पर कैसा दीखेगा?

सफेद और काली चौड़ी पट्टियों के बीच में नन्हें-नन्हें एक दूसरे पर औंधे चटक लाल त्रिकोण. उस रचना से प्रभावित होकर मैंने हंसते हुए कहा था — मैंने जया को देखा तो नहीं है, मगर कार्डिगन बेशक खूबसूरत है. मगर शायद मेरी वह हंसी झूठी थी या मेरे चेहरे पर कोई भीतरी दंश मेरे अनजाने ही प्रकट हो गया था. उसने कार्डिगन समेट कर कंधे पर डाल लिया था और आकर बिल्कुल

मुझसे सटकर खड़ी हो गयी थी. कुछ देर तक चुपचाप मेरी आंखों में एकटक देखती रही थी, फिर सहसा आवेश में आकर उसने मुट्ठियों में मेरे दोनों हाथ भींच लिये थे. गुस्से में बोली थी—मेरा कोई कसूर नहीं है. मैं तुम्हें जया का पिता बना सकती थी.

एक पल के लिए अचानक मेरी नसों में बड़ी तेज झनझनी दौड़ गयी थी. जया का पिता हुए होने के संभव किंतु व्यतीत सुख से नहीं, उस इतिहास से जिसे सहसा उसने मुझ पर धकेल दिया था. मुझे अपना दम भीतर-ही-भीतर घुटता हुआ मालूम हुआ था. घबरा कर मैंने उसकी आंखों में झांका था. उसकी आंखों में इसकी जितनी शिकायत थी, इसके अभाव का उतना ही गुस्सा भी मुझे दीख पड़ा था. शायद मैं चुप रहकर उसकी वह मुद्रा टाल गया होता, मगर उसके चेहरे पर वह जिद भी थी, जिसने हम दोनों को एक दूसरे से जुदा कर दिया था. मैंने भीतर एक ही साथ बड़ी व्याकुलता और झुंझलाहट का अनुभव करते हुए कहा था—मगर तुम्हारी जिंदगी के उसूल दूसरे थे.

—उसूल उसूल उसूल, चीख को काबू में करने के लिए उसने दांतों को दांतों से कुचलते हुए कहा था—उसूल की बात मत करो. तुम सब मुझे एक मुर्दा गाड़ी समझते हो. जब चाहा जोत लिया, सामान लाद दिया या फिर अगले उपयोग के लिए अपने घर में कहीं सुरक्षित रख दिया. कहते-कहते उसकी आंखें सुर्ख हो गयी थीं और अपनी मुट्ठियों में गिरफ्तार मेरे हाथों को उसने एक खिसियायी बिल्ली की तरह पूरी बेदर्दी से बकोट लिया था और एकदम झटके से मुड़कर मुझे वहीं छोड़कर अंदर चली गयी थी.

मुझे बेहद गुस्सा आ गया था. उस पर नहीं, खुद पर. जो कांच रेशा-रेशा चिनक गया था, उसमें अपनी तस्वीर देखने की अपनी कमजोरी पर. उसने ठीक कहा था, मुझमें मेरा नैसर्गिक कुकरपन बना था. उसकी गंध लगते ही मेरा विवेक मर गया था.

मगर फिर कोई आधे घंटे बाद जब दमयंती ने आकर पीछे से मेरी पीठ पर अपना हाथ रखते हुए पूछा था—ए, मेरी पिटायी करने से तुम्हारा गुस्सा झर जाएगा? तो मुड़कर उसकी तरफ देखते ही मुझे हंसी आ गयी थी. उसके चेहरे पर कुछ ऐसी ही सरलता थी और वह एक नन्हीं शरारती बच्ची की तरह खट्टी करने के बाद मिट्ठी करने के लिए एक बनावटी उदासी ओढ़े हुए थी. मुझे दोनों हाथों से पकड़कर खींचते हुए बोली थी—चलो, नहा लो.

बेडरूम में मुझे बिस्तर के पास छोड़कर वह झटक कर आगे निकल गयी थी और आलमारी से एक पुरानी लुंगी निकालकर मेरी तरफ उछाल दी थी. हंसते हुए बोली थी — इसे चीन्हते हो? यह तुम्हारी ही लुंगी है. नहाकर पहन लेना. तुम जब चले जाओगे, मैं उसे सूघूंगी और अगले पंद्रह वर्षों तक तुम्हें याद रखूंगी.

कहकर वह अपने खास अंदाज में एकदम खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. उसके कथन में जो सूक्ष्म अर्थ-संकेत था, वह मुझमें पहुंचा तो था और मैंने तुरंत उसकी यातना का अपने भीतर अनुभव भी किया था, पर उसकी खिलखिलाहट इतनी सहज और उन्मुक्त थी और लुंगी से उकेरा हुआ इतिहास इतना उत्तेजक और कामाद्रिमुख कि उस यातना को पनपने का मौका ही नहीं मिला था. मैंने लुंगी उठाकर कंधे पर डाल ली थी और उसकी खिलखिलाहट में अपनी खिलखिलाहट जोड़ते हुए गुसलखाने में घुस गया था.

जब मैं गुसलखाने से निकला था, मैं एक दूसरा आदमी था. मेरी गुनगुनाहट सुनकर उसने आंगन के बरामदे से आवाज दी थी—यहीं आ जाओ. मैंने वहां पहुंच कर देखा था, एक छोटी-सी मेज पर खाना लगाये वह मेरे इंतजार में बैठी थी. मुझे देखते ही बड़ी प्रसन्न आवाज में उसने कहा था—चलो शुरू हो जाओ. एक बज चुका है. चौका समेटने हुए घंटा भर लग ही जाएगा. बस चार बजे है.

मैंने सहज उत्सुकतावश पूछा था— क्यों, नौकरानी नहीं है क्या?

मुंह में डाले हुए निवाले को जल्दी से निगलते हुए अपनी बड़ी-बड़ी आंखों को और भी फैलाते हुए कहा था—बाप रे! नौकरानी? यहां? जरा-से काम के पचास रुपए मांगती है. कहकर वह कुछ देर थाली में हाथ रोपे हुए मेरी तरफ देखते हुए जाने क्या सोचती और मुस्कराती रही थी. फिर उसने यकायक लजाकर अपनी आंखें झुका ली थीं और एकदम धीमी आवाज में बोली थी — तुम्हें ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ेगा.

मैंने देखा था और अवाक् देखता ही रह गया था.वही दमयंती. इसके बाद कुछ नहीं किया जा सकता था. मैंने थाली में रुपे हुए उसके हाथ पर अपना कांपता हुआ बांया हाथ रख दिया था और कुछ देर वैसे ही रखे चुपचाप बैठा रह गया था.

जब हम खा कर उठे थे, वह बहुत प्रसन्न थी. मेज पर से थालियां बटोरते हुए उसने चहकती हुई आवाज में कहा था — तुम चलो, मैं मिनटों में आती हूं.

मैंने एक नजर उसके प्रसन्न चेहरे पर डाली थी और जाकर बेडरूम में लेट गया था. आंखें मूंद पड़े-पड़े चौके से आती हुई बर्तनों की खनक मुझे जितनी पीड़क लग रही थी, जाने क्यों मन को उतना ही अच्छा भी लग रहा था.झपकी-सी आ गयी या खुशफहमियों में खोए-खोए मैं तंद्रा में चला गया था, क्योंकि जब दमयंती ने मेरे पास लेटते हुए मुझे अपनी तरफ घुमाने की कोशिश की थी, मुझे वैसा ही लगा था जैसे ताजा नींद टूटने पर लगता है. कुछ देर मैं उसे भकुआया-सा देखता रह गया था.

जब तंद्रा टूटी थी, मुझे एक ही साथ बहुत-सी बातें दीख पड़ी थीं. वह नहा कर आयी थी. उसने अपने बाल खोल कर छितरा रखे थे और उसका कुछ हिस्सा इस तरह रख छोड़ा था कि मैं उस पर अपना मुंह रख सकूं. उसने वही गाउन पहन रखा था, जिसमें रेशम के फुंदों की सिर्फ दो गठानें थीं — एक गले के नीचे, एक कमर के पास. और उस पारदर्शी गठन के अंदर सिर्फ उसकी गोरी-गोरी गुदाज देह थी. नृत्य से कसी हुई और उम्र से बेनियाज.

व्याकुल होकर उसे अपनी देह में समेटते हुए मैंने शिकायत की थी—बड़ी देर लगा दी. मैं जानता था, वह कुछ नहीं बोलेगी. मैंने इसीलिए यह शिकायत की थी. मुझे मालूम था, वह जवाब में सिर्फ मुझमें और व्याकुल होकर घुल जाएगी. मगर उसने दाहिने हाथ में बंधी घड़ी देखने के लिए मेरे गले में लिपटा अपना हाथ खींच लिया था और बोली थी– हां, देखो न, तीन बज गए.

जो वह बोली थी, उसमें कुछ नहीं था.मगर मुझे लगा था, दमयंती वर्तमान में नहीं थी, अचानक कहीं चली गयी थी. मैंने कंधों से तनिक सिर उठाकर उसके चेहरे को देखा था और हमारी आंखें टकरा गयी थीं. मैं उन वासनाकुल आंखों को चीन्हता था, मगर वह चेहरा? शायद दमयंती मेरा भाव बूझ गयी थी. उसने फिर से मेरे गले में अपनी बांहें डाल दी थीं और एकदम पागलों-सी मेरे बदन से चिपट गयी थी. मगर अब मैं क्या कर सकता था?

न, मुझे इसकी चिंता नहीं थी कि दमयंती पंद्रह साल में एक वेश्या से किसी एक जया की मां हो गयी थी और जब वह नहाकर मेरे पास आकर लेटी थी, उसके ललाट पर सिंदूर की एक बड़ी-सी बिंदी चमक रही थी. दमयंती के संदर्भ में पाप-पुण्य से मेरा क्या वास्ता? मगर मैं उस अग्नि-रेखा को क्या कर सकता था, जिसका उसे कोई ज्ञान नहीं था, मगर जिसे लांघने की प्रक्रिया में अचानक उसका वर्तमान जल कर भस्म हो जाता था. इसीलिए, थोड़ी देर बाद उठते हुए मैंने उसके ललाट का होंठों से हल्के स्पर्श किया था और उसको इस असफलता का दुख न हो, इसलिए कहा था — उठो, तैयार हो जाओ. कहीं चार बजे की बस छूट न जाए. □□□

हरेंद्र भवन, सलेमपुर छपरा (बिहार)

—प... ...आ. . .

मैंने एकदम से जीभ काट ली थी. थोड़ी देर पहले का उत्साह और अपनत्व जैसे उड़ गया था. ओफ! क्या कह गया! मैंने चोर निगाहों से उसकी ओर देखा था. उसका काला चेहरा एकदम छोटा और फक्क पड़ गया था. मैंने अपनी ही जीभ दांतों के बीच दबा ली थी—आखिर क्या हक है कि दूसरे को बाध्य करूं कि वह अपने आपको बौना होते जाना महसूस करे. क्या हक है? दुख और पश्चाताप से गर्म कनपटी की नसें तड़तड़ करने लगी थीं. मैंने तड़पती निगाह कमरे में चारों ओर घुमायी थी.एकाएक जैसे टेबल,आलमीरा और ड्रेसिंग टेबल की दराजें खुल गयी हों और उनमें लुढ़कती-टकराती सोडा और क्लैकनाइट की खाली बोतलें खनखना रही हों. कानों में एक तीखा दर्द उठा था—एक ऐसा दर्द जो कुछ भी चीरता या काटता न हो, सिर्फ टकराता हो.

मैं घबरा कर तेजी से उठा और झपटकर आलमीरा और ड्रेसिंग टेबल की ओर दौड़ा. दराजें बंद थीं, फिर भी दराजों के हैंडल पर पड़ी हथेली दबी जा रही थी. दराजें बंद थीं, फिर भी खाली बोतलों की आवाजें रिस रही थीं. . .रिसती चली जा रही थीं. चेहरे और गले पर पसीने की बूंदें झलकने लगी थीं. मैंने गले पर हाथ फेरते हुए उसकी ओर देखा था और लगा था हाथ चप्पू की तरह लहरें काट रहा है.

वह पलंग की किनार पर ऐसा बैठा था जैसे खड़ा हो. तीखी चुप्पी से भरी और मर्मांतक पीड़ा से तार-तार उसकी नजर बाहर हवा को टटोल रही थी. क्या ढूंढ़ रहा होगा वह? अपना अभी-अभी बीता अतीत. क्या बंद दराजों से रिसती खाली बोतलों की आवाजें उसे भी महसूस हो रही थीं?

कमरे की मुर्दा हवा जग और गिलास के टकराने की आवाज से ऐसे तिड़क गयी थी जैसे कोई घाव जल रहा हो. वह गिलास में पानी भर रहा था. उसने जेब से दो मेनड्रेक्स की गोलियां निकालीं और हलक के नीचे उतार गया था. थोड़ी देर बाद उसने एक गिलास पानी और पिया था और पलंग पर लेट कर बेफिक्र और विजयी नजर से मेरी ओर देखा था—तुम साले खाना खिला कर मेरे दो रुपये खर्च कराना चाहते थे न. . .सब समझता हूं न. . .सब समझता हूं. .हूं. . . .

दस मिनट बाद ही वह घुटनों को पेट में धंसाए, दीवार की ओर करवट लिये सो रहा था. बारह बजने को थे. चिलचिलाती धूप परदे को हटा कर बार-बार आती-जाती जा रही थी. वह खर्राटे भर रहा था और मैं दिन के उजाले में भी उसे पहचानने की कोशिश कर रहा था. सारी कोशिश महज एक गडमड छटपटाहट के सिवा और कुछ नहीं थी क्योंकि खाली बोतलों और मेनड्रेक्स की गोलियों के बीच में सिर्फ आठ महीनों का अर्सा था. इसके बावजूद कि वह इस छोटे से अर्से में काफी कुछ मुझसे खुल चुका था, मैं चकित था कि अभी भी बहुत कुछ अजाना है. और यह कम त्रासदायक स्थिति नहीं थी कि पहचानने की हर कोशिश उसे और अपरिचित बनाये दे रही थी.कई बार सोचता काश, वह बेकार होता और उस पर अपने बड़े भारी परिवार का बोझ होता. छोटे भाई के पढ़ाने या बहन की शादी की चिंता होती तो कम से कम इस पीड़ा, त्रास और निराशा भरी स्थिति के पीछे यह भयावना और नकली खालीपन तो नहीं होता. परंतु ऐसा नहीं था. वह एक संपन्न परिवार का लड़का था. खुद डाक्टर था. कुछ दिनों पहले तक उसका खर्चा सात सौ से ऊपर था. चार सौ अस्पताल से मिलते थे, शेष घर से नियमित रूप से आ जाते थे, वह घर लिखे या नहीं.

विदेश

• प्रेम कासलीवाल

—सोचता हूं, यह जाब छोड़ दूं. एक दिन उसने बेहद उदासी से कहा था. पता नहीं क्या सोच रहा था. सिगरेट जली हुई थी, फिर भी वह जलती हुई तीली सिगरेट के पास ले गया था और फिर घबराकर एक दम जलती हुई तीली खिड़की के बाहर फेंक दी थी.

मैं चुप रहा था. वह कई बार कह चुका था कि सिर्फ कुछ करने के लिए कर रहा था. यह भी कोई काम है, साला क्लर्की है, क्लर्की. वह गुस्से में भर कर बोलता और आग्नेय नेत्रों से मुझे देखता जैसे मैं इतना गलीज काम करने के लिए उसे बाध्य कर रहा होऊं. यह सही था कि मैंने , जब तक कोई दूसरा सही काम न मिले, तब तक यहीं 'अटेच' रहने की सलाह दी थी. ठीक है, प्रायवेट अस्पताल है. किसको फुरसत है कमाने से जो सिखायेगा. फिर भी जब तक. . .

—तुम जे. जे. में क्यों नहीं अप्लाय करते. मैंने सिर्फ उसे उम्मीद बंधाने के लिए कहा था परंतु वह जैसे फट पड़ा था—नानसेंस. पहले खुद के कैंडिडेट, फिर दूसरे बंबई के कालेजों के, फिर महाराष्ट्र के तब जाकर हम आउटसाइडर. . .विदेशी. उसमें भी मिनिस्टिरियल लेवल की पव्वेबाजी. . .

—तुम्हारा भी तो 'लग्गा' होगा बच्चू! स्थिति का पैनापन कम करने के लिए मैंने मजाक में कहा था.

—हां. . .आं. . .तभी तो इस तरह पिटा. . .वह एकदम चुप हो गया था. बाहर शून्य में देखने लगा था. गर्म पानी के गिलास में पड़े बर्फ के टुकड़े की तरह उसकी आंखों की पुतलियां गलती जा रही थीं. मैं एक बेहद नर्म नजर उसकी ओर डाल कर रह गया था जैसे उस गर्मी को सहलाने की कोशिश कर रहा हूं.

—तुम यहां क्यों आए? उसने सिगरेट का धुंआ छोड़ते हुए आश्चर्यजनक ढंग से स्थिर और एकाएक दृढ़ स्वर में कहा था. मुझे लगा था, एकाएक वह प्रतिद्वंद्वी हो गया है. उसने यह पूछ कर जैसे ढेर सारे अंगारे आंखों में फेंक दिये थे. आंखें खौलते पानी में पड़े आलुओं की तरह बाहर निकली आ रही थीं. नीरेन. . .प्लीज. मैं बेहद दयनीय और भिखमंगी आवाज में बुदबुदाया था. यह कोई नया प्रश्न नहीं था. मैंने अपने से कई बार पूछा था और लहूलुहान हो आया था. मैं स्वयं उन इने-गिने दिनों को भूल जाना चाहता था जो मैंने डिग्री लेने के बाद उस छोटे-से गांव की डिसपेंसरी में बिताये थे और जो एक पूरी जिंदगी से कम नहीं थे. एक धूल से मढ़ी बोतल थी, जिसमें रंगीन पानी भरा था (मुझे उसे 'पानी' कहते हुए शर्म आनी चाहिए) जिससे मुझे सिरदर्द भी दूर करना होता और फोड़ा भी चीरना होता. कई दिनों तक वह मिक्श्चर बांटता, कभी खाने के पहले तो कभी खाने के बाद लेने को कहता परंतु फिर दूसरे दिन बढ़ते हुए फोड़े को देख कर मैं खाट पर बैठ सिर पकड़ कर इतनी जोर से दबाता. . .इतनी जोर से दबाता. . .मुझे लगता मेरे बाल पीब के तालाब में तैर रहे हैं. . .भारी दुर्गंध के मारे दम घुटा जा रहा है. . .नाक जैसे बंद हो गयी है और कोई अदृश्य और भयानक प्रेत मेरी ओर रंगीन पानी से भरी बोतल लिये अट्टहास करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है. . .

—सर्जन बनने के लिए! क्यों! ! वह बेहताशा हंसे जा रहा था. हवा में तेजाब ही तेजाब था और मैं दोनों हथेलियों से चेहरा ढंप कर चीख पड़ा था.

—शट अप. आई से ए. .ए. .शट.

—डोंट बी एक्साइटेड, माइ ब्वॉय. डोंट. उसकी जहरीली हंसी जैसे बंद होने का नाम ही नहीं ले रही थी—तुम ही बताओ, एक फोड़ा भी चीरने को मिला अभी तक. तुम तो साल भर बाद एम.एस. की परीक्षा दोगे. . .

मेरी सारी नसें झनझना उठी थीं.मैं तेजी से उठा था. एक भयानक उत्तेजनावश उस पर चढ़ बैठा था. मेरी लुंजपुंज हथेलियां उसके गले से लिपटी थीं. मैं जितनी अंगुलियां मोड़ने की कोशिश करता, सारा शरीर शिथिल होता जाता.

—उठो! उसने बेहद तिरस्कार से कहा था.

मैं लाचारी से हांफता हुआ उतर कुर्सी पर बैठ गया था. वह चुप था और मेरी ओर लगातार घूर रहा था. उसके ओंठों के पास बिखरा तीखापन और आक्रामकता उड़ गयी थी और वह मुझसे भी ज्यादा दयनीय हो आया था. मुझे आश्चर्य था कि मैं ऐसा अच्छा मौका क्यों चूक गया—आखिर वह भी यहां क्यों आया? वह भी तो सिर्फ फार्म भरा करता है. उस दिन डा. मेहता को असिस्ट करते हुए उसकी आंखें गीली नहीं हो आयी थीं? रिट्रेक्टर ढीला होते ही डा. मेहता चीखे थे और उसने रिट्रेक्टर कस कर पकड़ लिया था जैसे अपने आपको पकड़ लिया हो. उस सारे दिन वह अपने प्रति घृणा से भरा रहा था जो व्यर्थता के तीखे अहसास से निचुड़ी थी. बिना खाना खाये वह बहुत देर तक आरामकुर्सी में करवट बदलता रहा था. मैं सोने का बहाना किये लेटा था परंतु उसकी हर एक हलचल मेरी बरौनियों में से छन रही थी. वह उठा था. ड्राज में से उसने लेटरपैड निकाला था और बहुत देर तक उस पर लिखता,काटता रहा था. वह बाथरूम गया तो मैंने देखा—लेटर पैड उसके आड़े-तिरछे नाम से भरा था और नाम के आगे बी. ए. की डिग्री लिखी देख मेरी आंखों के सामने मरीजों के केस-शीट्स, इनवेस्टिगेशन फार्म, समरीज और डिस्चार्ज कार्ड फड़फड़ाने लगे थे—किसी कौवे के पंखों की तरह. आखिर इतने कागज रंगने के लिए बी. ए. की डिग्री काफी नहीं है—मेरे जेहन में यह खयाल भरसक दबाने के बाद भी बार-बार उभर रहा था.

मेरी पलकें गीली होने लगी थीं और इसके पहले की वह आये, मैं भी बाथरूम में घुस गया था.

★ ★

उस शाम को वह बेहद खुश था. स्कूटर को स्टैंड से उतारता हुआ वह बेहद निश्चित और तनावहीन लग रहा था. उसे देख कर इस शहर में कहीं सूना बस-स्टॉप दिख जाने जैसा अहसास हुआ था.

—कहीं जा रहे हो?

आवाज सुन कर वह मुड़ा था और स्कूटर को वापस स्टैंड पर लगा कर सिगरेट का धुंआ छोड़ते हुए बोला था—चल रहे हो?

—कहां?

—भाई जान का फोन आया था. यू. के. से लेटर आ गया है.

—सच! कानग्रेचू. . .

मैं नहीं जानता हूं, मैं ही पूरा नहीं बोल पाया था या उसकी हंसी के बीच अपने शब्द नहीं सुन पाया था. बाद में सोचा था तो कहीं किसी कोने में मेरे उन सारे दोस्तों के खत फड़फड़ा रहे थे जो इंग्लैंड में बेहद अपमानजनक स्थिति से घिरे दिन काट रहे थे, जिनके लिए हल्के और झिल्लीदार अंधेरा और धुंधले रोशनी के धब्बों में फर्क कर पाना मुश्किल हो रहा था. वे लौटने की सोचते थे परंतु आसपास आ घिरते ढेर सारे प्रश्न चिन्हों को समझते वे खुद प्रश्न चिह्न बन जाते जिन्हें वे खुद समझ रहे होते.

—कब तक लौटोगे? मैंने किसी गहरी लंबी और अंधेरी खोह से निकलते हुए पूछा था.

—आज तो प्रोग्राम होगा!

मैं प्रोग्राम से मतलब समझता था. महीने में कम से कम दो बार वह उसके साथ सारी रात किसी होटल के कमरे में गुजारता था और दूसरे दिन देर तक सोता रहता था.

—यू गो, डा. मेहता 'राऊंड' पर आने वाले हैं. एकाएक मुझे लगा कि मुझे यह बात नहीं कहनी चाहिए थी. 'बेस्ट आफ लक' कहते हुए उसके ओंठ व्यंग्य से दाहिनी ओर खुल गये थे. मैंने देखा तो कट कर रह गया था. निरर्थकता के तीखे बोझ से भारी कदमों से मैं इन्क्वायरी पर खड़ा डा. मेहता का इंतजार करने लगा था.

—यस डार्क. मैं एकदम चौंक पड़ा था. सामने डा. मेहता खड़े थे. मैं मरे-मरे कदमों से उनके साथ हो लिया था. लिफ्ट ऊपर गयी थी और मैं चाह रहा था लिफ्ट घंटे भर तक नहीं आये. उम्मीद थी कि इस अर्से में मुझमें हिम्मत आ जायेगी और मैं स्थिर और तटस्थ स्वर में कहूंगा—आ ऐम सारी, सर. आय हैव रिजाइंड फॉम टुडे. परंतु मैं आज तक ऐसा नहीं कह पाया. आगे लिफ्ट का दरवाजा खुला था और मैं उसमें घुस गया था. बंद लिफ्ट में डा. मेहता के साथ खड़े ढेर सारे शब्द कान में भनभना रहे थे—कल इसका एक्सरे करवा लो. . .नंबर दो का. . .ब्लड नंबर दस के स्पाइनल-सर्पोट के लिए केस सर्जिकल को फोन किया. . .दस को डिस्चार्ज कर दो.

—व्हाट हैपंड टू यू. . .डा. मेहता चीखे थे.

लिफ्ट पांच माले पर रुकी थी. दरवाजा खुला था और मैं तीखे दर्द से आंखें मींचे खड़ा था.

—ओह! मैं धीरे से बुदबुदा कर बाहर निकल आया और हाथ में कागज के टुकड़े और पेन लिये घूमता रहा था. कालिज की सोशल गैदरिंग में मैंने एक ड्रामे में मुनीम का पार्ट अदा किया था. प्राइज मिला था. क्या मुझे अब फर्स्ट प्राइज नहीं मिलना चाहिए?

रात को दरवाजा बज रहा था. मैंने घड़ी देखी थी—कौन होगा? वह तो किसी होटल या कोलाबा के किसी कमरे में होगा.

—तुम? आज प्रोग्राम नहीं हुआ क्या?

—प्रोग्राम! प्यारे दो सौ रुपये का माल छाना है आज तो.

—फारेनर थी क्या?

—चुप, साले! वह एकदम चीखा था और फिर धीमे और एक तिरस्कार भरे स्वर में बोला था—हिंदुस्तानी थी.

फिर एक सिगरेट जलाते हुए बोला—लेटर देखोगे! लो.

उसने एक लिफाफा मेरी ओर बढ़ाया था.

—तो तुमने डिसाइड कर लिया है?

—डिसाइड करने को है ही क्या?

—फिर भी. . .नितिन का खत आया था लंदन से. तुमने पढ़ा था, क्या हालत. . .

—हूं. हालत. जानता हूं. वह चीखा था—परंतु एक कुत्ते के लिए इससे ज्यादा शर्मनाक और हालत क्या होगी कि वह अपनी ही गली में पिटता रहे! खैर छोड़ो. पियोगे? बैट सिक्स्टी नाइन है.

वह बोतल खोलने लगा था और मैं पीछे कमर के नीचे कुछ ढूंढ़ने के लिए हाथ फेर रहा था.

मैंने गिलास में थोड़ा सोडा और डाला था और एक घूंट निगल कर उसकी ओर देखा था—फादर से पूछ लिया?

—क्या पूछना!

—क्यों? कुछ कम नहीं, तीन हजार की बात है.

—छोड़ बे. कल फोन कर लूंगा. टी. एम. ओ. कर दें. टिकट, वीसा, सभी काम बाकी है.

सुबह-सुबह पेशाब करने को उठा था तो वह टेलिफोन के पास खड़ा था. सुबह की धुंधली रोशनी में उसके ओठों और पेशानी पर चिपका पसीना चमक रहा था.

—आप टी. एम. ओ. कर रहे हैं या नहीं! यह एकदम नयी आवाज थी, जो मैं सुन रहा था. क्या वह फादर से बात कर रहा है?

दूसरे ही पल उसने फोन फेंक दिया था और लगभग हांफता हुआ कमरे में घुस गया था. पीछे-पीछे मैं भी घुसा था.

—फादर थे? मैंने पूछा था.

उसने नहीं सुना था या कुछ और ही सुना था. वह तीसरी या चौथी बार बुदबुदा रहा था—समझते क्या हैं! पैसा नहीं देंगे तो मैं नहीं जाऊंगा. . .देख लेना. . .बस फरमा दिया, अभी चले आओ. अरे, पर यह तो बताओ कि करूंगा क्या वहां आ कर. . .कहा नहीं था—सिंह दोस्त है, संयोग से 'हैल्थ' में डिप्टी मिनिस्टर है. . .कहीं

प्रेम कासलीवाल (जन्म : अप्रैल, १९४७) की कहानियों में युवा आक्रोश के तो दर्शन होते ही हैं, युवा पीढ़ी की रचनात्मक छटपटाहट भी दिखायी देती है. पेशे से डाक्टर हैं, इसलिए इनकी अनेक कहानियां भी चिकित्सा के क्षेत्र से निकल कर आयी हैं.

डिस्ट्रिक्ट प्लेस में ही पोस्टिंग करवा दो, परंतु नहीं. . .

बुदबुदाते हुए उसका चेहरा कुरूप हो उठा था. उसने अलमारी और टेबल की दराजें झटके से खींची थीं और ब्लैक नाइट, बैट सिक्सटी नाइन और सोड़े की खाली बोतलों को गरदन से पकड़ कर कमरे के बाहर पटक दिया था—वार्ड ब्वाय से कहना, फेंक दे!

नहा कर लौटा तो देखा, वह कमरे में नहीं था. आठ बजे थे. नौ बजे तक तो वह उठता ही नहीं था. कहां गया होगा. बाथरूम? बहुत देर तक नहीं आया तो मैंने चाय पी और अस्पताल चला गया.

—सुबह खाना कहां खाया? मैंने पूछ तो लिया परंतु प्रत्युत्तर में एक बेहद दयनीय नजर पा कर अंदर तक हिल गया.

वह बिस्तर पर लेटे-लेटे सोने का बहाना कर रहा था, बार-बार अधखुले दरवाजे से उसकी दृष्टि मेस में घूम रही थी.

पानी पीने उठा तो वह बोला—देख, मेस का वार्ड ब्वाय चला गया क्या?

—नहीं तो! क्यों?

—यूं ही उसने बेहद मरे हुए स्वर में कहा. कब जाता है वह?

—ग्यारह बजे!

★ ★

दरवाजे की खटखटाहट से नींद खुली. बत्ती जलायी. उसका पलंग खाली था. कहां गया होगा? सोचते हुए दरवाजा खोला तो देखा अस्पताल से वार्ड ब्वाय था. धीरे से आवाज दी—अशोक.

एकाएक गिलास टेबल पर गिरा और हवा हड़बड़ा गयी. काले और सुनसान मेस में एक छाया खाना खा रही थी. मैंने स्विच ऑन किया तो वह हड़बड़ा कर पलटा जैसे चोरी करता हुआ पकड़ा गया. फिर संभलने का असफल और असहज-सा प्रयास करते हुए बोला था—नींद नहीं आ रही थी, पर बोलते-बोलते वह अजीब से ढंग से हंसा था.

वह गहरी नींद सो रहा था परंतु मारे भूख के मुझे नींद नहीं आ रही थी. मैं बार-बार उसकी ओर देख कर खुद को बहलाने की कोशिश कर रहा था, परंतु मेस से आती थालियों, चम्मचों और गिलासों की आवाजें मेरे अंदर अंगारे फेंक रही थीं. मैं ट्रेंक्स खा कर सो जाऊं. . .नहीं, डा. मेहता दो बजे आपरेशन करने वाले हैं. . .

मैंने तकिये के नीचे से गोली निकाली और निगल गया. धीरे-धीरे नींद एक हलकी-सी खुमारी की तरह चढ़ने लगी, फिर भी भूख की तिलमिलाहट कम नहीं हो रही थी.

पैंट और शर्ट पहनते हुए लगा जैसे किसी ने चारों तरफ से सी दिया हो. कमरे से बाहर निकला और धीरे-धीरे कदमों से मेस की तरफ बढ़ने लगा. जितने धीरे मैं मेस की तरफ जा रहा था, अपने ही अंदर कहीं उतनी ही तेजी से मैं मेस से दूर भाग रहा था.

मुझे लगा, मैं बेतहाशा भागने से, नहीं इधर-उधर भागने से, बेहद ढह चुका हूं. बेहद. □□□

३/ ३६ टाटा कंपाउंड, इरला, अंधेरी (प.), बंबई–५८

एम. एल. ए. साहब

• राही मासूम रज़ा

महत्वपूर्ण बात यह है कि वह एम.एल.ए. नहीं थे. जो वह एम. एल. ए रहे होते तो उनकी तरफ मेरा ध्यान ही न गया होता क्योंकि आज एम. एल. ए होने में क्या बड़ाई है. हर सातवां-आठवां आदमी या तो एम. एल. ए है या होना चाहता है. क्योंकि कोयले की इस दलाली में मुंह तो जरूर काला होता है, पर मुट्ठी गर्म रहती है तो आज मुंह की क्या हैसियत. असल चीज तो मुट्ठी है. और एक आसानी यह भी है कि यह काले लोगों का तो देश ही है, फिर मुंह की कालिख दिखाई किसे देगी, इसीलिए ज्यादातर लोग एम. एल. ए या एम. एल. ए के रिश्तेदार बनने की फिक्र में दुबले या मोटे होते रहते हैं. कहने का मतलब यह है कि एम. एल. ए होने या न हो पाने में कोई नयापन नहीं रह गया है. आपको हर मुहल्ले में दो-चार एम. एल. ए या एक्स एम. एल. ए या एम. एल. ए होते-होते रह जाने वाले मिल जायेंगे. तो फिर ऐसों की कहानी सुनाने में क्या मजा? और ऐसों की कहानी ही क्या इसीलिए एम. एल. ए साहब में मेरी दिलचस्पी तब बढ़ी जब मुझे यह मालूम हुआ कि वह एम. एल. ए हैं ही नहीं.

चुनाव के दिन थे. हर तरफ बड़ी चहल-पहल थी. लोग अपने-अपने कारोबार छोड़ कर चंद दिनों के लिए नेता बने ठस्से से तकरीरें करते घूम रहे थे.

कड़कड़ाते जाड़ों की रात थी. मैं सिनेमा देख कर लौट रहा था कि कान में आवाज आयी— और अब मैं एम. एल. ए साहब से दरख्वास्त करता हूं कि वह माइक पर तशरीफ लायें और अपने खयालात से आप लोगों को फायदा उठाने का मौका दें.

सामने वाली गली में दरी का फर्श लगा हुआ था. सामने कुछ बच्चे रूमाल के चूहे दौड़ा रहे थे. उनके पीछे बूढ़े चुनाव लड़ने वाले की चाय पी कर उसका विरोध करने वाले की बात कर रहे थे.

कि एक आदमी, दुबला-पतला, रुखा खड़ा, सांवले रंग वाला सफेद शेरवानी वाला माइक पर आया. गला साफ करने के बाद बोला— तकरीरें तो आजकल आप लोग दिन-रात सुन रहे होंगे. मैं तो सरकार से कहने वाला हूं कि चुनाव में खर्च पर रोक-टोक करने का उसे कोई हक नहीं है. साहब यह बाबू दुवार्का प्रसाद अपने चुनाव में सरकारी पैसा तो फूंक नहीं रहे हैं कि सरकार के पेट में दर्द हो रहा है. पर तकरीर राशन कार्ड पर मिलनी चाहिए. जो एक वोटर को दो से ज्यादा तकरीरें चटाये, उस पर मुकदमा चलाना चाहिए और उसकी जमानत जब्त कर लेनी चाहिए.

यह आवाज मेरी साइकिल का पीछा कर रही थी. मैं पलट आया.

एम. एल. ए. साहब बड़े मजे में बोल रहे थे— तो साहब मैं तकरीर नहीं करूंगा. मैं तो तीन सौ मील का सफर करके और दो रातें आंखों में काट के आपके पास सिर्फ यह कहने आया हूं कि कांग्रेस को वोट देने से क्या फायदा? अब तक क्या फायदा हुआ जो अब कोई फायदा होगा. जनसंघ और मुस्लिम लीग और इस तरह की दूसरी पार्टियां तो न किसी गिनती में, न शुमार में. नफरत के इन ताजिरों से हमें या आपको क्या लेना-देना? अब आइये, लाल झंडे वालों को लीजिए. तो साहब, लाल झंडा तो सौ फीस दी विदेसी है. . . वह रुके. भीड़ को घूरा, चेहरा जरा सख्त पड़ा और फिर कड़कदार आवाज में बोले— अगर यह सच है कि हिंदुस्तान आजाद हो गया है तो आपके वोटों का हकदार सिर्फ कोई आजाद उम्मीदवार ही हो सकता है. और बाबू दुवार्का प्रसाद से ज्यादा आजाद तो कोई दूसरा उम्मीदवार है नहीं. . . .

बाबूजी के लोगों ने तालियां बजायीं.

एम. एल. ए. साहब मुसकराये. बोले— तो मैं यह अर्ज कर रहा था कि मैं कोई तकरीर नहीं करूंगा. हां, आप लोगों में से कोई साहब कोई सवाल करना चाहें, तो मैं हाजिर हूं.

कोई साहब नहीं बोले.

एम. एल. ए. साहब ने कहा—कोई बात नहीं. मैं खुद ही आपकी तरफ से सवाल भी करूंगा और जवाब भी दूंगा. आप कह सकते हैं कि बाबूजी को वोट देने से क्या फायदा, वह कर ही क्या सकते हैं? बिलकुल सही सवाल है... आपका, और मैं इस सवाल का सीधा जवाब देता हूं. बाबूजी एम.एल. ए. हो जाने के बाद आपके लिए कुछ नहीं करेंगे. पर अब मैं पूछता हूं कि अब से पहले आप जिन लोगों को यहां से एम.एल.ए. बना चुके, उन लोगों ने आपके लिए क्या किया? कितने तीर मारे? कितने मैदान जीते? तो फिर आप बाबूजी ही से यह सवाल क्यों करें? अब तक तो आप लोगों को इसका आदी हो जाना चाहिए था कि जिसे वोट दिया जाता है, वह आपके लिए कुछ करता-धरता नहीं. पर बाबूजी और दूसरों में एक फर्क जरूर है. यह दूसरों की तरह आपसे झूठे वादे नहीं कर रहे हैं. यह एलेक्शन मेनिफेस्टो तो नहीं बंटवाते और सबसे बड़ी बात यह है कि इनका पेट कई पुश्तों से भरा हुआ है. आप अगर फिर किसी भुक्खड़ को बावरचीखाने का दारोगा बनाना चाहें तो आपकी मरजी. मगर पांच बरस फिर फाके ही करने पड़ें तो यह मत कहियेगा कि भैया बात तो एम. एल. ए. साहब सोलह आने पाव रत्ती खरी कह गये थे.

वह रुक गये क्योंकि एक नौजवान की गांधी टोपी बीच में खड़ी हो गयी थी.

एम. एल. ए. साहब मुसकरा कर बोले—कहिए मियां?

टोपी ने कहा—सरकार ने हमारे लिए बहुत कुछ किया है साहब . . .

ए. एल. ए. साहब ने टोक दिया—बहुत कुछ किया है. गेहूं तीन

सेर से ढाई सेर का कर दिया गया है ताकि लोगों को भूखे मरने में आसानी हो. क्या बात करते हो साहबजादे. अरे इस सरकार ने तो मरने तक पर टैक्स लगा दिया है. कहां रहते हो तुम, क्या किया है सरकार ने. कभी सेर भर चावल उधार दिया है उसने आपको? टैक्स में कभी मोल-तोल किया है आपने. सरकार है कि बाटा की दूकान? एक रेट बांध दिया है. जिंदगी नकली मिलेगी पर दाम ऐसी जिंदगी का वसूलेगी जैसे यह जिंदगी आर्डर भेज कर खास आप लोगों के लिए ऊपर से मंगवायी गयी है. क्या किया है सरकार ने जरा मैं भी तो सुनूं ?

बिचारी कमसिन टोपी घबरा गयी. भरे मजमे में चोरों की तरह खड़ी रह गयी. थूक घोंट कर बोली–सरकार ने क्या पन-बिजली द्वारा. . .

टोपी टोक दी गयी— एक मिनट मियां. आपने अच्छा याद दिलाया. पन– बिजली की बात तो मैं भूल ही गया था. सरकार ने पानी से बिजली तो जरूर निकाली है मियां पर दोस्तो, इसे कहते हैं चोरी और उस पर सीनाजोरी. असली घी अब दवा के लिए नहीं मिलता. असली मक्खन किसी को लगाने तक के लिए नहीं मिलता और यह श्रीकृष्ण का देश कहा जाता है. चावल में इतना कंकर होता है कि कभी-कभी यह ख्याल होता है कि चावल में कंकर नहीं बल्कि कंकर में चावल मिला हुआ है. एक पानी बचा था जिसे पी कर लोग जीते थे तो सरकार ने उस पानी की बिजली निकाल ली. अरे बिजली ही निकल गयी तो पानी में रहा क्या ? यह हिजड़ा पानी पी कर नयी नस्ल का क्या हाल होगा साहब? और सितम जरीफी यह कि पानी की बिजली निकाल ली और वाटर टैक्स बढ़ा दिया. आप पूछते हैं कि बाबूजी एम. एल. ए. होने के बाद क्या करेंगे? बाबूजी कोशिश करेंगे कि पानी की निकली हुई बिजली पानी में वापस मिला दी जाये. . .

इस बार बाबूजी के आदमियों को ताली नहीं बजानी पड़ी. सामने बैठे हुए बच्चे तो कब के सो चुके थे, पर यह बात बड़े बूढ़ों की समझ में आ गयी.

बिचारी कमसिन गांधी टोपी के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था.

दूसरे दिन शहर के राजनीतिक वातावरण में हलचल मच गयी. किसी के पास इस बात का जवाब नहीं था. किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि बेपढ़े लोगों को कैसे समझाया जाये कि पानी हिजड़ा नहीं हुआ है. और दूसरे ही दिन एम. एल. ए. साहब के इशारे पर बाबूजी ने तुरुप का एक्का चल दिया. लाउडस्पीकर पर एलान किया गया कि बाबूजी खास अपने खर्च पर शहर में एक सौ पचास कुएं खुदवायेंगे और दो सौ कुओं की सफाई करवायेंगे.

सारी राजनीति धरी रह गयी. एलेक्शन मेनिफेस्टो रद्दी बाजार में आ गये. अखिल भारतीय नेताओं ने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया पर पानी का हिजड़ापन न गया और बाबू दुवार्का प्रसाद चुनाव जीत गये.

मैं तो उसी रात वाली मीटिंग में एम. एल. ए. साहब का कायल हो गया था. पर फिर बात आयी गयी हो गयी. हां, जब चुनाव के दिन आते तो मुझे एम. एल. ए. साहब की याद जरूर आती. और मैं सोचने लगता कि आजकल वह किसका चुनाव लड़ा रहे होंगे. बात कभी इससे आगे नहीं बढ़ी कि एक दिन फिर उनकी भनक मिली.

चुनाव ही के दिन थे. कम्युनिस्ट पार्टी के एक दोस्त ने अपनी तरफ से एक लतीफा सुनाया.

बोला–एम. एल. ए. साहब ने तो नाक में दम कर दिया है, यार. क्या-क्या तरकीबें सूझती हैं उसे. अब वह कांगरेसी हो गये हैं. एक बीहड़ इलाके में कैन्वेसिंग करने गये. उस कांस्टिटुएंसी में हम लोग चार साल से काम कर रहे हैं और यकीन था कि इस चुनाव में हम ही जीतेंगे कि बिटिया रानी ने एम. एल. ए. साहब बुक कर दिया और साहब उस आदमी ने एक घंटे में हमारी चार साल की मेहनत पर पानी फेर दिया.

मैं हंस पड़ा–हुआ क्या ?

वह बोला—हुआ वह जो कोई सोच भी नहीं सकता था. हम लोगों ने सारा जोर इस पर लगाया था कि उस क्षेत्र में एम.एल.ए. ने ट्यूब वेल लगवाने का वादा किया था. जाहिर है कि वादा पूरा नहीं हुआ तो हम लोगों ने तय किया कि चुनाव की हर मीटिंग में यही एक सवाल उठाया जाये. पर एम. एल. ए. साहब ने पैदली मात दे दी और अब इस चुनाव में तो हम लोग वहां से जीत नहीं सकते. क्या सूझती है कमबख्त को !

कहते हैं कि खड़ी दोपहर में किसानों के एक परिवार ने देखा कि एम. एल. ए. साहब साइकिल चलाते चले आ रहे हैं. साइकिल के कैरियर पर मजबूत रस्सी से एक बक्स बंधा हुआ है.

बूढ़ा किसान बोला—लगि रहा कि ओट की फसिल आय गयी तनी पानी खींच लिया रे.

छह-सात साल का एक लड़का रस्सी-डोल ले कर कच्चे कुएं की तरफ लपक गया. इतने में साइकिल पास आ गयी. किसान खड़े हो गये.

बूढ़े किसान ने सलाम किया—सलाम एमएल्ले साब.

वह साइकिल से उतरते हुए बोले—सलाम भाई, सलाम. क्या हाल चाल है?

नौजवान किसान बोला—अ हाल चाल कैयसा साब खाये को केत मिलत ना बा. हाल चाल कहां से होई...

एम. एल. ए. साहब इस बात को साफ टाल गये. वह तीन-साल के उस बच्चे के सर पर प्यार से हाथ फेरने लगे, जो उनकी तरफ गौर से देख रहा था. बोले—अरे, यह तो जरा नहीं बढ़ा.

नौजवान किसान खड़ी बोली में बोला—ई वह लड़का नहीं है जेको आप पांच बरस पहिले देख गये रहे. वह तो आप खातिर कुएं से पानी खींच रहा है. चुनाव में एही तो लंबरी खराबी है कि पांच बरिस के बाद होता है. भेंट-मुलाकात का चानस नहीं भिड़ता.

अधेड़ उम्र वाला बोला—भैया त आपका देखते ही ताड़ गये रहे कि होय न होय चुनाव का जमाना अगइल बाय नहीं त भला आपका दरसन होत इ खड़ी दुपहरिया मां!

एम. एल. ए. साहब मुसकराते रहे. उनकी मुसकराहट में एक शिकन तक नहीं पड़ी. बोले—कह लो भई, कह लो. तुम लोग नहीं कहोगे तो क्या कहने वाले किराये पर बुलाये जायेंगे रूस या चीन से. तुम लोग यही सोचते हो ना कि एम. एल. ए. साहब पांच बरस के बाद आते हैं और वह भी वोट मांगने. पर भई राम अवतार, हम तो हैं खल्क के खादिम—क्या कहते हैं, हां, जनता के सेवक. और जनता खाली इस गांव के आस पास तो रहती नहीं. सारे सूबे, मतलब परदेश का चक्कर लगाना पड़ता है. जब तक इधर का नंबर आये-आये पांच बरस बीत जाते हैं. रुपये की तरह बरस की कीमत भी बहुत लटक गयी है. दन से खतम हो जाता है.

लड़का पानी ले कर आ गया और एम.एल. ए. साहब कुल्ली करने और हाथ-मुंह धोने में लग गये. पर बोलते भी जा रहे थे कि जो वह न बोलते तो इसका खतरा था कि नौजवान किसान फिर कोई टेढ़ी बात शुरू कर देगा.—अब साइकिल नहीं चलायी जाती. थक जाता हूं. पर क्या करूं, न आऊं तो तुम लोग ताना दोगे.

बूढ़ा किसान बोला—एक ठो मोटर कीन लिजिए. सब झंझटे खतम हो जायी.

एम.एल.ए साहब आखिरी कुल्ली करने के बाद बोले—क्या बात करते हो? अरे हम वह नहीं हैं जो मोटर पर चढ़ के इंकिलाब की खबर सुनाते फिरते हैं. और कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ. जनता तो धूप में जले और जनता का खादिम मोटरों पर दनदनाता फिरे, तो लानत है उस आदमी पर.

बूढ़ा किसान लाजवाब-सा हो गया. बोला—बाकी...

पर एम.एल.ए. साहब भला उसे कहां बोलने देते. बात काट के बोले—न बाकी न जमा. इंदिरा गांधी एक दिन हम से खुद बोलीं कि एम.एल.ए. भाई, हमको भाई कहती हैं. रक्षा बंधन पर जो मैं दिल्ली न जाऊं, तो फूल जाती हैं. हां तो क्या कह रहा था मैं कि वह एक दिन खुद बोलीं कि एम.एल.ए. भाई, कहिए तो आपको एक-आधा मोटर खरिदवा दूं. मैंने कहा, बिटिया मुझे तो माफ ही रक्खो. हमको हवाई जहाज पर चढ़ के जनता के दुःख-दर्द का तमाशा देखने का कोई शौक नहीं है. भरी सभा में जो मैंने तड़ाक से यह कहा तो बिटिया का मुंह इत्ता सा हो गया.—वह रुक गये और शेरवानी की जेब से पानों की डिबिया निकाल कर पान खाने में लग गये.

किसान परिवार मुंह खोले इस इंतिजार में कि आगे क्या होगा.

एम.एल.ए. साहब ने पान खाने और डिबिया को जेब में रखने के बाद फिर बात का सिरा थामा—तो बिटिया खिसिया के हंसने लगी. अरे भई, हम क्यों दबें किसी से. हम सियासत, मतलब राजनीति का काला ब्योपार तो करते नहीं. खरे आदमी हैं और खरी बोलते हैं.

नौजवान किसान तक पर रोब पड़ गया. पूछने लगा—आप परधान मंतरी से ई बोल दिया?

वह बोले—क्यों न बोलता. भाई दीनदयाल शर्मा की तरफ मुड़ के बाली—हम इस साल एम.एल.ए. भाई को टिकट देना चाहते हैं. शर्मा जी पूछने लगे, कितने टिकट दे दूं. मैंने पूछा, सनीमा ओनीमा के टिकट की बात हो रही है क्या? इस पर शर्माजी झेंप गये और बिटिया खिलखिला के हंसने लगीं. जब हंसी खतम हुई तब हमने बिटिया से कहा कि हम तो गांधीजी के नाम लेवा हैं. चुनाव हरगिज नहीं लड़ेंगे. पर जो हमको खुश करना चाहती ही हो तो सेठ धरमदास को टिकट दे दो. अब मेरी बात तो वह टाल नहीं सकती थी. जगजीवन राम, दीनदयाल शर्मा, ए साहब चावन साब ने एड़ी चोटी का जोर लगा दिया कि धरमदास को किसी तरह टिकट न मिलने पाये. पर बिटिया ठन गयी कि एम.एल.ए. भाई ने जिंदगी में पहली मरतबा तो कुछ मांगा है. टिकट तो उसीको मिलेगा, जिसे भाई टिकट दिलवाना चाहेंगे. तो सेठ साहब को टिकट मिल गया और चुनाव का सारा भार मेरे सर आया. अब घूम रहे हैं गांव-गांव वोट मांगते—

नौजवान बोला—ए साहब आप का कहा सिर आंख पर. पर हम काहे को वोट दें आपके कहे से? बदले में हम्में का मिलेगा? पिछले चुनाव से पहिले आप बचन दे गये रहे कि चुनाव के बाद हियां ट्युब बेल लग जायेगा. कहां है ऊ ट्युब बेल?

एम.एल.ए. साहब को ताव आ गया. बोले—क्या कहा, नहीं लगा वह ट्युब बेल? अभी खबर लेता हूं बिटिया की. जरा वह बक्सा उतरवाना.—

साइकिल के कैरियर से बक्सा उतर कर उनके सामने आया. उन्होंने उसे खोला. उसमें एक ड्राई बैट्री सेट था. लकड़ी का एक चौकोर तख्ता था. जिसमें दो बल्ब लगे हुए थे. दो प्वाइंट्स थे. टेलिफोन का एक चोंगा था. एम.एल.ए. साहब ने चोंगे का प्लग लगाया. तख्ते को बैट्री से जोड़ा. दोनों बल्ब जलने-बुझने लगे किसानों का मुंह खुले का खुला रह गया. पर एम.एल.ए.साहब उनकी तरफ देख ही नहीं रहे थे. वह तो गुस्से में नंबर डायल कर रहे थे. नंबर मिल गया. वह धाड़े—हलो. कौन? जगजीवन राम? अरे भई आपसे कौन बात कर रहा है. मैं एम.एल.ए. बोल रहा हूं.—नमस्ते नमस्ते. जरा प्रियदर्शनी को फोन दीजिए. अब आप प्रियदर्शनी को नहीं जानते? अरे साहब प्रइम मिनिस्टर. वजीरे-आजम. परधान मंत्री. अब समझे कि अरबी फारसी में भी बोलूं? क्या सो रही हैं—क्या कहा? सो रही हैं. अरे तो जगा दीजिए साहब. आप क्या मक्खी झल रहे हैं—

उन्होंने किसानों की तरफ देखा जो उनके रोब के बोझ से दबे जा रहे थे. बूढ़ा किसान तो डरा-डरा-सा लग रहा था कि कहीं पता चल गया कि जगजीवन राम पर उसके पास से आड़ पड़ी है और पुलिस ने पूछ गछ शुरू की तो वह क्या जवाब देगा. बोला—अरे रहे देई, मुला गइल होइहैं. ट्युब बेल कहां भागल जात बा. लग जाई.

एम.एल.ए. साहब कहां रुकने वाले थे. बोले—रहने कैसे दूं जी, झूटा तो मैं बना ना—हलो. बिटिया? यह सब क्या आफत मचा गली है भई तुमने? ऐं? एक ट्युब बेल नहीं लगवा सकती तो परधान मंतरी बनी क्या बैठी हो? इस्तेफा देके छुट्टी करो—नहीं नहीं नहीं. इस बहाने बाजी से काम नहीं चलेगा—अरे अमरीका से ट्युब बेल नहीं आया तो हम क्या करें. तुम तो वहां दिल्ली में बैठी हो. जनता का सामना तो मुझे करना पड़ता है—क्या कहा? मार्च तक जरूर लग जायेगा. ठीक है. मार्च में अब कितने दिन रह गये हैं. पर कान खोल के सुन लो कि जो मार्च तक ट्युब बेल न लग गया तो मैं फ्लोर क्रास करके अपोजिशन से मिल जाऊंगा और जो मैं अपोजिशन में चला गया तो समझ लो कि न तुम्हारी पार्टी की खैर है न तुम्हारी सरकार की—हां, हां, ठीक है. अब बंद करो फोन. तुम्हें तो कोई काम-धाम है नहीं. बस फोन ले कर बैठ गयीं—

एम.एल.ए. साहब ने फोन रख दिया और डरे हुए किसानों की तरफ देख कर उदासी से मुसकराते हुए बोले—तुम लोगों की वजह से झाड़ पड़ गयी बिचारी पर. मगर अब मार्च नहीं तो अपरैल तक ट्युब बेल जरूर लग जायेगा.—

उन्होंने बक्सा बंद किया. उसे नौजवान किसान की तरफ सरकाते हुए बोले—जरा इसे साइकिल पर चढ़ा दो. नौजवान किसान का सारा विरोध खत्म हो चुका था. जो आदमी प्रधान मंत्री को डांट पिला दे उससे डरना चाहिए.

तो एम.एल.ए. साहब अपने टेलिफोन समेत साइकिल पर चले गये और कम्युनिस्ट पार्टी यह सोचती रह गयी कि लोगों को यह कैसे बताये कि फोन यूं नहीं किये जाते. सुनेगा कौन, क्योंकि यह तो आंखों देखी बात थी. जब तक पार्टी वालों को पता चले चले यह बात जंगल की आग की तरह फैल गयी कि प्रधान मंत्री पर एम.एल.ए. साहब की डांट पड़ गयी और उन्होंने खुद वादा किया है कि मार्च में ट्युब बेल लग जायेगा.

★ ★

चुनाव का नतीजा क्या निकला यह मुझे नहीं मालूम. पर मैं सोच में पड़ गया. यह एम.एल.ए. साहब तो बहुत ही दिलचस्प आदमी हैं. यानी यह आदमी तो कहीं रुकने वाला ही नहीं है. धूल में रस्सी बटने की कहावत भी साफ समझ में आ गयी और जी चाहने लगा कि एम.एल.ए. साहब से मिला जाये. पर जिंदगी के अपने चक्कर होते हैं. आदमी जिससे मिलना चाहता है उसीसे नहीं मिल पाता और जिनसे नहीं मिलना चाहता उनसे बार बार मिलना पड़ता है और हर बार यह साबित करना पड़ता है कि उनसे मिल कर बड़ी खुशी हुई.

जिंदगी की तमाम भाग-दौड़ के बावजूद एम.एल.ए. साहब मेरे दिमाग के एक कोने में पड़े रहे और मैं उनके बारे में सोचता रहा. पर उनसे मिलने की कोई शक्ल न निकली क्योंकि हम दोनों के क्षेत्र अलग-अलग थे. वह राजनीति के ट्रैव्लिंग एजेंट थे. उठल्लू चूल्हे. आज यहां और कल वहां.और चूंकि राजनीति उनका आदर्श नहीं थी बल्कि केवल पेशा थी इसलिए उनका कोई एक मंच भी नहीं था. जैसे रंडियां मुजरे का बीड़ा लेती हैं, वह चुनाव का बीड़ा लिया करते थे. उन्हें इससे मतलब नहीं था कि चुनाव लड़ कौन रहा है. जनसंघ से ले कर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तक वह सबका चुनाव लड़ाने को तैयार रहते थे. और चुनाव लड़ाते तो ऐसा कभी नहीं लगता कि वह किराये पर लाये गये हैं. लगता कि जो कुछ कह रहे हैं वही उनके दिल में है. उनके जानने वाले उनके रेल-टिकट को देख कर भांप लिया करते थे कि चुनाव कहीं होने वाला है? फर्स्ट क्लास में सफर करते तो बताये बिना लोग जान लेते कि चुनाव कम-से-कम असंबली का है. सेकेंड में दिखाई देते तो इसका मतलब यह निकलता कि चुनाव म्युनिसिपैलिटी या टाउन एरिया का है. थर्ड में होते तो मतलब यह कि अपने किसी काम से मजबूरन यात्रा कर रहे हैं.

कवि कवि समेलन मारते हैं मां-बाप चांटा मारते हैं. पहलवान दंगल मारते हैं. छैले आंख मारते हैं. अमरीका वाले बम मारते हैं—एम.एल.ए. साहब चुनाव मारा करते थे.

चुनाव के दिन आते तो महीनों पहले से उनकी आव भगत शुरू हो जाती. भांत-भांत के लोग उनके घर पर दिखाई देने लगते. मोल-तोल शुरू होता. चाय चल रही है. पुराने चुनावों के हथकंडे सुनाये जा रहे हैं. और साथ-ही-साथ एम.एल.ए. साहब यह भांपने में लगे हैं कि असामी कितने में कटेगा—एक आध बार तो ऐसा भी हुआ कि एम.एल.ए साहब को पता चलता कि उन्होंने एक ही कान्स्टिट्यूएंसी के दो उम्मीदवारों से पैसे ले लिये हैं. अब वह धर्म-संकट में पड़ जाते. पर वह आदमी नमक हराम नहीं थे. थे? देखिए यह बताना तो भूल ही गया कि एम.एल.ए. साहब का देहांत हो चुका है. और यह लेख नहीं श्रध्दांजली है. उन्हें थे लिखना बड़ा अजीब लग रहा है. हो सकता है कि ऊपर भी कोई चुनाव हो रहा हो और एम.एल.ए. साहब ने वहां का बीड़ा ले लिया हो. क्योंकि जो आदमी इतना जीवित हो वह मर कैसे सकता है.

उनके मर जाने से भारतीय डिमाक्रेसी का इतना बड़ा नुकसान होगा कि मैं कह नहीं सकता. क्योंकि उनके सिवा भारत में मुझे कोई पक्का राजनीतिक दिखाई ही नहीं देता. चुनाव उनका पेशा भी था और जिंदगी भी. चुनाव हारने या जीतने में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी और यही उनका सबसे बड़ा गुण था.

क्योंकि घपले तो चुनाव हारने या जीतने के बाद ही शुरू होते हैं. जो जीत जाते हैं वह घूस खाना शुरू कर देते हैं और जो हार जाते हैं वह 'डिमाक्रेसी बचाओ' आंदोलन चलाने में लग जाते हैं और उस वक्त तक यह आंदोलन चलाते रहते हैं जब तक कि खुद चुनाव न जीत लें. चुनाव जीत कर वह घूस खाने में लग जाते हैं और डिमाक्रेसी बचाओ आंदोलन उनके हाथ में आ जाता है जो अब चुनाव हारे हैं.

यही कारण है कि एम.एल.ए. साहब कभी भारतीय प्रजातंत्र के भविष्य से मायूस नहीं हुए. उनका कहना था कि कोई-न-कोई तो चुनाव हारेगा ही और जो हारेगा वह अगले पांच बरसों तक प्रजातंत्र बचाओ आंदोलन अवश्य चलायेगा क्योंकि यदि इस बीच में प्रजातंत्र का देहांत हो गया तो फिर उन्हें चुनाव जीतने का अवसर ही नहीं मिलेगा.

उनका थीसिस यह था कि भारत में प्रजातंत्र चुनाव हारने वालों की अथक कोशिशों की वजह से बचा हुआ है. और साहब आप बुरा मानें या भला, इस मामले में मैं एम.एल.ए. साहब से सहमत हूं.

सुना है कि मरने से कुछ ही दिनों पहले वह एक आल इंडिया चुनाव हारन कमेटी के नाम से एक अखिल भारतीय पार्टी बनाने की सोच रहे थे और इस सिलसिले में बहुत से सुप्रसिद्ध चुनाव हारने वालों से उनकी बातचीत चल रही थी. यदि यह पार्टी बन गयी होती तो यह अपनी तरह की पहली पार्टी होती और विश्व राज-

राही मासूम रजा (जन्म : १ अगस्त १९२७) आम आदमी की लड़ाई में शरीक लेखक हैं. इन्होंने अपने लेखन को आज की सही जिंदगी की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है. इनके हिंदी में पांच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं—आधा गांव, हिम्मत जौनपुरी, टोपी शुक्ला, ओसकी एक बूंद और दिल एक सादा कागज.

नीति के इतिहास में उनका नाम सोने के अक्षरों से लिखा जाता. पर उनका नाम था क्या? उनके पिता के सिवा उनका नाम किसी को याद नहीं, क्योंकि तमाम लोग उन्हें एम. एल. ए. साहब ही के नाम से जाना करते थे. उनकी पत्नी तक उन्हें एम. एल. ए. साहब ही कहा करती थीं. मैंने वोटरों की लिस्ट देखी तो पता चला कि उसमें उनका नाम ही नही है. वह वोटर बने ही नहीं. उनका कहना था कि जो वह वोटर बने तो किसी-न-किसी उल्लू के पट्ठे को वोट देना ही पड़ेगा. और वह किसी को इस लायक ही नहीं समझते थे कि उसे वोट दिया जाये.

बहुत छानबीन के बाद पता चला कि उनका नाम लतीफ अहमद था. नास्तिक थे इस लिए अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी में मौलाना कहे गये. जल्दी में पुकारना हो तो मौलाना लतीफ अहमद पुकारने में देर लगती थी. और जब तक नाम पूरा हो, यह एक-आध फर्लांग निकल जाया करते थे. क्योंकि इन्हें तेज चलने का खब्त था. खाली मौलाना पुकारो तो डिपार्टमेंट ऑफ थियालोजी का कोई विद्यार्थी मुड़ पड़ता. उन दिनों यूनिवर्सिटी में १० या ११ लतीफ अहमद थे. तो मौलाना लतीफ अहमद को जल्दी में पुकारने लायक बनाने के लिए एम. एल. ए. कर दिया गया.

पहली जनवरी १९२२ को सवेरे चार बजे पैदा हुए.

इकत्तीस दिसंबर १९७४ को मरे.

होश संभालने से ले कर होश गंवाने तक केवल चुनाव लड़ाते रहे.

उन्होंने अपने पीछे एक बाप, दो माएं और एक पत्नी छोड़ी.

एक आदमी की पूरी जिंदगी इन तीन जुमलों में आ गयी. तीन जुमले भी मरने के बाद मिलते हैं. जिंदगी तो एक जुमले में आ जाती है. जन्म-दिन—जो शायद इसलिए महत्त्वपूर्ण होता है कि उसके सहारे मरने के दिन गिनने में आसानी होती है.

पर एम. एल. ए. साहब चुनाव हारने वालों को सदा याद आते रहेंगे. उनके मर जाने से चुनाव का मजा आधे से कम रह गया. भारतीय प्रजातंत्र को उतना नुक्सान श्रीमती गांधी या श्री जयप्रकाश नारायण मिल-मिला कर भी नहीं पहुंचा सकते, उसे उतना नुक्सान मौत के फरिश्ते ने पहुंचा दिया. मैं मांग करता हूं कि उनकी मौत की छानबीन की जाये. मुझे तो इसमें साफ सी. आई. ए. का हाथ दिखाई देता है. और यदि ऐसा नहीं तो फिर यह काम—जाने दीजिए, नाम लेने से क्या फायदा. पाकिस्तान के स्वर्गवासी डॉक्टर तासीर का एक शेर याद आया :

दावरे-हश्र मेरा नामये-आमाल न देख,
इसमें कुछ पर्दानशीनों के भी नाम आते हैं. □□□

१० देवदूत, बांद्रा बैंडस्टैंड, बांद्रा (पश्चिम), बंबई–५०

एक लघुकथा

भूख और वित्तमंत्री

• मुकुंदमाधव मेहरोत्रा

सुबह से शाम तक मिल की भट्ठी में कोयला झोंकने के लिए मुझे एक बड़ा चमकदार सिक्का मिला. मैं बेहद थक चुका था. सारा दिन आग के पास खड़े रहने से सिर भी दुख रहा था; और बहुत जोरों की भूख भी लग आयी थी. रोटियों की तलाश में पास की एक दूकान पर पहुंचा. रोटियां खरीदने के लिए सिक्के को उंगलियों में दबा कर मैंने उसे दूकानदार की ओर बढ़ाया. तभी मुझे महसूस हुआ कि जैसे कोई मेरे हाथ से सिक्के को छीनने की कोशिश कर रहा है. क्रोध से घूम कर मैंने पीछे देखा. मुझे उसे पहचानने में कोई भी मुश्किल न हुई. इससे पहले भी मैंने उसे कई लोगों के हाथों से, इसी तरह, पैसे छीनते हुए देखा था. शायद वह पेशेवर उठाईगीर था.

इससे पहले कि मैं उसके बारे में कोई राय कायम कर पाता, वह ठठा कर हंस पड़ा.—शायद तुम मुझे अच्छी तरह नहीं पहचानते हो. मैं इस देश का वित्तमंत्री हूं! उसने अपनी नजर मेरे हाथ में दबे सिक्के पर गड़ाये रख कर ही कहा. इस सिक्के में पचास प्रतिशत हिस्सा मेरा भी है. उसकी आंखें फैल कर चौड़ी हो गयीं. वह फिर ठठा कर हंस पड़ा.

—पर, मैंने यह सिक्का सारा दिन पसीना बहा कर कमाया है. . .और फिर मैं तुम्हें जानता तक नहीं हूं. . .भला इसमें से आधा हिस्सा तुम्हारा कैसे हो सकता है? मैंने घबराहट से थूक निगलते हुए पूछा. गुस्से से मेरी ओर घूरते हुए उसने उत्तर दिया—मैं इस देश का वित्त मंत्री हूं. मैं जितना भी हिस्सा चाहूं, तुम्हारे इस सिक्के में से ले सकता हूं.

मुझे दयनीय स्थिति में देख कर वह थोड़ा नम्र हुआ.—घबराओ मत! तुमसे लिया हुआ यह पैसा बाद में तुम्हारे ऊपर ही खर्च किया जायेगा—तुम्हारे लिए रोटी और काम आदि जुटाने के लिए. मेरी समझ में कुछ भी न आ रहा था. जैसे ही उसने अपनी सतर्क नजर दूसरी ओर फेंकी, मैं वहां से भाग निकला.

भाग कर मैं एक दूसरी दूकान पर पहुंचा. मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि वह व्यक्ति मुझसे पहले ही वहां पहुंच चुका था. मैं एक दूकान से दूसरी दूकान और एक शहर से दूसरे शहर तक भागता रहा, पर वह व्यक्ति हर जगह मेरा पीछा करता रहा.

हार कर मैं अपना देश छोड़ कर पड़ोसी देश जा पहुंचा. मगर वहां भी सीमा पर से ही उस देश का वित्तमंत्री मेरे पीछे लग लिया. वह भी अपने हिस्से (टैक्स) की मांग कर रहा था. मुझे पूरा यकीन हो गया कि मैं इन लोगों के जाल में बुरी तरह फंसा गया हूं. और अब अपने सिक्के को सही सलामत बचा पाना बहुत ही मुश्किल है. उसी वित्तमंत्री ने मुझे यह भी बताया कि उसके देश में मेरे सिक्के की कीमत बहुत कम हो गयी है. मैं और भी निराश हो चला.

मैंने फिर भी हिम्मत न हारी. एक देश से दूसरे देश तक मैं लगातार दौड़ता ही रहा.

मैं बेहद थक चुका था. मैंने सोचा कि यदि सिक्के को कम पैसों में ही खर्च करना है, तो क्यों न मैं इसे अपने देश में ही खर्च करूं. मैं वापस अपने देश आ गया. उसी दूकान पर पहुंच कर मैंने फिर रोटियों की मांग की और सिक्का आगे बढ़ाया. अचानक मेरे पीछे से किसी के ठठा कर हंसने की आवाज आयी.—अब तुम इस सिक्के से कुछ भी नहीं खरीद सकते. . .अब इस सिक्के की कोई भी कीमत नहीं बची है. मैंने घूम कर पीछे देखा. हंसने वाला कोई और नहीं, मेरे देश का वित्तमंत्री ही था. उसकी हंसी सिक्कों की तरह खनक रही थी. मैं बेहोश हो कर गिर पड़ा. □□□

आम आदमी का शव • प्रदीप पंत

• भगवानदास [illegible]

शव जिंदा हो उठा था!

पहले शरीर में हरकत हुई थी. फिर गरदन उचकी थी और मुंह ऊपर उठा था. इसके बाद टांगे हिलीं और सिमटी थीं. फिर हथेलियों के बल पर वह एकाएक उठ खड़ा हुआ था और आश्चर्यजनक बात तो यह कि उसका एक हाथ अप्रत्याशित रूप से लंबा होता हुआ. . .

खैर, छोड़िए, इस प्रकरण को यहीं. पर बात इस तरह शुरू नहीं की जा सकती. किसका शव था वह? और कैसे एकाएक जिंदा हो उठा था? ये तथा ऐसे ही अनेक प्रश्न भी उठ सकते हैं या उठाये जा सकते हैं. लेकिन इन प्रश्नों के उत्तर खोजने से पहले उन परिस्थितियों को जान लेना आवश्यक है जिनके कारण शव जिंदा हो उठा था, या और सरल शब्दों में, उसमें चेतना आ गयी थी.

★ ★

यह उसी रात की घटना है, जिस रात वह प्रदेश की राजधानी पहुंचा था और कर्फ्यू उठाया जा चुका था.

वह स्टेशन से बाहर निकलने में घबरा रहा था. लेकिन फिर उसने सोचा, इस तरह घबराने से आखिर कब तक काम चलेगा? और वह स्टेशन से बाहर निकल आया था. दरअसल बाहर निकलने का एक और भी कारण था—यह जानने की उत्सुकता कि कर्फ्यू के बाद लोग कैसा महसूस करते हैं और शहर कैसा नजर आता है? वास्तव में यही उत्सुकता उसे ३०-४० किलोमीटर दूर शहर से राजधानी लायी थी.

वह स्टेशन से निकला तो उसने देखा कि सड़क पर आमदरफ्त शुरू हो चुकी थी लेकिन लोग डरे हुए थे. उनके चेहरों पर भय था, बल्कि कहा जाना चाहिए कि आतंक था. थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सेना के जवान बंदूकें हाथ में लिए तैनात थे. उनके चेहरों पर वहशियत थी. वैसे किसी-किसी चेहरे पर विवशता भी थी, मानो वे अपना काम रोजी-रोटी की मजबूरी में कर रहे हों.

वह एक चौराहे पर पहुंचा ही था कि उसे प्रदेश के मुख्य मंत्री दिखाई दे गये. वह उन्हें पहचान गये थे क्योंकि पहले भी पत्रकार की हैसियत से वह उनसे मिल चुका था. उसे देख कर वह ठिठक गये. उसने उनसे पूछा—इस समय रात को आप यहां कैसे?

उन्होंने उत्तर देने की बजाय पिस्तौल उसके सामने कर दी. वह इस स्थिति के लिए तैयार नहीं था, इसीलिए घबरा कर पीछे हट गया.

वह जोरों से हंसे. फिर बोले—घबराओ मत, यह तुम्हारे लिए नहीं है.

वह आश्वस्त हुआ और उसकी घबराहट कुछ कम हुई. उसने साहस बटोर कर पूछा—चाहे जिसके लिए भी हो, मुख्य मंत्री महोदय, लेकिन इसकी जरूरत क्यों आ पड़ी?

मुख्य मंत्री के होंठों पर एक कुटिल मुस्कान आयी. उन्होंने कहा—पुलिस और सेना तो इसका इस्तेमाल जनता को सही रास्ते पर लाने के लिए कर रही है.

—और आप किसे सही रास्ते पर लाने के लिए इसका इस्तेमाल करना चाहते हैं? उसने जानना चाहा.

वे बोले—हमारी पार्टी के ये जो असंतुष्ट नेता हैं, बड़े खतरनाक हैं. ये लोग हमें हटाना चाहते हैं. इनके अगुवा पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष और महामंत्री हैं. ये लोग हमें हटा कर राष्ट्रपति शासन लागू करवाना चाहते हैं या फिर विपक्ष से मिल कर दूसरी सरकार बनाना चाहते हैं. हम इन्हें सीधे रास्ते पर लाएंगे. कह कर उन्होंने भरी हुई पिस्तौल फिर उसके सामने कर दी. वह घबरा कर पीछे हटा. वे फिर बोले, हम अब भी इनसे कहते हैं कि मान जाओ.

इतना कह कर मुख्य मंत्री हाथ में पिस्तौल थामे हुए पार्टी के असंतुष्ट नेताओं की खोज में एक गली की ओर मुड़ गए. वे अकेले थे. असंतुष्टों ने उन्हें प्रदेश की राजनीति में अकेला कर दिया था. नहीं, वे अकेले नहीं थे. उनके पास पिस्तौल भी थी और बंदूकधारी सैनिक भी.

वह उन्हें जाते हुए देखता रहा. उन्हें रोकना ठीक न था. वे क्रुद्ध थे.

वह आगे बढ़ लिया.

तभी उसे दूसरे चौराहे पर विधायकों के साथ सत्ताधारी दल के अध्यक्ष और महामंत्री दिखाई पड़ गए. विधायकों के चेहरों पर क्रांतिकारियों जैसा आक्रोश और आवेश नजर आ रहा था. वे मुख्य मंत्री की 'सत्ता' को उलट देना चाहते थे लेकिन 'व्यवस्था' को नहीं. अखबारों में उनका वक्तव्य छप चुका था, जिसके अनुसार, मुख्य मंत्री तानाशाह बनता जा रहा था और वे स्वयं जनतंत्र की रक्षा के लिए लड़ रहे थे. पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष और महामंत्री के चेहरों पर मुस्कान खेल रही थी, जैसे माओ-त्से-तुंग के चेहरे पर खेलती रहती है.

उसने सत्ताधारी पार्टी के अध्यक्ष से कहा—यह सब क्या कर दिया आप लोगों ने?

वे बोले—सांस्कृतिक क्रांति.

उसने कहा—मजाक छोड़िए,आप इस समय भी मजाक कर रहे हैं! सच-सच बताइये.

वे बोले—सच तो यह है कि क्रांति लड़कों ने की थी. हम तो बस क्रांति का फल चख रहे हैं. कर्फ्यू हटा तो हम क्रांति का फल चखने लड़कों पर आ गए.

उसकी समझ में नहीं आया कि यह आखिर कैसी क्रांति है? उसने कहा—आपका मतलब समझा नहीं.

वे उसे एक तरफ ले गए, फिर बोले—यह साला मुख्य मंत्री मानता नहीं था. बहुत ऐंठता था. हमने ही मुख्य मंत्री बनाया और हमसे ही अकड़. जनता ने जरा-सा शोर मचा दिया, बस टैं बोल गयी.

उसने कहा—सो तो है. आखिर जनता को अनाज की दुकानों से अनाज नहीं मिल रहा था. बनिये चोर-बाजारी कर रहे थे, अमीर किसानों ने गल्ला छिपा लिया था, इसलिए जनता को तो शोर मचाना ही था...

उन्होंने बीच में ही उसकी बात काट दी—अरे, सो तो ठीक है. इसकी इजाजत तो अमीर किसानों और बनियों को हमने, मुख्य मंत्री ने और बड़े अफसरों ने मिल कर दी थी. इस मुद्दे पर तो विपक्षी दल भी हमारे साथ थे. झगड़े का कारण यह नहीं है.

—फिर क्या है? उसने पूछा.

पार्टी अध्यक्ष ने अपने साथियों की ओर इशारा करते हुए कहा, —देख रहे हो इन्हें! इनकी काया कितनी सूख गयी है! इन्होंने कितना त्याग किया है. लेकिन फिर भी साले मुख्य मंत्री ने इनमें से किसी को मंत्रिमंडल में नहीं लिया. इसलिए क्रांति करवा दी.

उसने कहा—खैर, क्रांति की बात आप छोड़िए. बताइये, अब आपकी क्या मांगें हैं?

वे बोले—मांगें बहुत साफ और सीधी हैं—हमारे आदमियों को मंत्रिमंडल में लिया जाए या फिर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाए.

—अगर इन दोनों बातों में से कुछ भी नहीं किया गया तो?

—तो हम पार्टी छोड़ देंगे. पार्टी अध्यक्ष ने दृढ़ता के साथ कहा, हम पार्टी तोड़ देंगे. हम जो कहते हैं, वह करते हैं. सिद्धांतों की खातिर हम पार्टी भी छोड़ सकते हैं. फिर वे धीरे से बोले, यों भी आजकल हवा का रुख हमारे दल के विपरीत है. कह कर वे अपने असंतुष्ट साथियों के साथ आगे बढ़ लिये.

वह उन्हें जाते हुए कुछ देर तक देखता रहा. वे जिस फुर्ती और चुस्ती से चल रहे थे, उससे लग रहा था कि सचमुच क्रांति आ रही है.

कुछ देर में वह भी आगे बढ़ गया.

आगे एक चौराहे के बीचोंबीच एक शव पड़ा था, जिससे बदबू आने लगी थी. न जाने क्यों, कर्फ्यू उठ जाने के बावजूद इस शव को नहीं उठाया गया था.

वह जैसे ही शव के निकट पहुंचा, एक किनारे से दौड़ते हुए एक नेता उसके पास आ गए. उसने उन्हें आते नहीं देखा था, लेकिन उन्होंने उसे शव के पास जाते हुए देख लिया था. उन्होंने पीछे से उसे खींचते हुए कहा—ए मिस्टर, लाश को छूना मत.

उसने उनकी पकड़ से मुक्त होते हुए पूछा—आखिर क्यों? और किसका शव है यह?

वे बोले—देखते नहीं, सड़क चलते आदमी का शव है यह—तुम्हारे ही जैसे आदमी का. हम इस आदमी का फोटो प्रदेश और देश के प्रमुख समाचार पत्रों में छपवाएंगे. हमने प्रेस फोटोग्राफर बुलवाए हैं ताकि लोगों को बताया जा सके कि सरकार ने कैसी निरंकुशता बरती है.

उसने पूछा—आप कौन हैं?

—विपक्ष, कह कर वे सीना तान कर उसके एकदम सामने खड़े हो गए, मानो उसी के साथ उनका मोर्चा हो.

वह छटक कर शव के दूसरी ओर चला गया. अब उनके और उसके बीच खासा फासला था—बीच में शव था. उसने विपक्ष के नेता से कहा—अगर प्रेस फोटोग्राफर न आए तो?

वे बोले—कोई बात नहीं. सड़ने दो, हमारी राजनीति इसी पर निर्भर है.

—शव के साथ भी राजनीति, उसने आश्चर्य से कहा.

लेकिन उसे उत्तर नहीं मिला—वे गायब हो चुके थे.

★ ★

वह अवाक् खड़ा रह गया.

कुछ ही देर में प्रेस फोटोग्राफर और कुछ पत्रकार वहां आ गए. विपक्ष के नेता उनके साथ थे और उनके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान थी. तभी सत्ताधारी दल के असंतुष्ट अध्यक्ष, महा मंत्री और विधायक भी पहुंच गए. भीड़ जमा होने लगी. इसी बीच भीड़ को चीरते हुए क्रुद्ध मुख्य मंत्री भी वहां आ पहुंचे. उनके पीछे-पीछे पुलिस और सेना के जवान भी संगीनें ताने आ गए. प्रेस फोटोग्राफरों ने अपना काम शुरू कर दिया. मुख्य मंत्री के इशारे पर सैनिक उन्हें अपनी गिरफ्त में लेने के लिए लपके. विपक्ष के नेता हाथापाई के लिए आगे बढ़ आए. मुख्य मंत्री से असंतुष्ट नेता नारे लगाने लगे.

लेकिन तभी एक विचित्र घटना हो गयी.

शव एकाएक जिंदा हो गया.

सबसे पहले शरीर में हरकत हुई. इसके फौरन बाद गरदन उचकी और मुंह ऊपर उठा. क्षण भर में ही टांगें हिलीं और सिमटीं और हथेलियों के बल पर वह एकाएक उठ खड़ा हुआ. उसकी आंखों से अंगारे निकलने लगे.

तमाशाई भीड़ में भगदड़ मच गयी और क्रूर सैनिकों के हाथों से न जाने कैसे बंदूकें गिर गयीं.

एक झपाटे के साथ शव ने मुख मंत्री को दबोच कर गिरा दिया. असंतुष्ट नेता बेहोश होकर गिर पड़े. विपक्ष के राजनीतिज्ञ भागते कि इसके पहले ही जीवित शव का एक हाथ अप्रत्याशित रूप से लंबा होता हुआ उनकी गरदन पर आ टिका और पंजे की जकड़ में आए हुए वे कठपुतली के धागे में बंधे हुए से पीछे खिंचते चले गए.

दरअसल शव पूरी तरह जिंदा हो उठा था और एक जीते-जागते सचेत इंसान की तरह हरकत करने लगा था. □□□

सी २।३१, पूर्वी कैलाश,
(चार मंजिली डी. डी. ए. फ्लैट्स)
नई दिल्ली–११००२४

प्रदीप पंत (जन्म १९४१) का खयाल है कि पेशेवर राजनीति के षड्यंत्र में हमेशा साधारण जन ही मारा जाता है, लेकिन पिटने और मरने के बावजूद एक ऐसा दौर भी आता है कि यह आम आदमी पेशेवर राजनीति के लिए बड़ी चुनौती बन कर उठ खड़ा होता है. उनका उपन्यास 'एक असंभव मृत्यु' हाल में प्रकाशित हुआ है और एक व्यंग्य संकलन छप रहा है.

[illegible] पास प्रजातंत्र का इंतजार करने लगा. वैसे उसका नाम प्रजातंत्र नहीं था. लेकिन पिछले साल उसने खुश हो कर, एक उपनाम बेदिल, बेदर्द, दीवाना आदि उपनामों की तरह रख लिया था. तभी से हम उसे प्रजातंत्र के नाम से पुकारते आ रहे थे. वास्तव में वह यहां के एक मंत्री का रिश्तेदार था. लेकिन सैद्धांतिक मतभेद होने की वजह से,अलग एक कमरा किराये पर ले कर रहता था. साथ ही साथ अपने रिश्तेदार मंत्री के दल की नीतियों के खिलाफ काम किया करता था. जब कि उस मकान का किराया भी वह उसी मंत्री से मांग लिया करता था.

मैं खड़ा हो कर उन दोनों लड़कों को देखने लगा जो एक औरत की ओर भद्दे और अश्लील संकेत कर रहे थे. वह औरत जो भिखारिन जैसी लगती थी, चुपचाप मुस्कुरा कर उनकी ओर देख रही थी. वैसे उसकी मुस्कुराहट की चालाकी को अनुभव कर चुका था, फिर भी मैं चुप लगा गया. जब भी वह हंसने लगती, उसके गंदे दांतों के बीच, दरारों में फंसे अन्न के नन्हें टुकड़े साफ झलकने लगते. यहां तक कि उसके मसूड़ों का गुलाबी रंग भी बदरंग हो कर, एक अजीब प्रकार की विरक्ति का भाव पैदा करता था. इसी बीच लड़के हंसते हुए चले गये. उनके जाते ही वह औरत बुझ-सी गयी और आसमान की ओर देखने लगी. मानों वहां से अभी-अभी टपकने वाला हो. तभी प्रजातंत्र आ गया. उसे देख कर वह औरत प्रसन्न हो गयी और उसकी तरफ लालची निगाहों से मुड़ी. उसको अपनी तरफ आते देख कर मेरा मित्र रुक गया और उसने एक अठन्नी निकाल कर दे दी. वह औरत जैसे संतुष्ट नहीं हुई.

अब मैंने काफी नजदीक से उस औरत को देखा. पर्याप्त वस्त्र नहीं रहने के कारण झूलते हुए स्तन दिखलायी पड़ रहे थे. देह पर तंग चीकट ब्लाउज बुरी तरह चरमरा गया था. उसके गले के आस-पास की हड्डियां अजीब प्रकार के सूखेपन का एहसास दिलाती थीं. उसकी टांगें नीरस और लंबी थीं. चूतड़ का हिस्सा सिकुड़ गया था.

—क्या मांग रही है, दे दो न? मैंने स्थिति को समझते हुए कहा क्यों कि हमें उस बेशर्म औरत के साथ देख कर लोग [illegible]

—यार, आठ आने तो दे दिये, मित्र ने खीझते हुए कहा.

—नहीं...आठ आना और...उस औरत ने काफी मद्धिम आवाज में फिर दुहराया.

—मांगती है या नहीं...? मैंने जरा डांट कर कहा क्योंकि अब वह हमारी उपस्थिति का एक हिस्सा बनने लगी थी.

—दे दो यार...रिफ्यूजी औरत है...क्या है तुम्हारे पास आठ आने? मेरे पास चिल्लर नहीं हैं..., प्रजातंत्र एक सांस में बोल गया. मैंने फौरन आठ आने दे कर उसे चलता किया और अपने मित्र को प्रश्नवाचक की मुद्रा में देखने लगा. फिर मैंने उसकी मुसकराहट के उत्तर में कहा—हद हो तुम भी प्रजातंत्र...कितनी बू आती है, इस औरत के शरीर से!

—यार नशे में बस एक ही बू आती है और फिर इन दिनों मेरी कड़की चल रही है...! खैर, जाने दो. अभी तुम प्रो. दयानंद के यहां जाओ और कह देना शाम को उससे मिलूंगा. लेकिन, तुमने जो भी सोचा है, उससे मैं असहमत हूं. कम से कम उस बुलेटिन से कुछ पैसे तो मिल जाते थे.

मैंने कुछ नहीं कहा. कहना भी फिजूल था. वैसे व्यक्तिगत

अथवा

• राधेश्याम

रूप से मने यह फैसला कर लिया था कि मुझे इनका साथ छोड़ देना ही चाहिए. पिछले चार सालों में मेरे तमाम मित्र कहीं न कहीं नौकरी करने लगे थे और मैं अभी तक उसी लस्टम-पस्टम स्थितियों से गुजरते हुए, अपमानित मन से इनके क्रांतिकारी विचारों का संपादन करता जा रहा था.

इनमें से अधिकांश विश्वविद्यालयों में जा लगे थे क्योंकि इनके अनुसार यही एक जगह थी, जो किसी प्रतिष्ठान या व्यवस्थात्मक नीतियों के दबाव से अलग थी और जहां रह कर क्रांति की आग को हवा देते रहा जा सकता था.

—तुमने इसका अथवा सोच लिया है? उसने क्षण भर मौन रहने के बाद पूछा.

—अभी कुछ नहीं जानता, क्या होगा? मैंने कहा.

—तुम रिस्क ले रहे हो. कम से कम अपने बच्चों के बारे में तुम्हें सोचना चाहिए. क्या, किसी सरकारी नौकरी में जाने का इरादा है? उसने फिर पूछा.

—मुझे कुछ नहीं मालूम, जो भी काम सबसे पहले मिलेगा कर लूंगा. इतना कह कर मैं चुप हो गया.

—तुम्हारे इस अचानक निर्णय पर हम लोग अगली गोष्ठी में बहस करना चाहेंगे.

—लेकिन तुम तो जानते हो मेरा स्वभाव बहस करने का नहीं है. . .

—फिर भी. . .बहस से तुम कुछ सीख सकते हो.

इस बार मैं चुप हो गया, क्योंकि बहस करना मेरी आदत नहीं थी. जब अगला मोड़ आया, तब वह जाने लगा. जाते-जाते उसने कहा—तुम प्रोफेसर दयानंद से ज्यादा बातें मत करना इस संबंध में. . .मैं उससे मिल कर समझ लूंगा.

मैं प्रोफेसर दयानंद के घर की ओर जाने लगा.

★ ★

प्रोफेसर ने 'क्रांति' शब्द को गेंद की तरह हवा में उछाल दिया और वह शब्द लुढ़कता हवा में अदृश्य हो गया. उसने भरपूर नजरों से मेरी ओर देखा और कनपटियां खुजलाते हुए पूछा—तो तुमने बिल्कुल तय कर लिया कि अब हमारा साथ नहीं दोगे.

—जी हां! मैंने दृढ़तापूर्वक कहा. कहते समय मेरा चेहरा सख्त हो गया था. उसने एकटक मेरे चेहरे को कुछ देर तक देखा और फुसफुसाया, बताओ, इस देश में क्रांति कैसे आयेगी? जब तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे नवयुवकों का यह हाल है. . .

वह ऐसा ही कहेगा यह मुझे पहले से ही मालूम था क्योंकि ऐसे मौके पर यह उसका आखिरी जुमला होता था. किंतु इस बार मैं पहले से ही सतर्क हो कर आया था. इसलिए उसके इस जजबाती हमले को नाकाम करने में मुझे दिक्कत नहीं हुई.

—प्रोफेसर, आप जैसे लोगों के सामने हमारी क्या बिसात? अगर आप लोग नहीं होते तो जो कुछ भी क्रांति हुई है. . .नहीं हो पाती. यह कह कर जब मैंने उसकी ओर देखा, वह तिलमिला गया. उसे इस प्रकार रूखा बात करने का तनिक अंदेशा नहीं था इसलिए एक बार अचरज भरी दृष्टि से मुझे देख कर वह मौन हो गया. क्षण भर बाद तनिक विनीत होते हुए उसने आग्रहपूर्वक मुझे समझाया—देखो भाई, भावुकता में इतनी जल्दी निर्णय नहीं लेना चाहिए. कभी-कभी छोटी बातें भी काफी महत्वपूर्ण हो जाती हैं. यह तुम्हारी रोजी-रोटी का सवाल है. अगर तुम 'कैरियरिस्ट' होना चाहते हो तो बात अलग है. . .

मुझे उसकी बातों में कोई अर्थ नहीं मिला. मैं चुप हो गया. वह मुझे पढ़ने की कोशिश करने लगा. हठात् वह मुसकुराया किंतु मेरे गले होंठ महज औपचारिकता के लिए भी नहीं हिल सके. फिर वह गंभीर हो गया. मुझे भी इस प्रकार निष्प्रयोजन बैठे रहना अच्छा नहीं लगा. मैं उठ कर खड़ा हो गया. मुझे खड़ा होते देख कर उन्होंने जैसे अंतिम बार कहा—जा रहे हो? चाय पी लो. . तुम्हारे साथ मैं भी पी लूंगा. अगले अंक का मैटर प्रेस में दे दिया है?

—जी हां. . .! अगले सप्ताह छप जायगा. चाय फिर कभी पी लूंगा. . . ! यह कह कर मैं उसके गेट से बाहर हो गया. वह बेहद चिंतित-सा हो गया. मुझे छोड़ने गेट तक आया और फाटक बंद करते हुए कहा—ऐसा करो आज शाम को तुम नाटक देखने आओ. आज हमारे बॉस का नाटक है. . क्या करें इतना घटिया नाटक भी कभी-कभी देखना पड़ता है. . आना जरूर.

मैं उसके मकान के घेरे से निकल कर सड़क पर आ गया. फेफड़े से एक लंबी सांस निकली और मैं आगामी कार्यक्रमों के बारे में सोचने लगा. तत्काल मुझे त्यागपत्र देने की सूचना बनर्जी बाबू को देनी थी, क्योंकि वे ही हमारे इस गुप्त प्रेस की देखरेख कर रहे थे. जैसे ही मैं उन की ओर जाने के लिए मुड़ा, पिछली कई बातें जेहन में मुड़ने लगीं.

उन दिनों पुलिस हमारी पार्टी के पीछे हाथ धो कर पड़ गयी थी. हम लोगों में से कइयों के खिलाफ वारंट जारी किये जा रहे थे. उनमें आलम, सेनगुप्ता, प्रोफेसर दयानंद और मेरे नाम भी थे. पुलिस हमारे तमाम रिश्तेदारों को हमारी जानकारी के लिए बेहद परेशान कर रही थी. कुर्की-जब्ती के आदेश मिल गये थे. लेकिन हम चारों एक ऐसी निरापद जगह समाधिस्थ हो गये थे जहां के बारे में किसी को भी कुछ मालूम नहीं था; सिर्फ काफी निकट के लोगों को छोड़ कर. छ: महीने में ही सामान्य-जीवन की गतिविधियों से हम इतने कट गये थे कि हमारी हालत कैदियों के जीवन से भी बदतर हो गयी थी.

सुबह होते ही हम लोग रोटियों के बारे में सोचने लगते. बंद दरवाजे पर थोड़ी-सी आहट होती. हम चौकन्ने हो जाते. 'नौकर' को छोड़ कर, किसी दूसरे को न पा कर, हम उदास हो जाते. यह 'नौकर' एक छोटा लड़का था, जो हमारे लिए जरूरत की चीजें लाया करता. हम लोगों में से सबसे ज्यादा बेसब्र आलम हो जाता. क्योंकि वह काफी पुराना और अनुभवी फरार था. अतएव भागते-भागते काफी कमजोर हो गया था. उसकी हड्डियां निकल गयीं थी. कभी-कभी जोर से खांसने पर खून के थोके गिरने लगते थे. चूंकि उसके इलाज की व्यवस्था संभव नहीं थी, इसलिए वह दिनोंदिन कमजोर हो रहा था. उसे पुलिस के हाथों मारे जाने से नफरत थी.

तब हम रोटियों को देख कर जैसे जानवर में तब्दील हो जाते. कभी-कभी दोनों हाथों से रोटियां पकड़ कर, हबड़-दबड़ चबाने लगते. अधिकांशत: रोटियां रात की बासी और ठिठुरी हुई होतीं. फिर भी, बिना इसकी परवाह किये हम लोग मस्त हो कर पल भर में सफाया कर देते और फिर परसने के इंतजार में बैठ रहते, लेकिन कोई नहीं आता दुबारा. शुरू-शुरू में ज्यादा तकलीफ होती थी, क्योंकि कभी-कभी पेट नहीं भरता. धीरे-धीरे हम लोग इसके अभ्यस्त होने लगे थे. आलम समझाता, जेल में इस से भी भयंकर यातनायें दी जाती हैं. शुक्र है, हम लोग एक उद्देश्य के लिए जी रहे हैं. यह सुन कर हमारे अंदर थोड़ी-सी आशा जगती. हम भूख को इसी आशा से मार देते. लेकिन इसके मारने का असर हम लोगों के स्वास्थ्य पर बुरी तरह पड़ रहा था. मेरे गले के आसपास की हड्डियां भी निकलने लगी थीं. पुट्ठों के गोश्त झिगुर गये थे. लेकिन आलम हम लोगों में से ज्यादा कमजोर था. उसे देख कर उसकी मौत का ख्याल आने लगता था.

हमें अपने हक मांगने की सजा क्यों दी जा रही है? कभी-कभी वह इस सवाल को दुहरा कर बेहताशा चीखने लगता. लेकिन उसकी यह चीख हम लोगों के कानों को खरोंच कर कहीं

अदृश्य हो जाती थी. हम लोग भी निरुत्तर थे, क्योंकि ऐसे ही सवाल हमारे अंदर भी उठा करते.

वैसे जेलों से भिन्न, हमें थोड़ी-बहुत सुविधाएं मिल जाती थीं. उतनी बंदिशें नहीं थीं जितनी आम जेलों में हुआ करती हैं. हम लोग मर्करी लाइट को काफी देर तक जानबूझ कर जलाये रखते थे जिससे कि आदमी के जीवित होने का कोई सबूत हो. इस कोठरी के चारों ओर खूबसूरत फूलों के पौधे उग आये थे. किंतु हम करवटें बदले सिर्फ एक-दूसरे की सांसों की आवाजें सुनते रहते. यह एक अजीब प्रकार की सजा थी, जिसे हम भुगत रहे थे. पिछले छह-सात सालों की लंबी अवधि की असह्य, दर्दनाक स्थितियों ने हमें अपनी तमाम चीजों से अलग कर दिया था.

सिर्फ आलम ही एक ऐसा था जिसे सब कुछ याद रहता—उसकी पत्नी सिआह् और उसके बच्चे. कभी-कभी वह सिआह् के बारे में बहुत चिंतित होता. सिआह् भी हमेशा उसे खत लिखती रहती थी, जो उसे कभी-कभी मिल जाया करते थे. अपने अकेलेपन और उसके साथ बीते क्षणों के एहसास की तल्खी से भरे पत्र लिखती. हर पत्र के अंत में लिखती— तुम किसी तरह जल्द चले आओ. तुम्हारे बिना जी नहीं लगता.

आलम इन खतों को हमेशा पढ़ने की कोशिश करता और आवेश में खिड़कियों के सींखचों को पकड़ कर धुनने लगता. हम उसे ब-मुश्किल रोक पाते. उसे इस प्रकार चिंतित होते देख कर हम तमाम कैदी एक खूबसूरत चिड़िया की चोंच में फंसे कीड़े की तरह जीवन के लिए कुलबुलाते हुए अनुभव करते.

वह लड़का जब भी हम लोगों के लिए रोटियां लाता, उसके चेहरे पर अजीब-सी मुस्कराहट होती. एक क्षण के लिए उसकी मुस्कराहट हमें तिलमिला जाती और हमें हमारी व्यर्थता का बोध करा जाती. खाना रख कर वह कुछ देर तक हमारी जंगली हरकतें देखता और—इसी से काम चलाना होगा—कह कर चला जाता.

—हरामी का पिल्ला. . . साला खाना चुरा लेता है! मैं जानता हूं बड़ी-बड़ी जेलों में ऐसा ही होता है, आलम कहता. हम लोग खामोशी से सुनते, क्योंकि उसकी बातों में सच्चाई थी.

—नहीं. . . हमें मजबूर किया जा रहा है. यह एक साजिश है. वे जानबूझ कर हमें भूखा मारना चाहते हैं! प्रोफेसर विरोध में कहता. फिर दोनों में बहसें होतीं. देर-देर तक.

—क्या तुम्हें पार्टी में संदेह है? खीझ कर आलम पूछता.

—हां.

—तो फिर निकल क्यों नहीं जाते? मुखबिर बन कर पुलिस को बता दो कि हम यहां छिपे हुए हैं.

डाक्टर कहता— अगर यही स्थिति रही तो. . . मेरा मतलब है मैं कैरियर नहीं बिगाड़ सकता. मैं पछता रहा हूं. . . सिर्फ मेरे भूखे मरने से क्रांति नहीं आ सकती.

आलम बौखला कर रह जाता. गुस्से में प्रोफेसर को गालियां देने लगता. फिर हम लोग बीच-बचाव करने लगते.

इसी बीच आलम की मृत्यु हो गयी. रात आधी से ज्यादा खत्म हो चुकी थी, जब आखिरी दौरा पड़ा था. खून का एक गाढ़ा, काला थक्का निकल कर जमीन पर गिर पड़ा था. हम लोग उसकी मृत्यु पर चीख भी न सके. ठीक इसके तीसरे ही दिन बाद हम लोगों पर से मुकदमा उठा लेने की घोषणा की गयी थी, जब मंत्रि-मंडल बदल गया था. हम सब बेगुनाह साबित हो चुके थे.

जब मैं शाम को थियेटर हॉल पहुंचा, वह लोगों को 'रिसीव' करने में व्यस्त था. उसने मुझे देखा और इशारे से थोड़ी देर रुकने को कहा. मैं बाहर नाटक के शुरू होने का इंतजार करने लगा. लेकिन जब नाटक शुरू हो गया, तब उसने मुझे खींचते हुए ले जा कर एक खाली सीट पर बैठा दिया और बगल की सीट पर खुद बैठ गया.

राधेश्याम ने कहानियां भी लिखी हैं और नाटक भी लिखे हैं. रंगमंच पर अभिनेता के रूप में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है. कहानियां हों या नाटक, उन्होंने अपने आपको हमेशा समय-संगत कथ्य से ही जोड़े रखा है.

फिर कान के पास धीरे से फुसफुसा कर कहा— चार फंस गये हैं! इंटरवल में निकल चलेंगे. कितना घटिया नाटक है! वैसे मैंने तुम्हारे संबंध में बातें की हैं. . . अभी हम बात करेंगे. अभी प्रजातंत्र भी यहीं आयेगा. तुम्हारा पिछला हिसाब कर देगा. तुम जल्दी मत करो. . .

जब मैंने कुछ कहना चाहा, तब उसने मेरा हाथ दबा दिया. मैं चुप हो गया. इंटरवल तक बेसब्री से नाटक देखता रहा. जैसे ही हॉल की बत्तियां जलीं, उसका चेहरा खिल गया. फुर्ती से उठ कर अध्यक्ष महोदय को बधाइयां देने लग गया. फिर उसने मुझे बाहर बुला लिया. हम दोनों कॉफी पीने लगे. इसी क्रम में उसने कहा— देखा चूतिये को. . .? समझ रहा होगा उसने भयानक नाटक लिख मारा है. . . कूड़ा है. . . .

इतने में प्रजातंत्र आ गया.

—अरे मैं तो आप दोनों को तलाश रहा था. कैसा लगा नाटक?

—अच्छा किया तुम देर से आये. . .रब्बिश! प्रोफेसर ने कहा.

—तो फिर चलिए. इससे बातें कर लें. प्रजातंत्र ने मेरी ओर इंगित कर के कहा. इसका किस्सा तो मालूम ही है.

—हां. . . मैं सुबह भी समझा रहा था कि तुम जरा प्रैक्टिकल बनो. सरकारी नौकरी में कुछ नहीं है. व्यवस्था का विरोध. . . प्रोफेसर कुछ और कहता, तभी दूसरे लोग आ गये.

जब नाटक खत्म हो गया, तब प्रजातंत्र जबर्दस्ती प्रोफेसर को घसीट कर बाहर ले आया और टैक्सी पर हम तीनों बैठ कर प्रजातंत्र के मकान के पास आ गये. रास्ते भर प्रजातंत्र नाटक को ले कर प्रोफेसर को गालियां देता रहा था और प्रोफेसर निर्लज्जता पूर्वक हंसता जा रहा था. जैसे ही हम टैक्सी से उतर कर प्रजातंत्र के कमरे में दाखिल हुए, एक औरत जाने कहां से आ गयी थी. औरत साधिकार एक कोने में बैठ गयी. प्रोफेसर ने सकपका कर मेरी ओर देखा. तभी प्रजातंत्र ने कहा— अरे हम लोग अपने आदमी हैं. . . शर्म की क्या बात? फिर उसने मेरी ओर सौ के तीन नोट निकाल कर बढ़ाते हुए कहा—देखो भाई, यह है पुराना हिसाब. . . लेकिन तुम त्यागपत्र देने के बारे में अभी ठंडे दिमाग से सोचो. . .

मैंने रुपये ले लिये. उसने उठ कर अलमारी से शराब की बोतल निकाली और प्रोफेसर की ओर बढ़ा दी—लो दयानंद, तुम क्रांति शुरू करो, मैं अभी आता हूं. . . इसे छोड़ कर. बाहर निकलते हुए उसने उस औरत के गाल को मसल दिया.

जब वह लौटने लगा तो गर्मजोशी से हाथ मिलाते हुए बोला—यार, हमें निराश नहीं होना चाहिए. क्रांति एक दिन जरूर आयेगी.

वह लौट गया. जब मैं घर वापस जाने लगा तो सड़क की बिजली चली गयी. सड़कों पर अजीब-सा सन्नाटा अंधेरे में जमने लगा. मैंने रुपये को कस कर पकड़ लिया और उस खामोशी को चीरते हुए तेजी से चलने लगा. उदासी धीरे-धीरे घुलने लगी थी. . . .

□□□

दूरदर्शन उपग्रह तुलसीपुर, कटक –८

घुसती है. चौराहा, जिसके बीच में छोटा-सा गोलाकार पार्क है, इसी कारण गोल चक्कर भी कहलाता है. गोल चक्कर के एक ओर दवाओं की दो-तीन दूकानें हैं. एक मैगजीन कार्नर है, दो चाय की दूकानें हैं, दो पान की दूकानें हैं और हर शाम वहां पर कुछ चाट की दूकानें भी लगती हैं. गोल चक्कर की दूसरी ओर दो-तीन सिगरेट की दूकानें हैं. एक फल वाला तथा दो सब्जी की दूकानें हैं. इसके सामने फुटपाथ पर हर शाम अंडों की दो-तीन दूकानें लगती हैं. कुल मिला कर हर शाम वहां अच्छी भीड़ रहती है, क्योंकि तीन और मोहल्लों से निकल कर सड़कें वहीं मिलती हैं. पर एक बात है. जब भी कोई नया या संवेदनशील व्यक्ति उस आभिजात्य मोहल्ले में आता है, कुछ सोचने पर मजबूर हो जाता है. और उन्हें मजबूर करता है सड़क के दोनों किनारों पर का विरोधाभास. एक तरफ तो बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें हैं तथा दूसरी तरफ झोपड़पट्टी. तीस-चालीस झोपड़ियां एक कतार में बनी हैं.

इसी झोपड़पट्टी में अपनी माई के साथ रहता है दिनुआ. उसकी माई म्युनिसपैलिटी के एक स्कूल में दाई का काम करती है. बूढ़ी हड्डियों का दर्द एक-न-एक बार उसे हर साल परेशान करता है तथा मौसम बदलते ही उसकी खांसी बढ़ जाती है.

दिनुआ अब पच्चीस साल का हो चुका है. खूब पीता है, सामने सड़क पर खड़ा हो कर जिस - तिसको गालियां बकता है. और जब कहीं मार-पीट की नौबत आती है, तो उसमें भी सबसे आगे होता है. और इसी से उसकी माई घबराती है. क्योंकि दिनुआ का बाप भी झोपड़पट्टी का सरदार था. पर एक दिन दारू-भट्ठी से लौटते में रेलवे लाइन के पास किसी ने उसे चाकू मार दिया था और वहीं उसकी लाश पायी गयी थी. इसीलिए और सब तो ठीक, पर झगड़े-झंझट से उसकी माई बहुत डरती थी. दिनुआ था कि बस हर वक्त मरने-मारने पर उतारू. उतना दिलेर तो उस झोपड़पट्टी में कोई नहीं था. सब कहते, वह एकदम अपने बाप पर गया है. इसीलिए तो चरित्तर बाबू ने उसे झोपड़पट्टी का सरदार बना दिया था.

चरित्तर बाबू इस इलाके के गणमान्य नेता हैं. पिछले पांच चुनावों में वह बराबर विजयी होते रहे हैं. दिनुआ के बाप की तरह दिनुआ पर भी उनका पूरा विश्वास था. दिनुआ को वह मानते भी बहुत थे. चुनाव का समय नजदीक आने पर बार-बार दिनुआ की खोज होती थी. उस इलाके के सभी झोपड़पट्टी वालों का मामला वही संभालता था. उस वक्त दिनुआ को रुपये-पैसे की भी कमी नहीं रहती थी. दूसरे लोगों को लेने-देने के लिए रुपया उसे ही दिया जाता था और उसमें से वह अपने लिए कुछ अतिरिक्त बचा लेता था. लोगों को कुछ कम दे कर तथा चरित्तर बाबू के गुणों का अधिक बखान करके अपनी ओर मिला लेता था. चुनाव के समय सारे झोपड़पट्टी वालों में एक अतिरिक्त चहल-पहल शुरू हो जाती थी. हर झोपड़ी पर चरित्तर बाबू की पार्टी का झंडा लगा रहता. दिनुआ भी पूरा व्यस्त रहता था. वह तो सरदार था, इसीलिए उसे सब नजर रखनी पड़ती थी. कहीं कोई दूसरी पार्टी वाला न घुसपैठ करने लगे. खूब चौकस रहता था.

पर चुनाव के कुछ ही दिनों बाद फिर वही फाकामस्ती. माई की कमाई से ही काम चलता था. फिर तो पांच साल बाद ही चरित्तर बाबू उससे ठीक से बात करते थे. लेकिन छुपे तौर पर उसका संरक्षण हर मुश्किल के वक्त करते थे. एक बार कहीं मार-पीट में वह पुलिस के हाथों फंस गया था, तो उन्होंने ही फोन वगैरा करवा-कर उसे बचाया था. पर प्रत्यक्ष रूप में वह नहीं चाहते थे कि मोहल्ले वाले यह जान पायें कि दिनुआ जैसे पियक्कड़ और गुंडे से उनकी सांठ-गांठ है. दिनुआ उनकी अप्रत्यक्ष मदद से भी बहुत आभारी रहता था और सोचता रहता था कि वक्त आने पर वह चरित्तर

मिजाज बहुत बढ़ गया था.

★ ★

उन्हीं फाका-मस्ती के दिनों की बात है. वह एक महीने की लंबी बीमारी के बाद उठा ही था. घर की हालत बहुत खराब हो गयी थी. दवा वगैरा का खर्च उठाते-उठाते उसकी माई बिल्कुल थक चुकी थी. बड़ी चिरौरी-मनौवल के बाद खजांची बाबू ने कुछ रुपया उसे अपनी ओर से दे दिया था, जिसे महीना लगने पर सूद के साथ वह काट लेने वाले थे. वह भी खत्म हो चुका था. उसकी अपनी खांसी भी इन दिनों बढ़ गयी थी. दिनुआ ने अपने एक आदमी को चरित्तर बाबू के यहां भेजा भी था. पर उस आदमी ने लौट कर बताया कि चरित्तर बाबू सरकार पलटने के मामले में बहुत फंसे हुए हैं, सो उनकी बीबी जी ने दस रुपये अंदर से भिजवा दिये. दिनुआ यह सुन कर चरित्तर बाबू एवं उनकी बीवी के प्रति और श्रद्धालु हो गया था कि वे कितने बड़े हैं कि अपने बुरे दिनों में भी हम गरीबों को नहीं भूलते! पर उसकी माई पर इन सब बातों का कोई असर नहीं हुआ था. वह उसके लिए बार्ली घोटती रहती और उसे कोसती रहती कि कोई काम-धाम करेगा नहीं, बस हर वक्त

हाय चरित्तर बाबू, हाय चरित्तर बाबू! इसी चरित्तर बाबू के चलते तो बाप को दूसरा पार्टी वाला सब चाकू मार दिया. और वह रोने लगती थी. दिनुआ कई दिनों से सब देख रहा था. आज बाहर निकलने लायक हुआ था. पर कमजोरी बहुत थी. दाढ़ी बढ़ी हुई थी और बाल रुखड़े-रुखड़े-से हो गये थे. इसी हालत में बाहर निकल कर चौराहे तक चला आया था. उसके दिमाग में सिर्फ माई का रोना और पैसा घूम रहा था.

चौराहे की रौनक हर शाम की तरह उस दिन भी थी. रात्रि के नौ बज रहे थे, पर सब दूकानें खुली थीं. चौराहे के एक कोने पर, जिधर सिगरेट की दूकानें थीं, वह खड़ा था. उसके बगल में फुटपाथ पर अंडों की दो दूकानें लगी थी. उसी समय ठेकेदार राम-बहादुर बाबू की गाड़ी अंडों वालों के पास आ कर रुकी. राम बहादुर बाबू उतर कर सिगरेट की दूकान तक बढ़ आये और उनकी पत्नी वहीं पर उतर कर अंडे खरीद रही थीं. हाथ में बड़ा-सा काला पर्स लटक रहा था. उस पर्स पर नजर जाते ही दिनुआ की आंखें चमकने लगीं. उसने सोचा क्यों न यही पर्स झटके से ले कर भाग चलें. कुछ दिनों का ठौर तो हो ही जायेगा. माई भी कुछ दिनों तक नहीं रोयेगी. इतना सोचते ही उसे लगा कि उसकी कमजोरी दूर हो चुकी है. और उसने लपक कर पर्स झपट लिया और दूसरे मोहल्ले की ओर भाग चला. पर तब तक राम बहादुर बाबू सिगरेट ले कर लौट रहे थे. अपनी पत्नी की चीख के साथ साथ उन्होंने दिनुआ को एक धक्का दिया. वह गिर पड़ा. फिर वह उठ कर भागा. पूरे चौराहे पर हल्ला हो गया— पकड़ो-पकड़ो! चोर-चोर! राम बहादुर के साथ कई लोग दिनुआ के पीछे भागे. कुछ लोग यों ही जानने-समझने को अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो गये. फिर भी करीब पंद्रह-बीस लोगों की भीड़ तो दिनुआ के पीछे भाग ही रही थी. अब उसकी कमजोरी उभर आयी थी

बहुत आयी थी. पर वह भागता जा रहा था. किसी तरह वह दूसरे मोहल्ले की झोपड़पट्टी के पास तक पहुंच पाया और उसी में घुस गया. कल्लुआ की झोपड़ी के अंधेरे में वह दुबक गया. बहुत जोरों से हांफ रहा था. उसने कल्लुआ के हाथ में वह पर्स दिया और किसी तरह वहां से निकल जाने को कहा. कल्लुआ पीछे की ओर से अंधेरे में निकल गया. पर दिनुआ का निकलना अब बहुत मुश्किल था, क्योंकि कमजोरी के कारण उसके पांव-हाथ सब कांपने लगे थे. वह उसी कोने में आंखें बंद किये हांफता रहा.

—पकड़ो-पकड़ो! चोर-चोर! करती भीड़ उस झोपड़-पट्टी के पास आ कर रुक गयी. कोई कह रहा था— इसी में घुसा है. चलो भीतर. भीड़ में खूब हल्ला हो रहा था. घुसने के मामले पर विचार हो रहा था कि घुसना ठीक है या नहीं? इसी बीच रामबहादुर बाबू खूब जोर से चिल्लाये—चलो भीतर, देखें कौन क्या करता है! यह सुनते ही पूरी भीड़ भीतर हेल गयी. घबड़ा कर सब औरत-मर्द अपनी झोपड़ियों से बाहर निकल आये. लड़के-बच्चे सब जोर-जोर से रोने चीखने लगे. दिनुआ को लगा कि अब बिना भागे कोई चारा नहीं है तो फिर एक बार झटके से उठ कर भागा कि 'पकड़ो-पकड़ो' का खूब जोर से हल्ला हुआ. दो-चार घूंसे उसके मुंह पर पड़े. उसकी आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा. अंतिम बार उसने और जोर लगाया, पर वह उनकी पकड़ से भाग नहीं सका. चारों ओर से उसे गालियां और मार पड़ने लगी. कुछ लोग उसे बचाते हुए कह रहे थे—मारिए मत, इसे थाने ले चलते हैं. कुछ ने कहा— थाने ले जा कर क्या होगा? पुलिस वाला सब तो इन्हीं लोगों का है! रामबहादुर बाबू उसे कालर पकड़ कर खींच रहे थे और पूछ रहे थे— बोल, पर्स कहां है?

दिनुआ हाथ जोड़ कर रोते-रोते कहने लगा— हम नहीं लिये हैं बाबू, हमको छोड़ दो. तभी किसी ने एक घूंसा जमाया— नाटक करता है, गुंडा कहीं का! दिनुआ का पूरा बदन कमजोरी, डर और मार से कांप रहा था. मुंह से झाग निकल रहा था. उसने किसी तरह हाथ से सब पोंछा और रामबहादुर बाबू के पांव पर गिर पड़ा— सच कहते हैं बाबू, हम कुछ नहीं जानते. पांव पर गिरते वक्त उसके मन में एक धिक्कार भी उठा था— किसका पांव पकड़ रहा है? वही राम बहादुर बाबू न, जो तीन वर्ष के अंदर ही अपनी बीवी

ा कृपा से गाड़ी-बंगले, सब का मालिक बन बैठा है! पर उनके ाए मन में गाली निकालते हुए भी वह अपने मन के धिक्कार ा दबाये हुए था. उसी समय किसी ने पीछे से उसका कालर पकड़ र उठाया—साला! चोरी करता है और झूठ बोलता है! उसने ता, वह उसके मोहल्ले के डाक्टर साहब का लड़का है. वही ाक्टर साहब, जिनका माई गांव से आया था और चटपट मर या. अंधेरे में ही उसकी लाश मोहल्ले से निकली थी. फिर तो ारी जायदाद के मालिक डाक्टर साहब ही बन गये थे. पर इस ात को भी दिनुआ ने अपने मन में दबा लिया और उस लड़के के ाव पकड़ कर कहने लगा— झूठ नहीं बाबू, माई कसम, हम कुछ ाहीं जानते हैं!

किसी तरह मारते-पीटते हुए सब उसे चौराहे तक घसीट कर ाये. बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे. एक बार फिर जम कर ास पर मार पड़ने लगी. वह वहीं पर गिर पड़ा. जूता-लात-घूसा, ाब पड़ रहा था. जगह-जगह से कमीज फट गयी थी और बदन ा उस हिस्से पर खून छलछला आया था. वह कभी-कभी आंख ोल कर देखता तो सब बड़ी बिल्डिंगों वालों के यहां के ही लोग ा. वह सब के बारे में जानता है, पर अभी उसकी बात सुनता ौन है? इसीलिए वह रोने लगा था और अपने को सिर्फ दोनों ाथ से बचाते हुए कह रहा था— नहीं बाबू, नहीं बाबू! उसके ाुंह से खून निकल आया था. उसे लग रहा था कि वह बेहोश हुआ ा रहा है. तभी रामबहादुर बाबू ने कहा कि इसे चरित्तर बाबू ा यहां ले चलो, वही इसका फैसला करेंगे. सब ने कहा—ठीक है, ले ालिए इसे वहीं. चरित्तर बाबू का नाम सुनते ही उसकी जान में ान आयी. नीम-बेहोशी की हालत में भी उसे लगा कि अब मरने ा बच जायेगा. वह जरूर इन लोगों को समझा-बुझा कर लौटा ेंगे. किसी तरह उसे उठा कर सब चरित्तर बाबू के कंपाउंड में पहुंचे. उसे एक तरफ जमीन पर डाल दिया गया.

मार के दर्द से उसकी अंतड़ियां भीतर ऐंठ रही थीं. पूरे शरीर पर लग रहा था घाव-ही-घाव हो गये हैं. वह मुंह के बल पड़ा था. मिट्टी और खून से उसके मुंह के भीतर बदबूदार किचकिचाहट भर गयी थी. थोड़ी-थोड़ी देर पर वह यों ही आंखें खोल-बंद कर लेता था. मात्र यही हरकत उसके शरीर में हो रही थी.

रामबहादुर बाबू के साथ कुछ लोग चरित्तर बाबू के बरामदे की ओर बढ़े ही थे कि तब तक हल्ला सुन कर चरित्तर बाबू खुद ही बाहर निकल आये. उन्हें देखते ही सब ने एक साथ बोलना शुरू कर दिया. चरित्तर बाबू सब को 'हां-हां, शांत रहिए' कहते हुए भीड़ के पास तक चले आये. हल्ला अब भी हो रहा था. किसी तरह सब को शांत करके रामबहादुर बाबू ने चरित्तर बाबू को सब बताया. दिनुआ के कान में सब बातें जा रही थीं, पर वह

बसंतकुमार (जन्म : १९४५) ने स्नातक होने के बाद कई नौकरियां करने और छोड़ने की मजबूरी को भोगा. रंगमंच पर अभिनय भी करते हैं. अब तक करीब एक दर्जन कहानियां प्रकाशित.

पूरी बात ठीक से पकड़ नहीं पा रहा था. उसे लगता सिर्फ कुछ आवाजें वह सुन रहा है. चरित्तर बाबू को सुनने के लिए किसी तरह उसने अपने आप को सजग किया. इसी समय चरित्तर बाबू ने उसे ठोकर मार कर सीधा किया और कहा— क्यों बे साले, मोहल्ले में यही सब करता है! कोई और काम-धाम नहीं रह गया है दुनिया में करने को!

उसे लगा वह फिर बेहाश हो जायेगा. उसे चरित्तर बाबू से ऐसी उम्मीद नहीं थी. वह तो चरित्तर बाबू के बारे में भी सब जानता था— सिर्फ दलाली का पैसा खा-खा कर ही लखपति बने हैं और वोट के समय कैसे बूथ पर उसी के द्वारा गुंडागर्दी करवा कर अपने आदमियों से सारे वोट डलवा लेते हैं. और वही इस समय. . .वह कुछ भी सोच नहीं पा रहा था कि फिर चरित्तर बाबू ने कहा— मांग हरामजादे, सब से माफी मांग! बोल माई कसम फिर ऐसा नहीं करेगा और इनका पर्स ला कर दे! उसके सामने सब कुछ एक बार फिर घूम गया. नीचे की जमीन भी. उसने सोचा— नहीं, नहीं अब वह माई की कसम नहीं खायेगा. फिर, किससे माफी मांगे? यहां तो सब चोर खड़े हैं. बेकार इतने दिनों तक चरित्तर बाबू के भरोसे कूद रहा था.वह भी तो बिल्डिंगों वालों का आदमी निकला. माई ठीक कहती थी— ई सबका कोई भरोसा नहीं— सब सांप हैं. उसने खून और मिट्टी से बने लोथड़े को जोरों से थूका और माईईऽऽ कह कर झटके से चरित्तर बाबू को धक्का देता हुआ उठा और किसी तीसरी दिशा में भागा. भागते हुए वह चिल्ला रहा था— साले सब को देख लूंगा, सबको!

इस झटके से हुई घटना से सभी सहमे-से खड़े रह गये और अब शायद उनमें इतनी ताकत भी नहीं बच रही थी कि उसके तूफानी वेग को पकड़ पाते. □□□

१८९ बी, आर. के. एवेन्यू, राजेंद्र नगर,
पटना– ८०००१६

कोई एक आवाज

• बल्लभ डोभाल

नौकरी मिले कुछ ही समय हुआ है. मैं नहीं चाहता कि यह बात दुनिया तक पहुंचे. लेकिन बातें रुकती कहां हैं? फौरन पता ही नहीं चलता, बल्कि बढ़ा-चढ़ा कर ही लोग खबर पहुंचाते हैं. बच्चों से लोग पूछते हैं, 'तुम्हारे डैडी को नौकरी मिल गयी है न?' बच्चों की क्या बात है, हर बात में खुश हो लेते हैं. नौकरी जैसे कोई खिलौना है.

शहरों में काम दिनरात का है इसलिए रात में भी ड्यूटियां लग जाती हैं. वैसे भी कई लोग रात में अच्छा काम कर जाते हैं. रात में जो होता है, वह ठोस और तसल्लीबख्श है.

मुझसे लोगों की बात होती है. पत्नी की शिकायत सुनता हूं कि ड्यूटी रात की क्यों हुई? इतनी देर बाद नौकरी मिली है, वह भी रात की —न दिन आने का पता चलता है, न जाने का.

पता चलना भी नहीं चाहिये नौकरी. दिलाने वाले ने पहले ही सारा कुछ समझा दिया था. नौकरी की जो शर्तें हैं, वे सभी शर्तें मेरे आगे धर दी थीं. उसमें यह शर्त पक्की थी कि नौकरी पर आते-जाते भी कोई देख न पाये. आप सोचेंगे, यह भी क्या शर्त हुई? लेकिन जैसा तय था कि घर से ही पूरे तौर पर तैयारी करके निकलना होगा. ऐसा कि तुम दरवाजे के बाहर हुए और पत्नी-बच्चे भी तुम्हें पहचान न पायें.

ये शर्तें हैं, जिनके अनुकूल सावधान रहता हूं. रात के खाने के बाद अपने कमरे में चला आता हूं. दस-पंद्रह मिनट आराम के बहाने लंबा लेटता हूं. एक बढ़िया सिगरेट सुलगा कर मुंह में रख ली और उसके साथ-साथ अपना आराम भी खत्म होता है.

तब मैं उठ खड़ा होता हूं. परदों से खिड़कियों को ढकता हूं. फिर अटैची खोलकर चिथड़ा हुआ बरानकोट निकलता हूं, साथ में फटे टाट का पाजामा . . . यही पाजामा उसने मुझे दिया है. अलग-अलग तरह के जूते मिलाकर एक जोड़ी बना दी है, तिस पर भी दोनों जूते एक ही पैर के हैं. लेकिन इन्हें पांव में अलग-अलग पहनना है. इन्हें धारण कर चुकने के बाद अपनी दाढ़ी-मूंछ निकालता हूं. अब आप सोचेंगे – किसी नाटक कंपनी में रिहर्सल करने चला हूं. आप यह भी सोच सकते हैं कि हर आदमी अपनी-अपनी रिहर्सल पूरी कर रहा है. सब लोग कहीं न कहीं पात्र बने हैं. पात्र बनने के लिए हर कोई तैयार है, मैं भी हूं और अब कोई मुझे पहचान नहीं सकता.

इसी वेषभूषा में पहली बार जब मैंने उसे देखा तो बिलकुल पहचान नहीं पाया. उस दिन मुझे लगा कि यह आदमी भी किसी थियेटर में काम करने जाता है. या कहीं न कहीं पात्र बना हुआ है. उस दिन अचानक बात बन गयी. बात न बनती, पर मैं उसकी तलाश में जो रहने लगा था. यह आदमी कहां काम करता है, कब घर से निकलता है और क्या काम है इसका आदि, बातों की जानकारी मैं चाहता था. तब रात के कोई नौ बजे होंगे, और मैं उसके घर की तरफ जा निकला. कालोनी के आखिरी कोने में, सबसे किनारे वाला फ्लैट उसी का है. इस कालोनी में लोगों के अपने मकान हैं, सभी कुछ अपना है. कालोनी का विधिवत् नामकरण आज तक नहीं हो सका है. योजना तो यही थी कि अलग-अलग पेशेवर लोगों के लिए अलग-अलग नाम की कालोनियां बनें. इस योजना के अंतर्गत अनेक कालोनियों का निर्माण हुआ और बाकायदा उनके नाम भी रखे गये लेकिन यही कालोनी अब तक अनाम है.

इस बस्ती में वह शान से रह रहा है. रईसाना जिंदगी है. कमी कुछ नहीं. कई बार मैंने उसकी नौकरी के बारे में पूछा लेकिन वह तो कुछ बताता ही नहीं. बातों के भुलावे में डाल देता रहा. कई बार पूछने पर जब उसने कुछ बताया नहीं तो मैंने भी पूछना बंद कर दिया. लोगों के अपने-अपने काम हैं. योग्यता और सामर्थ्य के अनुकूल जब कोई काम नहीं मिलता तो कहने-सुनने का मजा जाता रहता है. यही कुछ इस आदमी के साथ है. शायद इसलिए पूछने पर बात को टाल जाता है.

★ ★

उस रात को जब मैं उसके दरवाजे पर पहुंचा तो दरवाजा बंद था. लेकिन कमरे में उजाला. . . चारों ओर खिड़की-दरवाजों पर परदे फैल रहे थे. पर एक जगह से परदा हट जाने के कारण खिड़की के आधे शीशे से अंदर झांका जा सकता था. झांकना मनुष्य की नियति है, पता नहीं क्यों. . .? मैंने दरवाजा खड़काने के बदले उस शीशे से अंदर की ओर झांकना पसंद किया. देखकर मेरी उत्सुकता बढ़ी, साथ ही आश्चर्य भी कम न हुआ. उसने गूदड़नुमा लंबा कोट पहन लिया था. पाजामा भी वही. . . जैसा कि मुझे दिया है. वैसे ही दो रंग के जूते पहन लिये. अब चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ को लगाता हुआ वह बाहर निकला ही चाहता था कि मैं वहां से हट गया. मकान से लिपटी हुई घनी बेल की आड़ में जा खड़ा हुआ. अब यह आदमी कहां जाता है? उसके मेकअप को देखकर यही लग रहा था कि वह किसी थियेटर में काम करने जाता है. अपने अनुकूल काम का न मिलना कितना कष्टकर है.

अब कमरे की रोशनी बंद थी और वह बाहर निकल कर दरवाजे को ताला देने लगा. फ्लैट में किनारे वाला कमरा इसलिए अपना रखा है कि मर्जी के मुताबिक आना-जाना हो सके. बच्चों को भी किसी तरह की असुविधा न हो.

सोचा, अब इस आदमी से बात करूंगा. पूछूंगा कि कौन-सी ड्रामा कम्पनी ज्वाइन कर रखी है. अब जब कि बात खुल गयी है तो बताने में उसे भी दिक्कत महसूस नहीं होनी चाहिये, सोचकर मैं पीछे हट गया. अब वह सड़क के बीचोंबीच आ गया था. एकदम किनारा होने के कारण मद्धम रोशनी में हल्के कदम बढ़ाने लगा. लेकिन मजे की बात तब बनी जब उसने सीधी सपाट सड़क और रोशनी को छोड़ पिछले गलियारे की राह पर कदम बढ़ा लिये.

शहर के दो ही चेहरे हैं. एक चेहरे की ही तरह स्पष्ट है और दूसरा एकदम बीभत्स. . . मैला-सा. . . भवनों के प्रवेश द्वारा जितने भव्य और आकर्षक हैं, उतनी ही गंदगी उनकी पृष्ठभूमि में है.

एक लाइन में गुंथे फ्लैट्स के पिछले गलियारों में घुसकर उसने अपनी गति मंद कर ली और नई कविता के लहजे में पुकार उठा— माई बाप. . . कोई सूखी रोटी का टुकड़ा. . . कोई फटा. . . पुराना. . . तुम्हारे बाल-बच्चे बने रहें. . .बाबू शाहेब लोगों की कुर्सी बनी रहे. . .

सुनकर मैं चौंका उठा. यह किसकी आवाज है? पिछले गलियारों में जहां वह घुस गया था, वहीं से आवाज पैदा हो रही है. पिछली तरफ किचन-बाथरूम बने हैं. गलियारों में पिछले दरवाजों पर कूड़ेदान रखे हैं. गलियां, गटर सभी कुछ इस अंधेरी जगह में हैं. रोशनी न के बराबर. . . इसी आवाज को सुनकर जब कोई खिड़की या दरवाजा खुलता है तो रोशनी का एकाध टुकड़ा बाहर झांकता है. उसके इर्द-गिर्द चारों तरफ फैली धुंध में बच-बचाते हुए दूर तक चले जाते मैंने उसे देखा. . . देखता रहा.

—बाबू शाहेब की कुर्सी बनी रहे. . . माताजी . . .भूखे को कोई टुकड़ा. . . कोई फटा-पुराना. . .

कैसी दर्दनाक आवाज है! लेकिन यह आवाज है किसकी? इस कालोनी में कोई मांगने वाला नहीं आता. दिन के वक्त किसी के घुसने की हिम्मत नहीं पड़ती. रात में चौकीदार खुखरी से लैस मिलता है लेकिन इस भिखारी को कोई कुछ नहीं कहता. उसकी

ावाज पर भी प्रतिबंध नहीं. बल्कि आवाज को सुनकर ही पिछले खिड़कियों में दरवाजे खुलते हैं. शायद उसे कुछ देने के लिए. यह भिखारी कौन है, देख लेने के बावजूद भी मेरे मन का असमंजस बना रहा और मेरे सोचते-देखते वह कहीं दूर निकल गया.

आदमी को ठगने में कितनी देर लगती है. यह आदमी देखते-देखते मुझे बेवकूफ बना गया है. कुछ समझ में नहीं आया कि वह कौन हो सकता है. मामले को सफाई के साथ समझ लेने के खातिर अगली रात ठीक उसी वक्त मैं उसके फ्लैट पर जा पहुंचा. तब भी वह अपने मेकअप में लग रहा था. फिर वही कार्यक्रम. . . उन्हीं गलियारों में उसका घुस जाना . . . हर बीस कदम पर वही दर्दनाक आवाजें. . . बाबूसाहेब की कुर्सी बनी रहे. . . माई-बाप. . .

मैंने देखा, सभी घरों से उसे कुछ न कुछ मिल रहा है. कहीं से फटा-पुराना, कहीं से बिस्कुट, काजू-किशमिश और शायद विदेशी सिगरेट के कीमती पैकेट भी – जिन्हें वह बड़े शौक के साथ लंबे कश और बड़े शायराना अंदाज में पीता है. मिलने वाली इन चीजों को वह गूदड़ नुमा कोट की जेबों में भरता जाता है और आवाज देता हुआ आगे बढ़ता ही जाता है.

नजर मुझे समझने के लिए काफी थी. बोला—बाबूसाहेब. . . कोई पैसा-धेला?

मैं यों ही उसके चेहरे पर देखता रहा. वह दो कदम आगे निकल गया. मैंने फिर से लपक कर उसका रास्ता रोक लिया.

—का है बाबू! वह जैसे खीझ उठा हो.

—कुछ नहीं है, मैं तुम्हें समझना चाहता हूं. कौन हो तुम? मैंने पूछा.

—हमहि का समुझो बाबू! मांग खाइत है. . .

इस तरह ज्यादा समय देना ठीक न समझा. मैंने कहा—बनने की कोशिश मत करो! मैं तुम्हें अच्छी तरह समझ गया हूं. अब ज्यादा एक्टिंग की तो दाढ़ी-मूंछ उखाड़ कर एक तरफ धर दूंगा. तुम्हें मालूम होना चाहिये कि घर से यहां तक तुम्हारा पीछा किया है मैंने.

सुनकर वह कमजोर पड़ गया. बोला— तुम ठीक समझे हो. मैं वही हूं. लेकिन इस वक्त रोको नहीं, जाने दो. कल मुझे मिल लेना. कुछ जरूरी बातें तुमसे करनी हैं. अच्छा. . . मैं चलूं. कहते हुए वह निकल गया.

सोचा, इस आदमी को यह नाटक रचने की क्या जरूरत पड़

उस रात लगभग पूरी कालोनी का चक्कर लगा चुकने के बाद वह मेन रोड पर आ पहुंचा. इस बार मैंने उसे एक पल अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया. वरना मेरी आंखें इस बार भी मानने से इन्कार कर सकती थीं.

यह वही आदमी है. अब यह कालोनी के एकान्त कोने में पेड़ के नीचे चला जायेगा. इसी जगह वह थोड़ी देर बैठता है. फटे-पुराने के नाम पर मिले हुए साबुत और नये कपड़ों को जमीन पर रख कर उनमें आग लगा देता है. फिर कोई बढ़िया सिगरेट मुंह में लगा कर आग सेंकेगा और साढ़े ग्यारह-बारह बजे तक वापस घर लौटेगा.

अब वह अपने कार्यक्रम से निवृत्त लौटने को हुआ कि बीच सड़क पर मैंने उसे रोक लिया.

—ठहरो !

वह ठहर गया. कुछ न कहकर उसने मेरे आगे हाथ फैला दिया. मन ही मन मुझे हंसी छूट आयी. इस पर उसकी झुकी हुई पलकें एक बार उठ कर फिर नीचे गिर गयीं. उसकी एक ही

गयी है. रात भर उसी के बारे में सोचता रहा. लेकिन इस तरह सोचने से कोई बात समझ में आने वाली नहीं. जब कि वह अपने मुंह से कुछ कहेगा तभी. . .

अगले दिन उसके घर जा पहुंचा. तब वह ड्राइंग रूम में बच्चों के साथ खेल रहा था.मेरे वहां पहुंचने पर वे लोग प्रसन्न हुए. कुछ देर बैठने के बाद वह मुझे अपने वाले कमरे में लौटा लाया.

—मेरे कल के अभिनय पर तुम्हें आश्चर्य तो हुआ होगा. उसने स्वयं ही बात शुरू की.

—क्यों नहीं? मैंने कहा. मैं रात भर सो न सका. बार-बार यही एक बात मेरे सामने आती कि तुम्हें ऐसा करने की क्या जरूरत पड़ गयी है.

वल्लभ डोभाल बचपन से ही घूमने और लिखने के लिए प्रोत्साहन पाते रहे. मन की अनुभूतियों के सजग रहने और उन्हें अभिव्यक्ति मिलने में ही सुख माना है.

अब तक दो सौ से अधिक कहानियां लिखी हैं जिनमें से सौ से अधिक प्रकाशित हो चुकी हैं. 'घाटियों के घेरे' (कहानी संग्रह) और 'तरंग' (उपन्यास) भी प्रकाशित हो चुके हैं.

—जरूरत है, तभी तो. . उसने धीरे से बोलना शुरू किया. तुम जानते हो, यह कालोनी उन लोगों के लिए बनी है जो समाजवाद लाने के काम में जुटे हैं. इन्हीं लोगों के जरिये समाजवाद आ रहा है. आदमी-आदमी के बीच भेद-भाव खत्म हुए जाते हैं. सबको एक बराबर लाने का काम कितना कठिन है. पर छोड़ो. . . काम के आसान और मुश्किल होने की बात नहीं है. बात दरअसल यह है कि कोई भी आदमी अपने काम से संतुष्ट नहीं. यह उसकी ईमानदारी है, या फिर. . . जाने क्यों. . . ! अपने किये पर खुद को यकीन नहीं होता. अब ये लोग सबको एक बराबर लाने का काम करते हैं, पर तुम सोचते हो कि सब लोग अपने काम से संतुष्ट हैं? कुछ लोग चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं, लेकिन साथ ही यह भी चाहते हैं कि कोई एक ऐसी आवाज इनके कानों में सदा आती रहे जो इन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराती रहे. इन्हें लगे कि हां, हम भी कुछ हैं. महज इनके अस्तित्व को कायम रखने के लिए मैं रात में घूमता हूं. करुणा और आर्द्रता से टूटते हुए मेरी याचना के शब्द इनके दिलों में सुख-संतोष को जगाते हैं और इसी याचना के कारण यह कालोनी अपने जिंदा होने का एहसास करती है. वरना अब कौन किसे समझता है, कौन किसकी सुनता है. मांगना अब संभव नहीं. बराबर सबके अधिकार हैं तो लोग अपने अधिकारों को झपट कर लेना चाहते हैं. मांग कर लेना कोई नहीं चाहता.

कहते हुए वह अपनी लाचारी को मेरे सामने रखता हुआ बोला — इस काम में मुझे कोई दिक्कत नहीं है. पैसा और दूसरी चीजें आसानी से मिल जाती हैं. सब कुछ प्राप्त है, लेकिन कैसे कहूं इन सब चीजों के बावजूद मन को सुख-संतोष नहीं. मैं जिंदा रहना चाहता हूं. चाहता हूं, कोई ऐसी ही आवाज मेरे फ्लैट के आस-पास भी उभरती रहे.

कहते हुए वह यकायक रुक गया. जैसे कि रोने के पहले कोई चुप रहता है.

मन-ही-मन सोचता हूं, समानता को झेलना आदमी की नियति नहीं है. समानता मनुष्य की अंतिम स्थिति बन सकती है. वह ऊंच-नीच, छोटे-बड़े की मौत का कारण बन सकती है. इस मौत से आदमी को छुटकारा दिलाने की खातिर मैं पात्र बना हुआ हूं. उसी दिन से मेरा अभिनय आरंभ होता है. लोग कहते हैं कि मुझे नौकरी मिल गयी है. अब मैं जिंदा रह सकता हूं. पर ये नहीं जानते कि मैं जब तक हूं, तब तक मेरी आवाज लोगों को जिंदगी देती रहेगी. □□□

६३६, अलीगंज
नयी दिल्ली–३

एक लघुकथा

डाइयोजिनीज और अलेग्जेंडर

सुकरात की मृत्यु के पच्चीस वर्ष के बाद ग्रीस के अथेंस नगर में एक विचित्र हुलिये वाला व्यक्ति चर्चा का केंद्र बना हुआ था. अस्त-व्यस्त बाल, अपूर्ण वस्त्र, बदसूरत दाढ़ी और दुबले-पतले जिस्म वाला यह व्यक्ति और कोई नहीं, डाइयोजिनीज था, दार्शनिक डाइयोजिनीज!

डाइयोजिनीज ग्रीस-वासियों को संयम और सादगी की शिक्षा देता था. एक बड़े टब में दिन-रात पड़ा रहता था. यही उसका घर था. रूखा-सूखा, बासी, त्यागा हुआ और भीख में मिला भोजन ही उसका आहार था. अपने शरीर को सभी प्रकार की यातनाओं के अनुकूल बनाये रखने के लिए डाइयोजिनीज ग्रीष्म में दिन-भर तपते सूरज की आग में रेत पर लेटा रहता था और सर्दी में बर्फ-सी ठंडी प्रस्तर-प्रतिमा से लिपट कर रात बिताता था.

इन्हीं दिनों मेसेडोनिया के राजा फिलिप के प्रसिद्ध पुत्र अलेग्जेंडर ने ग्रीस के नगरों पर आक्रमण किया और अनेक शहरों को अपने अधीन कर लिया. अथेंस पर भी उसका प्रभुत्व स्थापित हुआ. धीरे-धीरे अलेग्जेंडर के कानों तक डाइयोजिनीज की विद्वता तथा विचित्रता की खबरें पहुंचीं.

अपने सैनिकों और दूतों के हाथ उसने डाइयोजिनीज को राजमहल में आने के कई निमंत्रण भेजे. डाइयोजिनीज ने किसी भी निमंत्रण पर कभी ध्यान नहीं दिया. विवश हो कर, बिना भेष बदले अलेग्जेंडर स्वयं डाइयोजिनीज से मिलने उसके टब के पास पहुंचा. जब सम्राट वहां पहुंचा, डाइयोजिनीज टब से बाहर बैठा हुआ था.

सम्राट की आशा के विरुद्ध उसे स्तब्ध करते हुए डाइयोजिनीज एक स्वाभाविक गरिमा और उपेक्षा की मुद्रा में अपने ध्यान में मग्न रहा.

और तब घटित हुआ वह ऐतिहासिक संवाद, जो किसी भी स्वाभिमानी कलाकार को न झुकने की प्रेरणा दे सकता है. अलेग्जेंडर को ही अपना परिचय देना पड़ा— मैं हूं अलेग्जेंडर— तुम्हारा सम्राट!

समानता का स्तर बरतते हुए डाइयोजिनीज ने संतुलित वाणी में उत्तर दिया— मैं हूं डाइयोजिनीज— तुम्हारा दार्शनिक.

इस अवमानना से सम्राट को धक्का लगा.पर, अभी इससे भी बढ़ कर एक और ऐतिहासिक क्षण की रचना शेष थी. उपेक्षा स्वीकार करते हुए अलेग्जेंडर ने संधि-प्रस्ताव किया—मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?

एक स्वाभिमानपूर्ण गरिमा के साथ डाइयोजिनीज ने उत्तर दिया— तुम विजय-दुंदुभि के साथ नगरों में प्रवेश कर सकते हो, पर मेरे ज्ञान के नगर में तुम्हारा प्रवेश वर्जित है. मेरी सेवा यही होगी कि मेरे नगर में घुसने की चेष्टा मत करना. और सम्राट अलेग्जेंडर इस निरस्त्र योद्धा के सम्मुख पराजित योद्धा की तरह खड़ा रह गया, चुपचाप. □□□

(प्रस्तुतीकरण : रामदेव आचार्य)

इतने अच्छे दिन...

• कमलेश्वर

सचमुच इतने अच्छे दिन तो कभी नहीं आये थे.

पास में अगर हड्डी - गोदाम न होता, तो बहुत मुश्किल होती. सभी कुछ तो अच्छा था. तीन-चार गांव पास लगे हुए. सबके बीच में सूखे चरागाह. इतने सारे रिश्तेदारों के घर. तीन कोस पर बहती नदी. ऊंचे-नीचे टीलों वाला बियाबान. पास से जाती बस्ती की सड़क. खास सड़क पर रात में ट्रकों के रुकने का अड्डा. उस अड्डे से मील भर बायें हड्डी-गोदाम. उससे भी तीन मील भीतर रेलगाड़ी का स्टेशन.

चारों गांवों में अगर इतने रिश्तेदार, ढोर-डंगर और जानवर न होते तो भी काम नहीं चलता. और बीस मील दूर शहर में चीनी मिलें न होतीं तो भी दिक्कत होती. सड़क ऊंचे-नीचे टीलों वाले बियाबान से न गुजरती, तब भी ठीक नहीं था.

घर में छोटी बहन कमली न होती, तो कैसे काम चलता! उस बियाबान से ट्रक न गुजरते होते, तो भी दिक्कत होती. और बंता-सिंह ट्रक-ड्राइवर अगर रात में कमली को उठा न ले जाता तो उसकी जिंदगी ही बरबाद हो जाती.

सब कुछ अच्छा ही हुआ था.

★ ★

सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि इलाके में लगातार तीसरे साल भी अकाल पड़ गया. अकाल न पड़े तो घर-गांव का आदमी बाहर निकलता ही नहीं. जिनके अपने खेत हैं, वो तो बाहर हो आते हैं. जिनके खेत नहीं हैं, उनका तो कहीं कुछ भी नहीं है. खेत वालों के खेत पर मजूरी करना और वहीं गांव में पड़े-पड़े मर जाना. कहां कुछ और होता है!

कमली के लिए तो और भी अच्छा हुआ. वह कब कहां निकल पाती. बाला के लिए तो फिर भी ऐसा है कि एकाध गांव घूम आये. नदी तक हो आये. दर्जा पांच तक पढ़ने चले गये.

नदी तक बिना कहे-सुने बाला हो आये तो ठीक था. कह दिया तो मुश्किल होती थी. दादी उसे हटकने लगती थी—नदी पर मत जाया कर. जाये भी तो नहाना कभी मत. दादी बोलती थी तो पैर की उंगली में पड़े कांसे के छल्ले को घुमाती रहती थी. शायद वह उसके गड़ता था. दादा भी यही बोलता था.

वो दोनों मानते ही नहीं थे कि वह नदी तक जायेगा और नहायेगा नहीं. और बाला को नदी में उतरते हमेशा डर लगता था. ऊपर से दादी झूठ बोलती थी—कहा न, पानी का रंग नहीं होता!

बाला हमेशा कहता था—दादी, मेरी बात सुन. मैं देख के आया हूं पानी का रंग लाल है. खून की तरह लाल!

दादा ठठाकर हंस पड़ते थे—कैसी बातें करता है रे... पानी का कोई रंग नहीं होता. तू नदी पर मत जाया कर. जाये भी तो नहाना कभी मत.

दादा-दादी की ये बातें असल में अब बाला को याद आती हैं. हंसी भी आती है. उनके पास और बातें ही नहीं थीं. अपन के पास तो बहुत कुछ है. बहुत कुछ क्या, सभी कुछ है.

सर्दी कुछ साली ज्यादा ही थी. जिधर से कथरी उठ जाती, उधर से हवा अर्जुन के तीर की तरह लगती. कमली खिलखिला रही थी. उसे लगा... चलो सब ठीक है. कमली खुद तो नहीं पीती पर ड्राइवरों की शीशी में से दो-चार घूंट बचा के रख देती है. उसके लिए...और क्या चाहिए.

साला क्लीनर ज्यादा ही खुदर-बुदर मचाये हुए था. न सोता था न सोने देता था. बार-बार बीड़ी सुलगाता है. खांसता है. कथरी खींचता है. अबे इतना जाड़ा लग रहा है तो मोबी आइल डाल के अलाव जला ले! नींद तोड़ दी साले ने. कैसी मजे की नींद आती है यहां इस सराय में. कमली यहां है तो सब ट्रक वाले बस्तियां पार करते सीधे यहीं आते हैं.

ट्रक सराय के मालिक ने भी पूरा इंतजाम कर रखा है. बड़ा सा हाता घेर कर ट्रकों की सराय बना ली है. बाहर भी दस-बारह ट्रकों की जगह है. दिन में खाने की मेजें और बेंचें पड़ जाती हैं. रात को खटियां. थके-मांदे ड्राइवर और क्लीनर दिन में भी आराम कर लेते हैं. पूरी रात गुजारने के लिए तो पूरा इंतजाम है ही.

हर तरह का खाना. मुर्गा-शुर्गा खाना हो तो सामने दड़बे में से पसंद करो. अपने सामने बनवाओ-पकवाओ और खाओ. बीड़ी-सिगरेट की कमी नहीं. ग्रामोफोन भी बजता ही है.

दांत खोदते-खोदते तसवीरें देखना चाहो तो पचासों लगी हैं. भगवान की तसवीरें अच्छी लगें तो उन्हें देखो. गुरु वाणी सुननी हो तो रिकार्ड सुनो. औरतों की तसवीरें देखनी हो तो वो भी लगी हैं. लुंगी-कच्छा धोना हो तो पटिया बिछी है. ट्यूब वैल लगा है. सुखाने के लिए तार बंधा है. दिशा-मैदान के लिए सूखे खेत पड़े हैं.

—अबे तू क्यों उठ के बैठ गया? सबेरा होने में बहुत देर है. जाड़ा लगता है? अपन को बता! हेऽऽसाला बीड़ी सुलगा के खींचे जा रहा है. बीड़ी के जलते फूल में आंखें कैसी चमकती हैं कुत्तों की तरह— लखन क्लीनर की.

कुत्ता भी साला बड़ा भला जानवर है.

अकाल पड़ा तो भी नहीं भागे. वहीं गांव के बियाबान में लाशों को चींथते-चींथते मर गये. गिद्ध साला बहुत तेज होता है. चार-पांच कुत्ते न लगें तो एक गिद्ध को लाश पर से हटाना मुश्किल होता है.

—तू यहां आया कैसे? लखन ने पूछा.

—तू बीड़ी पी ले, अच्छी तरह सांस ले. बताता हूं! बाला बोला था.

—हां बता!

—तो सुन! तुझे नींद क्यों नहीं आ रही? अच्छा-अच्छा सुन! ये कमली मेरी बहन है न... एक शाम...

—सच्ची! और लखन कमली की बात पर ही अटक गया.

—अबे और क्या?

—कमली लड़की अच्छी है. समझदार है. ड्राइवर कहीं और रुकता है तो भी उसी की बात करता है. एक रात ट्रक बिगड़ा तो पैदल लौटने को हुआ. तब हमीं ने ड्राइवर को समझाया... अब दस किलोमीटर है. कोई उधर जाता ट्रक ले लो, सबेरे लौट आना. मैं तो हूं. फिर लदे हुए सामान की जिम्मेदारी भी थी. सो वह नहीं गया.

—अच्छा! तो सुन... ये साला बोरा बहुत महक रहा है. पहले इसे हटा दें.

—क्या है इसमें? लखन क्लीनर ने पूछा था.

—है! साली हड्डियां हैं!

लखन क्लीनर समझा नहीं. बीड़ी पी कर खांसने लगा. सर्दी में उठने की हिम्मत नहीं पड़ी तो बोरे से आती बदबू को उसने सह लिया. क्लीनर बीड़ी पीता है तो बदबू दब जाती है. बीड़ी फेंक कर क्लीनर ऊंघने लगा. अपन को क्या जरूरत पड़ी है किस्सा सुनाने की. सोओ साले...

★ ★

सुबह उठते ही बबूल की टहनी तोड़ कर बालाने दातून की. लखन अब आराम से सो रहा था. उसे जल्दी नहीं थी. तभी एक ड्राइवर रजाई में भालू की तरह हिला. उसने उठ कर तहमद बांधा और दोनों बांहें छाती से चिपकाये दिशा-मैदान के लिए चला गया.

लखन का ड्राइवर बंता सिंह पहले ही उठ गया था. वह मैदान से लौट रहा था. छप्पर में पड़ी कमली गठरी बनी सो रही थी. उसकी खाट के पाये पर बंता सिंह की पगड़ी अजगर की तरह लिपटी रखी थी.

जल्दी उसे भी थी. उसने बोरा उठाया और सिर पर लाद कर हड्डी-गोदाम की ओर चल दिया. साला बोरा बहुत महकता है. पर दाम तो अच्छे देता है... कमली भी चार-पांच रुपये बना लेती है. एक-सवा रुपया बोरे भर हड्डियों का मिल जाता है. छह रुपये रोजाना कौन कमाता है साला!

यह तो अच्छा हुआ कि चीनी मिलें खुल गयीं. और यह हड्डी गोदाम भी! चीनी चमकाने के लिए शोरे की जरूरत पड़ती है. पता नहीं इन सूखी हड्डियों में से शोरा कहां से निकलता है. निकलता होगा...

गोदाम के तक पर बोरा फंसा कर उसने मोटी-सी गाली दे कर चंदू को पुकारा—तौल कर... ये साली सर्दी...

चंदू कहीं दिखाई नहीं पड़ा. फिर गोदाम में भरी टनों हड्डियों के बीच से आता वह दिखाई पड़ा जैसे पिंजर उठ कर चला आ रहा हो. आते ही उसने खीसें निपोर दीं.

—आज सबेरे-सबेरे आ गया... साला...

—शाम देर हो गयी थी.

—कमली ठीक है?

वह उसका मतलब समझ गया. चंदू के दिल में एक फांस है. नहीं तो पूछने की क्या जरूरत थी? तक के दूसरे पल्ले पर बांट पटकते हुए चंदू ने फिर कहा—ये दिन पहले आ जाते तो काहे हम तीन से दो रह जाते!

चंदू का कहना तो ठीक था. पर तब यह सब व्यापार शुरू कहां हुआ था? इसीलिए तो उसने समझा दिया था... देख चंदू, तू कमली की लगन मन से निकाल दे... खाने को दो के लिए नहीं है तो तीन के लिए कहां से आयेगा?

अगर ये अकाल पहले ही पड़ गया होता और हड्डियों का धंधा शुरू हो गया होता तो कौन-सी दिक्कत थी!

वह यही सब सोच रहा था कि चंदू ने तौल करके बोरा नीचे पटक दिया. चंदू के मन में बाला के लिए खयाल था. धीरे से बोला—इंगरेजी जमाने की एक कबरगाह तीन मील उत्तर में है. कबरों के पत्थर तो सब खोद ले गये, हड्डियां दबी पड़ी हैं, उन्हें खोद ला!

—उनमें से शोरा निकलेगा? बाला ने पूछा था.

—सब चीज में मिलावट होती है. हड्डियों में भी मिला देंगे! आंख दबा कर चंदू ने कहा था.

साला! बाला के मुंह से मन-ही-मन गाली निकली थी. देना चाहे तो एक के पांच रुपये भी दे सकता है. वह नहीं करेगा, पर यह सब बता कर अपनापन जतायेगा. पैसे ले कर वह चला आया था.

लेकिन चंदू ने कबरगाह की ठीक और सही खबर दी थी. हड्डियां ताजी तो नहीं थीं पर जैसे कोयले की खान हाथ आ गयी थी! जहां खोदो वहीं हड्डियां निकलती थीं! उसे लगा था, ऐसी दो-चार खानें और हाथ आ जायें तो जिंदगी ही बदल जाये! आदमी अच्छा है चंदू!

पर पुरानी हड्डियों से ज्यादा चला नहीं.

★ ★

असल में जब तीसरे साल भी अकाल पड़ा, तब बाला को होश आया था. अपने रिश्तेदारों की हड्डियां कितनी कीमती हैं! अपने रिश्तेदारों के ढोर-डंगरों की हड्डियां कितनी कीमती हैं. हड्डियों के लिए तब महाभारत मचा था. लोग पहरा लगाने लगे थे... ये हमारे रिश्तेदारों की हड्डियां हैं... ये उनके ढोर-डंगरों की हड्डियां हैं! इन पर हमारा हक है!

तब बाला ने जम कर लड़ाई लड़ी थी. गांव-गांव में और आस-पास रहते रिश्तेदारों की हड्डियों के लिए वह लड़ता था. ढोर-डंगरों के पिंजरों के लिए उसने लड़ाई की थी...

• विजय श्री. दलाल

तभी दादा और दादी मरे थे. आठ दिनों की दूरी पर. और सत्ताइसवें दिन बापू मरा था. अम्मा तो आठ साल पहले ही मर गयी थी. बापू ने बहुत कहा था पर बाला नहीं माना था कि दादा की लाश को जलाया जाये!

—जलाने से क्या मिलेगा? बाला बापू पर चीखा था.

और बापू चीखा था. . .अरे कमीने! तू हड्डियां भी बेच खायेगा! ऐसी औलाद से तो निपूता ही मरता!

बापू ने जो कुछ कहा हो! पर ये दिन कैसे आते अगर बापू की बात मान लेता! खाने को क्या था? जीने को क्या था? सब तरफ तो धरती झुलसी पड़ी थी.

तभी तो उसने तय किया था कि झुलसी-तपती धरती के नीचे अगर लाश दबा दी जायेगी तो हड्डियां जल्दी साफ हो जायेंगी. गिद्ध और कुत्ते साफ करने में देर लगायेंगे. इधर-उधर खींच के भी ले जायेंगे. पर रात में कोई हड्डियां खोद न ले जाये, इसीके लिए तो उसने कमली को पहरे पर लगाया था, और वहीं से, सड़क किनारे से बंता सिंह उसे उठा ले गया था.

यह भी अच्छा ही हुआ था. अच्छे दिन आते हैं तो एक साथ आते हैं. जब बाला को पता चला था कि कमली ट्रकों की सराय में है तो वह गया था. बापू उस वक्त जिंदा तो था, पर इतना जिंदा नहीं कि सराय तक आ पाता. वह भूख से धीरे-धीरे मर रहा था. पर फिर भी जीने का कोई और रास्ता खोजने के लिए तैयार नहीं था. असल में यह बहुत भीतरी इलाका था जहां तक सरकारी मदद भी नहीं पहुंच पायी थी. जैसे खेत में सरकारी पानी जाता है न, जिस तक पहुंचा, पहुंच गया, उसके बाद. . .

होना वही था. बापू को भी मरना था.

पहले दादा मरा, उसके बाद दादी, उसके बाद बापू! रिश्तेदार और उनके ढोर-डंगर तो मर ही रहे थे.

पर तब तक बापू नहीं मरा था. शायद उसके मरने से एक दिन पहले की बात है. बाला जानवरों की हड्डियां बटोर रहा था. गिद्धों और कुत्तों के बीच. साले घसीट-घसीट कर बहुत दूर ले जाते हैं.

तब कमली उसे खोजती आयी थी. वह बाला को गिद्धों और कुत्तों के जमघट के बीच खोज ही नहीं पायी थी. उनके बीच वह घुटने मोड़े गिद्ध की तरह ही बैठा था. साफ हो गयी हड्डियों को बीनता हुआ.

जब दादी की लाश तपती जमीन के नीचे दबाने गया था तो कमली ने कहा भी था—दादी के पैर की उंगली में पड़ा चांदी का छल्ला निकाल ले!

—चांदी नहीं, कांसा है! उसने परख कर जवाब दे दिया था. कमली इतना जानती भी नहीं थी. कांसा ही होगा.

भला हो चीनी मिलों और बंतासिंह का. ये दोनों न होते तो ये दिन कैसे आते? हड्डियों की खदानें वह क्यों खोदता? कमली ट्रकों की सराय में इतने आराम से क्यों रहती?

यह साला चंदू तो पागल है जो अब भी कहीं कमली की लगन लगाये बैठा है. जो कुछ कमली औरों से पाती है, वह चंदू से तो मिलने से रहा! होगा वही, जो अब होता है, पर ऊपर से चंदू को खिलाना और पड़ेगा!

यही सब सोचता-सोचता वह हड्डियों की खदानों की ओर चला गया था. सात-आठ दिन तो इतना काम रहा कि फुर्सत ही नहीं मिली. बोरा भर-भर कर पहुंचाता रहा. चंदू तौलता रहा और कमली की बात करता रहा, पर साले ने न तौल में साथ दिया न पैसे में! है साला कमीना!

★ ★

हड्डियों की खदानों से वह आठ दिन बाद लौटा था. रात को. कमली काम से थी. वह कथरी ओढ़ कर लेट गया था. सिरहाने रखा हड्डियों का बोरा बहुत बुरी तरह महक रहा था. कमली कुलबुला रही थी. उसने पास जा कर पूछा था. . .कौन है?

—बस्ती का लाला है! कमली ने कहा था.

—इस साले से दस लेना! कहते हुए बाला अपनी खाट पर आ गया था. कुछ ही देर बाद सब कुछ शांत हो गया था. यह अच्छा था. बस्ती का लाला जब भी आता था तो शुरू में शोर ज्यादा मचाता था पर आधे घंटे बाद ही सो जाता था. ड्राइवर तो रात भर हंगामा करते थे. कमली भी बुरी तरह थक जाती थी और दूसरे दिन सोती रहती थी.

कमली तो सो गयी, पर उसे नींद नहीं आ रही थी. उस बोरे के कारण. मन बहुत उचटा हुआ था. रह-रह कर दादी की याद आ रही थी.

आज सर्दी भी बहुत थी और वह गांव के पास वाले ऊंचे-नीचे बियाबान टीले से दादी की हड्डियां खोद कर लाया था.

कमली ने तो रात काट ली थी, पर वह अपनी रात नहीं काट पा रहा था. . .सड़क से ट्रक आ-जा रहे थे. कुछेक सराय पर रुक भी रहे थे.

कड़कड़ाती सर्दी और अर्जुन के तीर की तरह चलती हवा! नीम भी बड़बड़ा रहा था. अंधेरा इतना गहरा कि उठने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी.

मन तो हुआ कि कमली को जा के जगाये और कहे. . . कमली! दादी की हड्डियां इसी बोरे में हैं! बहुत महक रही हैं. इस महक के कारन सो नहीं पा रहा हूं.

पर कमली थक कर सोई थी. बस्ती वाला लाला भी पड़ा था.

उसने आंखें बंद कर सोने की कोशिश की. एक पल के लिए नींद आयी थी. कि तभी कोई ड्राइवर चीखा था. . .अबे ओए, दीना चल!

दीना सोता-ऊंघता जा कर ठंडी गद्दी पर अधलेटा हो गया था. और वह ट्रक गुर्रा कर चालू हुआ था. फिर हाथी की तरह झूमता सड़क पर जा कर कोहरे में खो गया था. कथरी ओढ़ कर वह खाट पर बैठ गया था और सड़क पर भरे कोहरे को देखता रहा था. चारों तरफ सन्नाटा था. मुर्गे तक दरबे में चुप थे. कासनी फूलों की बेल पेट्रोल पंप की गुमटी के सहारे कांप रही थी. सनसनाती हवा. मुंह से निकलती भाप. ठिठुरे हुए पेड़. सामने फैले मैदान में रोंगटों की तरह खड़ी हुई घास.

बाला ने फिर लेटने की कोशिश की. लेट भी गया. पर नींद नहीं आयी. दादी! नाराज मत होना. . . ये दिन तू भी देख लेती तो शायद कुछ आराम से मरती. अब कमली भी बच गयी है और अपन भी. व्यापार भी चल निकला है. यह अकाल न पड़ता और इतने ढोर-डंगर, नाते-रिश्तेदार न मरते तो अपन का भी वही हाल होता.

भला हो हड्डी-गोदाम का. चंदू वहीं लग गया है. कमली भी समझदार हो गयी है, दादी. अपन से उसने बात की थी कहने लगी. . .चंदू से कह दे क्या फायदा? घर बसाऊंगी तो लौट के वहीं गांव के बाहर झोपड़ी डालनी होगी. कुआं सूखेगा तो फिर इधर ही भागना पड़ेगा. तब एक-एक लोटे पानी के लिए बाह्मन-ठाकुर छोड़ देंगे क्या? अकाल तो हम लोगों के लिए पड़ता है, बाकी सबके पास तो बरसों के लिए दाना है, पानी है. . . यहां कोई यह तो नहीं पूछता, कौन जात है! अपनी जरूरत से लोग आते हैं! कल नहीं आयेंगे तो इसी सराय के बर्तन-भांडे मांज-धो कर चलता रहेगा. ऐसे दिन बार-बार हाथ नहीं आते. . .चंदू से कह दे, क्या फायदा. . .

कमली बहुत समझदार हो गयी है, दादी! तू सुन रही है न!

अर्जुन का तीर फिर लगा तो उसने कस कर कथरी लपेटी. पता नहीं कब उठके फिर बैठ गया था. कोहरे की गुफा से एक ट्रक निकल कर फिर कोहरे की गुफा में घुस गया. कुछ देर तक आवाज बजती रही.

बाला उठा. कमली को जगा ले. पर. . .

तभी उसके लिहाफ में हलचल और कुनमुनाहट हुई. लाला लिहाफ से निकल सुड़सुड़ाता हुआ खड़ा हो गया. कमली बोली. . . लेटा रह. . .बहुत जाड़ा है!

लेकिन लाला को अंधेरे-अंधेरे निकल जाना होता है. रात कहीं भी निकले, पर उसका दिन बस्ती में ही निकलता है. टोपा चढ़ा कर, चादर लपेट कर लाला पगडंडी पकड़ कर बस्ती की ओर चला गया.

बाला वैसा ही बैठा रहा. बोरे की तरफ देखता हुआ. कमली की भरक टूट गयी थी. शायद उसने लिहाफ के भीतर से देखा होगा. वह पास आके खड़ी हो गयी थी—अरे बाला! तू अभी तक जाग रहा है?

—नींद नहीं आ रही!

—थोड़ी-सी उधर पड़ी है अद्धे में. पी ले. भरक मिल जायेगी. . . सो जा. . .सो जा. . .कहते हुए कमली अपनी खाट की तरफ जाने लगी थी.

—सुन! बाला ने कहा था,

—बोल!

—दादी सोने नहीं दे रही है!

—दादी! कमली ने ताज्जुब से कहा था.

—हां. . .उसकी काया इसमें बैठी है. . .बोरे में! बाला ने कहा था. . .

—अरे हट्! कमली ने झिड़क दिया था.

—कमली! वो तो अच्छा हुआ कि कोई और खोद कर नहीं ले गया. अपन ही पहुंचे खदान पर. . .पूरा पिंजर निकला!

—ऐसे कह रहा है जैसे पहचान लिया हो! कहते हुए कमली उसी की खाट पर आधी कथरी ओढ़ कर बैठ गयी.

—दादी के पैर की अंगुली में वो कांसे का छल्ला अब भी पड़ा है. . . बाला ने कहा तो कमली आगे नहीं बोली. बोरे की तरफ देखती रही.

★ ★

पेट्रोल के दोनों पंप सफेद रजाई ओढ़े कानों में उंगली डाले खड़े थे. छप्पर के बांसों में लटके टायर पुतली निकली आंख के कोटर की तरह देख रहे थे. सड़क किनारे खड़े नीम के पेड़ों की गर्दनें कोहरे की तलवार ने काट दी थीं. ट्यूबवैल के ठंडे पाइप की बांह कच्ची गुमटी की कमर में लिपटी हुई थी. और वे दोनों वहीं खाट पर चुपचाप बैठे थे. जाड़ा बरस रहा था. अब दोनों को नींद नहीं थी. वक्त का कुछ अंदाजा नहीं था.

घुटनों पर बांहें मोड़े, ठोड़ी टिकाये कमली बैठी थी. पाटी का सहारा लिये बाला अधलेटा था. तभी सामने, दूर कोहरे के टुकड़ों के पीछे काले आकाश में कुछ हलचल-सी हुई थी. काले बादल की लोहे की किनारी थोड़ी-सी चमकी थी. . .जैसे उसके पीछे आग की भट्टी की एक दहकती लपट उठी हो. पर फिर लोहा ठंडा पड़ गया था. एक पल बाद काले लोहे की कई किनारियों पर लपट के आसार दिखाई दिये थे. . .फिर वे बुझ गये थे. पर भट्टी शायद बराबर धधक रही थी. गड़िया लुहारों का कोई पड़ाव आसमान के पीछे है क्या? धौंकनी चल रही थी और आग बढ़ रही थी. धीरे धीरे लोहे की किनारियां पीली पड़ गयी थीं. . .जगह-जगह बादलों के ओंठ नीले हो गये थे. कोहरे के चकत्ते आग ने सोख लिये थे. आसमान में जगह-जगह चीरा लग गया था. तब घास के खड़े रोंगटे सुरमई से सुनहरे हुए थे और गर्दन कटे पेड़ों के सिर नजर आने लगे थे.

बाला कसमसा कर सीधा बैठ गया था.

कमली ने पूछा था—ये हड्डियां गोदाम ले जायेगा?

—हां! बाला बोला था.

—सुन बाला. . .इन्हें नदी में सिरा दे!

बाला अचकचा कर रह गया. यही कुछ तो, कुछ इसी तरह की बात तो वह भी सोच रहा था, पर यह नहीं सोच पाया था कि दादी की काया को नदी में सिरा आये.

—ठीक है न! कमली ने कहा. . .बुरे दिन होते तो दूसरी बात थी. गोदाम में ही दे आता. . .

—हां! वह बोला. . .तड़के-तड़के निकल जाता हूं. . .नदी दूर है. दिन चढ़े तक लौट आऊंगा.

और वह बोरा उठा कर सड़क पार करके मैदान में उतर गया था, उस पगडंडी पर जो नदी की ओर जाती थी. कमली उसे तब तक देखती रही थी, जब तक वह पेड़ों के झुरमुट के पीछे अलोप नहीं हो गया था.

★ ★

कमली जा कर अपनी रजाई में गठरी बन के लेट गयी थी. आदमी साथ होता है तो टांगें पसार कर सोने में भी उतनी सर्दी नहीं लगती. भरक मिलती रहती है. पर नींद बुरी तरह घिर रही थी! लेटते ही उसे नींद आ गयी. बहुत गहरी नींद.

यह पता ही नहीं चला कि दिन पूरी तरह कब निकल आया. शोर कब होने लगा. चारों तरफ जिंदगी अपनी रफ्तार पर आ गयी थी. दरबे में मुर्गे कुड़कुड़ाने लगे थे. कुत्ते पेट्रोल पंप और सड़क तक दौड़ रहे थे. ट्रक-सराय की लंबी मेजें धुल गयी थीं. सब्जियां कट रही थीं. अंगीठियां जल गयी थीं.

रात को रुके हुए ट्रक वाले चाय-पी पी कर सफर पर निकल गये थे. ट्यूबवैल धक-धक कर रहा था. वल्कनाइजर के छप्पर में मशीन पर रबर का टांका लगाने वाले लड़के आ गये थे. सराय के मालिक ने जपुजी का रिकार्ड लगा दिया था. अगरबत्तियों की महक फैली हुई थी.

कमली नींद की मारी थी.

बाला लौटा, तब भी वह सो रही थी. आते ही उसने जगाया. आंखें मलते-मलते कमली ने पूछा—सिरा आया!

—हां! उसके दांत अब भी कटकटा रहे थे. अर्जुन के तीर तो चल ही रहे थे.

—अच्छा हुआ! कमली बोली.

—तुझे याद है, दादी से अपन ने हमेशा कहा—दादी मेरी बात सुन! मैं देख के आया हूं. पानी का रंग लाल है. खून की तरह लाल! दादी मानती नहीं थी. जिद करती थी. . .पानी का रंग नहीं होता! सो आज उसकी काया सिराते हुए अपन ने उससे कहा. . .ले दादी! आज देख ले. . .

कमली ने उसकी तरफ भर-आंख देखा. और चूड़ी सरकाते हुए बांहों को भरकाने लगी. उसके चेहरे पर रात का बासापन था. या शायद ठंडक की सफेदी. वह अपने गालों को रगड़ने लगी तो बाला ने देखा. . .उसके बायें गाल की सांवली चमड़ी पर खून की एक सूखी बूंद चिपकी हुई थी. वह उस पर अंगुली फिराने लगी तो बाला ने पूछा—क्या हुआ? उस साले लाला ने फिर काटा इतनी जोर से?. . .

—नहीं. . ., कमली ने मामूली तरह से कहा. . .उसका वो एक दांत सोने का है न, वही गड़ जाता है. . .! कहते-कहते वह ट्यूबवैल की तरफ मुंह धोने के लिए चली गयी. □□□

नवंबर, '७३ अंक से सारिका में मीना कुमारी की इस काव्यमय डायरी की शुरुआत की गयी थी, जिसे सारिका के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं मीना कुमारी के अंतरंग मित्र व प्रसिद्ध शायर गुलजार. उन्हीं के शब्दों में "मीनाजी की डायरियों में उस कबीले का इतिहास भी है, जिसे लोग 'फिल्म वाले' कहते हैं, और साहित्य भी. . . वे निजी ज्यादा हैं. लेकिन उस वक्त की झलक जरूर देती हैं, जिसमें वह जी रही थीं—या उनके अपने लफ्जों में 'मर रही' थीं." (इस रचना के किसी अंश का उपयोग करने से पहले श्री गुलजार, ९१ ए, कोजी होम, २५१, पाली हिल, बंबई, से अनुमति लेना जरूरी है.)

मीनाकुमारी की डायरी : १४

चालीस मील लंबी मौत

• गुलजार द्वारा प्रस्तुत

कब्रिस्तान पहुंच कर मैं शाह विलायत साहब के कदमों में बैठ गयी. इन्हीं की औलाद में से चंदन हैं. आज भी इनके मजार पर जिंदा मोजजा (चमत्कार) मौजूद है कि इनकी हद में आने के बाद बिच्छू नहीं काटता, और यहां बिच्छू बेइंतिहा हैं. उन बिच्छुओं के डंक हैं, लेकिन जब उन्हें हाथ में उठाते हैं तो वे अपने डंक मोड़ लेते हैं. कई अंग्रेज नैनीताल के मशहूर जहरीले बिच्छू ला कर इस मजार पर रख देते हैं, आजमाने के लिए. और उन्हें भी बहुत ताज्जुब होता है और यकीन लाना पड़ता है. मैंने भी एक बिच्छू अपने हाथ में उठा लिया था. यहां एक और हैरत-अंगेज (आश्चर्यजनक) बात देखने में आती है कि एक मजार है दादी 'बलुई' का. इनके मजार के सिरहाने एक दरख्त बिल्कुल बालों की चोटी की शक्ल का काफी ऊंचा गया हुआ है. इस पर कोई शाख या पत्ता नहीं है. लेकिन उर्स के जमाने में जब इसके तने को पकड़ कर झंझोड़ा जाये तो न मालूम कहां से जमीन पर इलायची-दाने बिखर जाते हैं. कितनी अजीब बात है यह!

इस कब्रिस्तान में मेरी बड़ी प्यारी शख्सियत सो रही है. मेरी बड़ी ननद, जिनका दो महीने पहले इंतकाल हुआ. अजीब इत्तफाक है कि इसी सफर का जिक्र करते हुए मैंने उनसे वादा किया था कि मैं उनसे मिलने आऊंगी, यह

नज्म

खाली डिब्बा है फकत, खोला हुआ, चीरा हुआ
यूं ही दीवारों से भिड़ता हुआ, टकराता हुआ
बेवजह सड़कों पे बिखरा हुआ, फैलाया हुआ
खड़खड़ाता हुआ बस खाली लुढ़कता हुआ डिब्बा

यूं भी होता है कोई खाली-सा बेकार-सा दिन
ऐसा बेरंग-सा, बेमानी-सा, बेनाम-सा दिन.

□ गुलजार

वादा किस दर्दनाक सूरत में पूरा हुआ! मुझे बार-बार यूं महसूस हो रहा था जैसे दादा जी ने मुझे बुलवाया है; वरना इस सूरत-ए-हाल में मेरा यहां आना क्या मानी रखता है? जरूर उन्हीं का बुलावा था.

यहां से निकलते ही हमारा घर नजर आने लगा. चंदन के बताये बगैर मैं पहचान गयी कि मेरा घर कौन-सा है. मेरा बहुत जी चाहा कि मैं वहां जाऊं, मगर बाकर भाई कहने लगे कि अमरोहा में ठहरने के लिए सिर्फ अमरोहा के लिए सफर करना चाहिए, यह बुरी बात है कि यहां भी बस पड़ाव की सूरत हो. खैर, मैंने अहद (निश्चय) कर लिया कि इस मुहर्रम में मैं जरूर अमरोहा जाऊंगी.

वापसी में स्टेशन के पास केवल क्रॉसिंग पर रुकना पड़ा. दूसरी तरफ गुड़ और शक्कर का कारखाना था. गन्ने से लदी हुई बैलगाड़ियां खड़ी थीं. इसलिए गाड़ी में मक्खियां जमा हो गयीं. शानदार कहने लगे—छोटी अम्मी, आपने अमरोहा भी देख ही लिया? कितना अच्छा है ना? एक जरा मक्खियां बहुत हैं, नहीं? मैंने बे-अख्तियार जवाब दिया—तुम्हारा अमरोहा इस कदर मीठा है कि मक्खियां यहां जमा न हों तो कहां जायें?

बाकर भाई हंसते हुए कहने लगे—हाय-हाय, अपने ससुराल की न कहोगी तो क्या कहोगी?

(क्रमशः)

राकेश के पहले/राकेश के साथ/
राकेश के बाद :
यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (१८)

• अनीता औलक

पिछले अंकों में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन से अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. घर जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कॉलेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. अब आगे पढ़िए...

राकेशजी और कमलेश्वरजी दोनों मुझे स्टेशन पर छोड़ने आये थे. गार्ड ने अंतिम सीटी भी दे दी थी, लेकिन राकेशजी तब तक भी मुझे रोकने की हिम्मत नहीं बटोर सके थे. जब मुझे बंबई पहुंचे तीन-चार दिन ही हुए थे तो राकेशजी ने हार कर भाभी को ट्रंक-कॉल किया कि जिस पहली गाड़ी की टिकट मिले, वह मुझे तुरंत दिल्ली के लिए रवाना कर दें. भाभी ने भी देर नहीं लगायी. उस शाम को ही मुझे दिल्ली के लिए रवाना भी कर दिया. वहां राकेशजी फोन करने के बाद भी बेचैन रहे. फिर पता नहीं क्या सूझी, इधर से खुद गाड़ी से बंबई के लिए रवाना हो गये और कमलेश्वरजी को यह काम सौंप गये कि वह बंबई फोन कर दें कि मुझे भाभी वहीं रोकें, वह खुद ही आ रहे हैं. लेकिन हुआ यह कि मानसून की खराबी के कारण फोन तब लग पाया जब मैं वहां से रवाना हो चुकी थी. नतीजा कि राकेशजी बंबई पहुंचे तो मैं नदारद और जब मैं दिल्ली पहुंची तो राकेशजी नदारद. वह रात मैंने कैसे रो-रो कर काटी थी, कमलेश्वरजी ही जानते हैं. अम्मां थीं कि सब देख कर एकदम चुप बैठी अफसोस करती रहीं. फिर समझाने लगीं, 'ओदा ता इक मिंट वी दिल नई लगदा तेरे बिना. . .रो न'. थोड़ी ही देर में बंबई से फोन आया. राकेशजी बोले कि अब मैं फिर यहां से पहली गाड़ी पकड़ कर बंबई पहुंच जाऊं. मैंने जब कमलेश्वरजी से कहा कि मैं नहीं जाऊंगी, क्योंकि राकेशजी फिर कहीं दिल्ली न पहुंच जायें तो कमलेश्वरजी हंस कर बोले—वह इतना गधा नहीं है. मैंने सिर्फ इतना ही कहा—लेकिन? तो कमलेश्वरजी ने पूछ लिया—गधा तो है. और फिर जोर से हंस दिये.

बंबई में हमने फिर कुछ दिन मित्रों से मिलने में निकाल दिये. जब दिल्ली पहुंचे तो परीक्षा सिर पर थी. गनीमत इतनी कि फेल होते-होते बची. इस खुशी में कमलेश्वरजी, जवाहर भाई और राकेशजी ने छत पर ठंडी बीयर का सेवन किया था और अम्मां ने असली घी के लड्डू बना कर खिलाये थे.

मेरे बंबई जाने का दूसरा नतीजा यह हुआ कि 'कांपता हुआ दरिया' के धारावाहिक प्रकाशन का भी वहीं अंत हो गया था, जो कि बड़े आराम से 'नई कहानियां' में बराबर निकलता आ रहा था. उसके बाद कितनी बार राकेशजी पहाड़ों पर गये और लौट आये. उन्हें समझना बहुत मुश्किल था. . .सुबह अपना जम कर काम करने की बात करते और शाम को अचानक शिमला जाने की योजना बना लाते. फिर चले भी जाते, लेकिन मन न लगने की वजह से वहां से लौट आते. . . बहाना यह करते कि तेरी याद आती रहती थी. कि अकेली बैठी बोर हो रही होगी. . .चलो चलें, आदि-आदि.

और यह बात भी सच थी कि घर के बाहर जा कर उन्हें कुछ दिनों के लिए अच्छा लगता था और वह भी इसलिए कि मन में यह तसल्ली थी कि एक घर पीछे है जिसमें वह जब भी चाहें, जैसे भी चाहें जा सकते थे. . .उन्हें कोई कुछ भी कहने वाला नहीं था. उन्हें एक ऐसे घर की तलाश थी जिसमें एक नालायक लड़का हो फिर भी उसके घर वालों को उसकी नालायकी पर नाज हो.

—तुम कभी सुधरोगे नहीं, मैंने एक बार उनके पैर दबाते-दबाते रात में पूछा. मैं मजा ले रही थी. वह उचक कर बैठ गये, बोले—तुमने वो कहानी सुनी है कि एक बार एक बाज के लंबे-गंदे नाखून काट कर एक बुढ़िया ने उसे हमेशा के लिए नाकारा कर दिया था.

—तो मैं बुढ़िया हूं?

—बातें तो दादी-सी कर रही हो.

—लेकिन तुम अपने लंबे-गंदे नाखून

[ब]रकरार रखना चाहते हो.

—क्यों नहीं. . .आखिर फिर शिकार [कै]से करूंगा. . .कभी-कभी शिकार में [प]ता नहीं क्या-क्या हाथ लग जाता है.

दिल्ली में भी राकेशजी ने अपने मित्रों [से] परिचय कराया और उनके घर आना-[जा]ना शुरू कर दिया. श्री और श्रीमती [ओम]प्रकाश जी, मन्नू-राजेंद्र, श्री और श्री-[म]ती जवाहर चौधरी, श्री और श्रीमती [र]ेश अवस्थी, श्री और श्रीमती नेमिचंद्र [जै]न, श्री और श्रीमती भारतभूषण अग्र-[वा]ल और श्री और श्रीमती बंसीलाल [सू]र, श्री और श्रीमती भीष्म साहनी, आदि [डा]यरी में मैं अब तक बिल्कुल खप चुकी [थी]. कहीं पर भी कोई भी मौका होता [रा]केश-अनीता के बिना सबको अधूरा-[अ]धूरा-सा लगता. इससे अलग हट कर [ए]क और ग्रुप राकेशजी ने और मैंने मिल [क]र बनाया था. जिसमें 'थियेटर प्राणी' [थे]. इनमें ओम और सुधा शिवपुरी, राजेंद्र [पा]ल, रमेशचंद्र, राजेंद्रनाथ, गुलाटी, प्राण, [स]त्यदेव दुबे श्यामानंद जालान, और जे. [ए]. मेठी आते थे. फिर इस सबसे अलग [ह]ट कर एक और ग्रुप की स्थापना की, [जि]समें रेखा, इंदर मेहरोत्रा, मदन गुप्ता, [च]मन, शीला, आदि-आदि आते थे, जो [नि]तांत नॉन-प्रोफेशनल ग्रुप था. यह ग्रुप [हा]लांकि चमन की मृत्यु के साथ ही समाप्त [प्रा]य हो गया था. उसमें से ले-दे कर एक [म]दन गुप्ता ही रह गया था, जिसके साथ [बै]ठ कर पुराने कॉफीहाउस में बिताये [दि]नों को कभी याद कर लिया करते थे. [इ]सके अलावा शुरू-शुरू में रवींद्र कालिया, [र]मेश बक्षी आदि ने राकेशजी से काफी [सं]रक्षण पाया. फिर दूर-दूर चले गये. . . [अं]त तक भी जरूरत के वक्त राकेशजी को [या]द करने वाले रमेश बक्षी और दूधनाथ [ब]स ही रह गये थे. इनमें दो मित्र ऐसे [भ]ी थे जो बराबर आ कर मिलते रहे [उ]नका राकेशजी से कोई लाभ-प्राप्ति [क]ा रिश्ता नहीं था. वे थे श्री शरद जोशी [औ]र दुष्यंत.

इस पूरे जमघट में मैं राकेशजी के [अ]पने प्रत्येक मित्र के साथ उनके अलग-[अ]लग बनाये रिश्तों को समझती रही. [उ]नमें से कई प्रोफेशनल होते हुए भी [व]हीं एक आत्मीयता का रिश्ता भी रखते [थे]. उनमें थे. . .श्री ओंप्रकाश, डा. मदान, [ओ]म शिवपुरी, श्री जवाहर चौधरी, श्रीमती [शी]ला संधू, शरद जोशी, दुष्यंत, [म]दन, भीष्म साहनी, भाई-भाभी और [श्र]ी गिरधारीलाल वैद.

इन सबसे आत्मीयता का रिश्ता [अ]धिकतर इसलिए भी था, क्योंकि ये मित्र भी राकेशजी की तरह ईमानदार थे. इनमें अगर उनका सबसे ज्यादा तकलीफ देने वाला लेकिन आत्मीय मित्र था तो वह एकमात्र कमलेश्वर ही था. . . पता नहीं उन्होंने राकेशजी को फिर भी कैसे पटा कर रखा हुआ था. राकेशजी खुद भी कहते थे कि अगर जिंदगी में मैंने कभी किसीकी ज्यादतियां बर्दाश्त की हैं तो वह या तुम्हारी और या फिर कमलेश्वर की. हम दोनों हंस देते.

राकेशजी किसी लड़की को मित्र बनाते तो मैं भी उसे अपना मित्र बना लेती. वह नाराज होते, बोलते. . .तू हर खूबसूरत लड़की को अपनी भी सहेली बना लेती है. . .नतीजा, वह इतनी घर की हो जाती है कि रोमांस की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती.

अब घर में जो लोग आते थे, मिलने तो राकेशजी से ही आते, लेकिन घर मेरे आते थे—अच्छा तो अनीता आज क्या खिला रही हो. . .जवाहर भाई सीढ़ियों से ही चिल्लाते आते. राजेंद्रपाल से पहली बार राकेशजी ने संगीत नाटक एकेडमी में मिलवाया था तो मैंने छूटते ही उसे घर आने को कहा था. अगले दिन वह साथ ही आ भी गया था. —राकेशजी कितनी बार मिले, लेकिन घर आने को उन्होंने एक बार भी नहीं कहा. आपने बुलाया मैं एकदम आ गया. फिर उसके बाद जब भी आता—कुछ है खाने को—बड़ी भूख लगी है. श्यामा आते तो अपने ही बाप का घर समझते. सोते को भी जगाते—भूख लगी है भई. . . यह कोई सोने का वक्त है! राकेशजी डांट भी देते कि अभी-अभी सोयी थी. तूने आ कर उठा दिया. —अच्छा-अच्छा कोई और बात करो, श्यामा रोब से कहते.

गाहे-बगाहे मुझे कमलेश्वरजी, चौधरी, शिवपुरी, श्यामा, राजेंद्रपाल से पता चलता रहता कि वह कई-कई बार सिर्फ मेरी और मेरी ही बातें करते रहते हैं. . . उनसे यह कहते रहते कि अनीता के बिना मैं अब एक दिन भी नहीं जी सकता. वह मेरे जीवन का एक अंग बन गयी है. घर में एक दिन भी उसके बिना काटना मुश्किल हो जाता है. . .इसलिए मैं जरूर कहीं एक-दो दिन के लिए चला भी जाता हूं, लेकिन उसे एक दिन के लिए भी कहीं जाने नहीं दे सकता. मैं जब राकेशजी से पूछती कि क्या यह बात सच है तो कहते—तेरे से गप करते हैं. . .तुझे बनाते हैं. . . वो जानते हैं कि अगर वो तुझे मस्का नहीं लगायेंगे तो उन्हें घर में ही नहीं आने देगी. फिर वही ठहाका. मैं भी मजा लेती. कहती कि मुझे आपने ही तो कहा था—लव मी, लव माई. . . यह मेरी तरफ लपकते. कहते. . .कह कर देख आगे. मैं पलट कर कहती—चैलेंज मत करो, नहीं तो कह दूंगी.—तू एक बार कह कर तो देख. मैं फिर दोहराती—लव मी, लव माई. . .गॉड्स. राकेशजी देखते रह जाते. लेकिन यह बात सच है कि मैंने उनके मित्रों को सच ही दिल से अपनाया था. धीरे-धीरे मैंने उस छोटे-से घर को एक बहुत बड़ा कुटुंब बना दिया था. . . जहां कुछ लोग सिर्फ हंसने-हंसाने आते तो कुछ सिर्फ अपना रोना-धोना सुनाने आते.

कई-कई बार तो रात ग्यारह बजे भी राकेशजी अपनी टोली लिये खाना खाने पहुंच जाते. बस इतनी मेहरबानी जरूर करते कि आने से पहले एक छोटा-सा फोन लगा देते—हम छह आदमी खाने के लिए पहुंच रहे हैं. और कभी-कभी जब ज्यादा दया आती तो रूमाली या कोई मीट की डिश भी उनके मित्र उठाते लाते.

बहुत बार हमारे मित्र हमसे पूछते कि क्या अब हमने पहले जैसा लड़ना-बढ़ना छोड़ दिया है, तो मैं कहती—ऐसे कैसे हो सकता है. . .अपने टॉनिक के बिना हम लोग कैसे रह सकते हैं. . .लेकिन इतना जरूर अंतर आया है कि पहले की तरह अब बक्से बना कर मां के घर नहीं चली जाती. कौन पहले बक्से बनाये फिर खोले. . .एक तो एनर्जी बहुत लगती है, दूसरे पैसा बहुत बरबाद होता है . . .फिर आजकल कड़की के साथ-साथ महंगाई भी बहुत है. यह बात सच भी थी, क्योंकि पहली तारीख को घर-खर्च राकेशजी मुझे देते थे, उसमें ५० रु. अलग से लड़ाई के खर्चों के लिए ही दिया जाता था. . .लेकिन जैसे ही स्कूटर टैक्सी के भाड़े बढ़ गये, मैंने ज्यादा मांगना शुरू कर दिया. जोकि संभव नहीं था. इसलिए तय यही हुआ था कि लड़ने के बाद हम अपने-अपने कमरों में बंद हो जाया करें और जब सुलह की इच्छा जागे तो फिर तीसरे कमरे में चले आयें. . . और अगर वहां भी कुछ न बने तो फिर चौथे अथवा अम्मां के कमरे में अपना रोना आ कर सुनायें. . .और अगर फिर भी कुछ न बने तो ईश्वर पर छोड़ दें.

अगले अंक में

क्या छह साल के वैवाहिक जीवन के बाद भी उनके संबंधों में स्थायित्व आ सका?

सामाजिक क्रांति की इसी मानसिकता को निर्मित करने की वैचारिकता का पालन कर रहा है.

आज सारा देश उग्र जन-आक्रोश और असंतोष की आग में उबल रहा है. समांतर लेखन की वैचारिकता है कि केवल इस आक्रोश और असंतोष को वाणी देना ही प्रगतिशीलता नहीं है और न केवल अंध व्यवस्था-विरोध ही प्रगतिशीलता की कसौटी है.

असली बात इस आक्रोश और असंतोष को सही दिशा देना है, जो कि उन शक्तियों द्वारा अभीप्सित नहीं है जो स्वयं अधिनायकवादी और दक्षिणपंथी हैं और वे जन-आक्रोश को जनतंत्र के विध्वंस के लिए इस्तेमाल करना चाहती हैं! समांतर लेखन इस चरित्र-दोष को भी पहचानता है. इसीलिए वह विश्वास करता है कि व्यवस्था-विरोध और इस जन-आक्रोश को सामाजिक क्रांति की ओर मोड़ना है. आम आदमी को मूलभूत आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों के बृहतर संघर्ष में भागीदार बनाना है.

यही सही वाम का तकाजा है.

★ ★

समांतर लेखन आम आदमी से जुड़ा हुआ, उसी के जीवन का सच्चा लेखन है. उसमें समकालीन सामाजिक-राष्ट्रीय परिवेश अपने पूरे विराट रूप और वैविध्य के साथ अभिव्यंजित होता है, क्योंकि समांतर लेखक आम आदमी की ही एक इकाई है.

वह सभी रूपवादी एवं अभिजात-सौंदर्यशास्त्रीय मान्यताओं को पूरी तरह अस्वीकार करता है.

वह अपने लेखन में क्षणवाद, अस्तित्ववाद, भोगवाद जैसी सभी आयातित, जर्जर मान्यताओं को ठुकरा चुका है. उसने मानव-मुक्ति के प्रयासों और जन-आकांक्षाओं को नये प्रयोग और नये आयाम प्रदान किये हैं. नयी अभिव्यक्तियां दी हैं. समांतर लेखक किसी भी अर्थ में न तो परंपरावादी है, न रूढ़िवादी और न फार्मूलाबद्ध क्रांति का हामी! वह आधुनिकता को केवल रहन-सहन की प्रणाली के अर्थ में नहीं, वरन् क्रियाशीलता और चिंतन के वैज्ञानिक-सामाजिक आधार के रूप में ग्रहण करता है.

जीवन उसके लिए एक लड़ाई है, जिसके विभिन्न मोर्चे हैं और लेखन इन सभी मोर्चों पर आम आदमी को उस लड़ाई में शामिल करने का रचनात्मक-सांस्कृतिक माध्यम है. □□□

कृतियां

एक उपन्यास

अरण्य

● मधुकर सिंह

हिमांशु जोशी गांव के ऐसे निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के कथाकार हैं, जो आज की राजनीतिक चेतना से मुक्त अभी भी गांव के निश्छल और निर्दोष वातावरण में जीते हैं और जिन्हें शहर की बनिया सभ्यता अपने चंगुल में फंसाने के लिए बड़ी तेजी से हाव-भाव चला रही है. खासतौर पर जब भारतीय स्वतंत्रता जन्म ले चुकी है, तब यहां नयी जिंदगी के लिए एक सामूहिक संघर्ष की बजाय पुरखोतम का' जैसे शोषकों का शिकार गांव की मामूली जनता बनती जा रही है. कूर्मांचल की ऐसी ही आर्थिक विषमता को हिमांशु का उपन्यास 'अरण्य' उजागर करता है. 'अरण्य' कूर्मांचल में विषम और तल्ख होती जा रही परिस्थितियों के समांतर लेखक के मानस में भावना के स्तर पर हुए प्रतिकार का ही प्रतीक है.

कूर्मांचल के उन तमाम लोगों के बीच से ही हिमांशु ने 'अरण्य' के अंतर्गत कुछ पात्रों को जीवंत बनाया है. पुरखोत्तम का, पंडित हिरदेराम, कावेरी, मानिक, कुंवरदेव, माधव मामा प्रधान—सभी उक्त अंचल की विशिष्टता और आमफहम जिंदगियों को कथा के स्तर पर मुखरित करते हैं. माधव प्रधान, पंडित हिरदेराम जहां ग्रामीण निश्छलता के प्रतीक हैं, वहीं पुरखोत्तम और पटवारी गांवों में प्रवेश पा गयी बनिया सभ्यता की ओर भी परिलक्षित करते हैं. पुरखोत्तम पंडित हिरदेराम का भाई होते हुए भी संपूर्ण निम्नमध्यवर्ग को अपने शोषण के लिए ही परमात्मा की देन मानता है. कुंवर देव की संपूर्ण जायदाद को हड़पने की साजिश वह रचता है. इसके लिए वह प्रत्येक कुकर्म के लिए भी तैयार रहता है. यहीं शोषकों द्वारा फैलायी जा रही अपनी सभ्यता के कारण ही कावेरी जैसी लड़कियों को बूढ़े ठेकेदार के साथ विवाहित होने के लिए बाध्य भी किया जाता है. पंडित हिरदेराम का लड़का उसका प्रेमी है, परंतु वह अव्वल दर्जे का आवारा और खुदगर्ज है जो गांव छोड़ कर ही भाग जाता है. माधव प्रधान पंडित हिरदेराम की तरह धार्मिक तो नहीं है, परंतु सामाजिकता से संयुक्त प्रधान मृग-शावक की भांति निर्दोष और मासूम है, जिसे पटवारी पेड़ काटने के झूठे इल्जाम में फंसा देता है. यह भी सच है कि पटवारी स्वयं पेड़ काट कर बेच डालता है और सामाजिक-आर्थिक विषमता के शिकार ग्रामीण निर्दोष माधव प्रधान के विपक्ष में गवाह भी बन जाते हैं. इस प्रकार हिमांशु जोशी का उपन्यास 'अरण्य' शिकायत के मिजाज से नहीं लिखा गया है, क्योंकि लू सुन के शब्दों में 'शिकायतों के साहित्य से उत्पीड़क को सुरक्षा महसूस होती है.' हिमांशु वर्तमान गांवों—खासतौर से पहाड़ी अंचलों के गांवों—को बड़े करीब से समझते हैं. इसलिए इनकी संवेदना सामान्य संवेदना में बदल कर अपने पाठकों को गहराई से स्पर्श कर जाती है.

सच कहा जाये तो पहाड़ी गांवों का संपूर्ण वर्तमान हिमांशु के माध्यम से ज्यादा सही ढंग से अभिव्यक्त हुआ है.

हिमांशु जोशी

हिमांशु की सहजता ऐसे छद्म लेखन-जीवियों के लिए गहरा धक्का है, जो यह मान कर चलते हैं कि 'आज हिंदी कहानी में जो कहानीकार अपनी असमर्थता या शिल्प या भाषा - संबंधी सरलीकरण को ही कला की शर्तों के रूप में स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं, वे रचना की बुनियादी जिम्मेदारियों से भी परिचित नहीं हैं.' यानी कलावादिता और अंधी सौंदर्यप्रियता सन् १९७५ में भी ऐसे कथित लेखकों का पीछा नहीं छोड़ रही है.

हिमांशु ऐसी तमाम फैशनपरस्ती और व्यक्तिनिष्ठ चेतना से मुक्त आसपास फैली जिंदगियों के सही लेखक हैं. □□□

जयप्रकाश चंद्र

जन्म : १९ दिसंबर, १९४९, ईदह (आगरा) में. सन् १९७१ में मनोविज्ञान में एम. ए. किया. पहली कहानी १९७१ में 'युग छाया' में प्रकाशित हुई. लेखन के अतिरिक्त चित्रकला एवं संगीत में भी रुचि है. अब तक डेढ़ दर्जन कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं.

स्वतंत्रता-प्राप्ति के सत्ताईस वर्ष पश्चात भी आम आदमी बिलख रहा है. अमीर वर्ग उत्तरोत्तर अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे हैं. . . शासन इस कदर भ्रष्ट, अति लापरवाह

नयी पौध

तथा क्रूर हो गया है कि वह जैसे प्रत्येक सत्य बोलने वाली जुबान तथा अन्याय का विरोध करनेवाली कलम को बंद कर देने पर आमादा है. . . हर ईमानदार कोशिश को बेरहम ठोकरों और नाकामियों के धक्के मिलते हैं. . . मेरा अपना जीवन भी निरंतर संघर्षमय रहा है. इसलिए मेरा लेखन झूठ, अन्याय और ज्यादती के विरुद्ध विद्रोह है.

मेरे खयाल से आज लेखन को किसी किस्म के चमत्कार अथवा खोखले आदर्शवाद की दरकार नहीं. हर जागरूक कथाकार को अब आम आदमी की व्यक्तिगत तकलीफों, उनके सुख-दुखों तथा आशा-निराशाओं से पूरी तरह से जुड़ना होगा.

● सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार भी कोई भी प्रतियोगी सर्वशुद्ध हल नहीं भेज पाया अतएव न्यूनतम १ अशुद्धि पर निम्न प्रतियोगियों में से प्रत्येक को ४० रु. का पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है जो हैं :

१. सुरेंद्र प्रसाद कक्ष नं. २१९९, २ रा माला, क्षेत्र –६, सी. जी. एस. कालोनी, कोलवाड़ा, अंटाप हिल, बंबई – ३७, २. मुन्नालाल, ग्राम चांदनपुरा, पोस्ट निनावली (रामपुरा), जि. जालौन (उ. प्र.), ३, सत्यनारायण राव, १०७-२ रेलवे कालोनी, छिंदवाड़ा– ४८०००१, ४. रामभरोस मिश्र, गल्ला बाजार पान की दुकान, सागर (म. प्र.)

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल :

१. गजो, २० कारिया, ३. त्रिवेंद्रम, उदयपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, ४. जंगल बाबू, ५. (पृ. ६३), ६. ने, ७ (पृ. ४८-४९), ८ श्रमदान, ९. (पृ. २९)

सारिका कथा पहेली

ध्यान से कहानियां पढ़िए और २५० रु. पुरस्कार प्राप्त कीजिए

इस कथा पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' के फरवरी ७५ के अंक पर आधारित हैं. डाक द्वारा कार्यालय में हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि १० अप्रैल ७५ है. लिफाफे पर मात्र यह पता लिखिए :

सारिका कथा पहेली : मार्च : पो. बॉ. २१३, बंबई–१

१. इस पात्र के प्रति आक्रोश से अधिक घृणा ही उपजती है : पाशो ( ), नसीबो ( ), होसेन ( )

२. बाबा भीखनचंद का जिक्र इस पृष्ठ पर आया है : ( )

३. इस पात्र के प्रति बरबस ही सहानुभूति उमड़ आती है : शिवदा ( ), सुखबार (, पारसनाथ ( )

४. पृष्ठ ६६-६७ की लघुकथाओं में जो सबसे अधिक प्रभावोत्पादक है, उसका शीर्षक इस अक्षर से शुरू होता है : ( )

५. इस कहानी का शीर्षक इसके कथ्य के सर्वथा अनुरूप है : दर्द की मछली ( ) तीसरी सांस ( ), जाने किस बंदरगाह पर ( )

६. इन दो रंगीन पृष्ठों की साज सज्जा और ले आउट सर्वश्रेष्ठ है : पृष्ठ २४-२५ ( ), ४७-४८ ( ), ६०-६१ ( ), ७२-७३ ( )

७. इस पुरुष पात्र के प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं हो पाती : बीरेंद्र ( ), गोप ( )

८. इस स्थान का जिक्र इस अंक की कहानियों में आया है : रायबरेली (.), आजमगंज ( ), कासगंज)), रामपुर ( ), साहिबाबाद ( )

नाम . . . . .आयु. . . .

पता. . . . .

. . . .